वर्ष 38, अंक-1, जनवरी-फरवरी, 2015

गगनांचल

साहित्य कला एवं संस्कृति का संगम

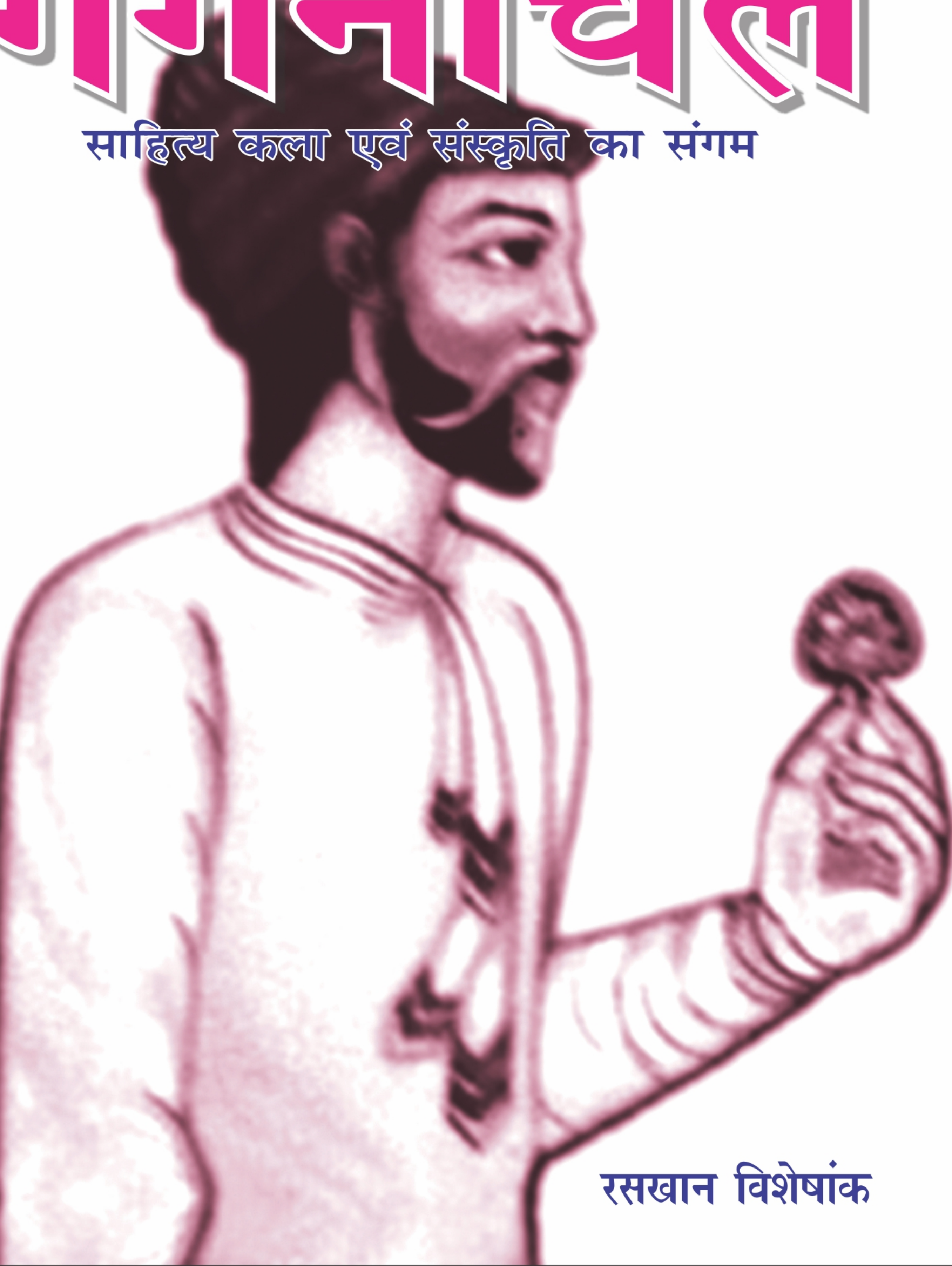

रसखान विशेषांक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र का दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिला कर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद् ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद् के लिए गौरव का विषय है। परिषद् का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् मुख्यालय

अध्यक्ष	:	23378616 23370698
महानिदेशक	:	23378103 23370471
उप-महानिदेशक (डी.ए.)	:	23370784
उप-महानिदेशक (ए.एस.)	:	23370228
निदेशक (जे.के.)	:	23370794 23379249
प्रशासन अनुभाग	:	23370834
अनुरक्षण अनुभाग	:	23378849
वित्त एवं लेखा अनुभाग	:	23370227
भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र अनुभाग	:	23379386
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-1	:	23370391
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-2	:	23370234
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी (अफगान)	:	23379371
हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स.-3388, 3347

गगनांचल

जनवरी-फरवरी, 2015

प्रकाशक

सतीश चंद मेहता
महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
नई दिल्ली

संपादक

अरुण कुमार साहू
उप-महानिदेशक

ISSN : 0971-1430

संपादकीय पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट
नई दिल्ली-110002
ई-मेल : ddgas.iccr@nic.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध है। www.iccrindia.net/gagnanchal पर क्लिक करें।

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुज्ञा दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद् की नीति को प्रकट नहीं करते।

शुल्क दर

वार्षिक	:	₹	500
		यू.एस. $	100
त्रैवार्षिक	:	₹	1200
		यू.एस. $	250

उपर्युक्त शुल्क-दर का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रक : सीता फाईन आर्ट्स प्रा. लि.
नई दिल्ली-110028
www.sitafinearts.com

विषय-सूची

लेख

हमारे अभिलेखागार से 5

रसखान की रचनाओं में ब्रजभूमि की बानगी 8
वर्षा रानी

रसखान का कृष्ण प्रेम 16
सकीना अख़्तर

मानवीय मूल्य और प्रेम के अनन्य कवि—रसखान 18
डॉ. दीपक नरेश

साझी विरासत के वाहक रसखान 20
संजीव श्रीवास्तव

फाग के रंग : रसखान के संग 22
मीरा अवस्थी

स्वच्छंद काव्यधारा के कवि : रसखान 25
बबिता कुमारी

रसखान, शृंगार और जीवन रस 27
अशोक मनोरम

कान्हा भक्ति मयूर-पंखी प्रतिभा के हस्ताक्षर रसखान 32
डॉ. वेणुगोपाल कृष्ण

रसखान की काव्य कला 36
प्रो. जोहरा अफजल

रसखान के प्रेम की अवधारणा 38
राजेंद्र परदेसी

प्रकृति और कान्हा के सौंदर्य उपासक—रसखान 41
डॉ. भावना शुक्ल

रसखान : एक विलक्षण व्यक्तित्व 44
डॉ. शिखा रस्तौगी

कृष्ण भक्त कवि — रसखान 48
सुरेश सक्सेना

जो पशु हो तो कहां वश मेरो... 50
डॉ. गोपाल कमल

रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रवर्तक—कवि रसखान 60
डॉ. सुनीति एस. आचार्य

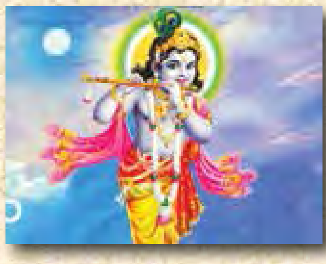
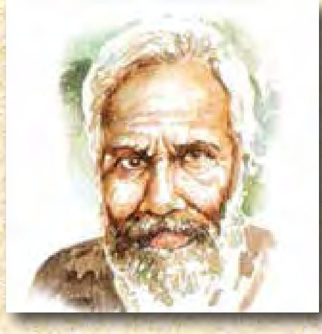

कृष्ण काव्य में सूरदास और रसखान का तुलनात्मक अध्ययन 63
डॉ. संगीता त्यागी

रस की खान 'रसखान' 66
डॉ. प्रीति

नागार्जुन के उपन्यासों में आंचलिकता 68
डॉ. श्रुति रंजना मिश्र

हिंदी की लघु पत्रिकाएं वर्तमान परिदृश्य में 70
कृष्णवीर सिंह सिकरवार

कदंब का फूल 75
डॉ. सोनवणे राजेंद्र 'अक्षत'

जादुई यथार्थवाद के प्रथम लेखक—काफ्का 80
डॉ. प्रभा दीक्षित

ओड़िशा और श्रीलंका का ऐतिहासिक बंधुत्व 82
समीर कुमार दास

कहानी

बर्फीली रातों के गुलदस्ते 84
जयंती रंगनाथन

कविता/गीत/गजल/दोहे/नवगीत

रसखान 92
बाबूराम शर्मा 'विभाकर'

प्यारो न्यारो ये बसंत है! 92
राजेंद्र स्वर्णकार

तुम नदी हो, मैं किनारा हूं 93
प्रा. प्रेमचंद सोनवाने

वृक्ष लगाकर कई हजार/ आ मिलना/ बसंत 93
डॉ. मृदुला झा

इन राहों में/ बदलाव/ घुटन/ निर्दयी/ हिंसक/ घुटा आज/ उड़ान 94
डॉ. जयसिंह अलवरी

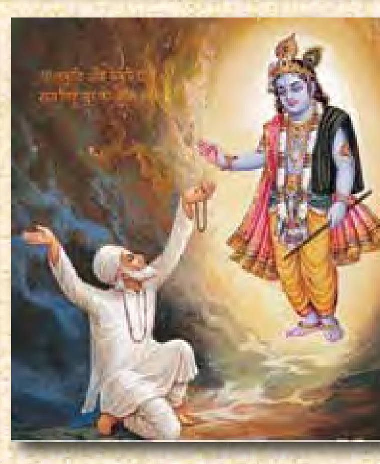

प्रकाशक की ओर से

हर नई सुबह का आगाज बहुत सी उम्मीदों और विश्वास के साथ होता है कि आज का दिन गुजरे दिन की अपेक्षा बेहतर होगा। अगर यह सुबह साल के पहले दिन की हो तो उम्मीदें और भी ज्यादा बढ़ जाती हैं।

नववर्ष का आगमन न केवल हमारे जीवन में हो बल्कि हमारे विचारों में भी उसका स्वागत होना चाहिए, तभी हम एक बेहतर कल की उम्मीद कर सकते हैं।

इसी विश्वास के साथ गगनांचल पत्रिका नववर्ष के अवसर पर हिंदू-मुस्लिम समन्वय की मिसाल सैयद इब्राहिम रसखान पर अपना विशेषांक प्रस्तुत कर रही है। आज जहां सारा विश्व आतंकवाद और लोगों की संकुचित सोच से भयग्रस्त है, वहीं रसखान का व्यक्तित्व एवं कृतित्व वर्षा की फुहार की तरह लोगों को सुकून देता है।

रसखान ने अपने साहित्य में कृष्ण की मनोहारी लीलाओं के वर्णन से यह सिद्ध कर दिया है कि ईश्वर किसी धर्म विशेष के नहीं होते हैं, बल्कि व्यक्ति की निजी आस्था ही उसे भक्ति के चरमोत्कर्ष पर पहुंचाकर परमात्मा के दर्शन करवाती है।

गगनांचल के इस अंक में पाठक रसखान के जीवन से जुड़े विविध पक्षों से रूबरू तो होंगे ही साथ ही उनकी साहित्यिक साधना से भी परिचित होंगे।

पाठकों को नववर्ष की शुभकामना के साथ ही गगनांचल पत्रिका का यह अंक हम अपने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं और हमें यह उम्मीद है कि हम आपकी अपेक्षाओं पर खरे उतरेंगे।

सतीश मेहता

(सतीश चंद मेहता)
महानिदेशक

संपादक की ओर से

आज दुनिया अशांति और बेचैनी के दौर से गुजर रही है। यही हाल हमारे समाज का है। मतभेदों के आधार पर असहिष्णुता, हिंसा और वर्चस्व की प्रवृत्ति उभर रही है। अतुलनीय वैज्ञानिक विकास, आर्थिक उपलब्धियों और भौतिक सुख-सुविधाओं के बावजूद मानव मन शांति, अक्षोभ, मानवता और एकमात्र सर्वशक्तिमान परमात्मा की शरण में जाने के रास्ते से भटक गया है।

ऐसे वातावरण में गंगा-जमुनी तहजीब के पैरोकार सैयद इब्राहिम रसखान का व्यक्तित्व एवं कृतित्व समाज में एक नई आशा का संचार करता है।

हमने गगनांचल के इस अंक को इस महान कवि को समर्पित किया है। हमें आशा है कि पाठकगण हमारे इन प्रयासों की सराहना करेंगे।

गगनांचल के इस अंक के साथ ही नववर्ष का आगमन हो रहा है। यह नया वर्ष हमारे पाठकों के जीवन में सुख, शांति, समृद्धि लाए, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ पुनः हमारे सभी पाठकों को नववर्ष की हार्दिक मंगलकामनाएं।

(अरुण कुमार साहू)
संयुक्त सचिव एवं उप-महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

हमारे अभिलेखागार से

तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद आजाद भवन का उद्घाटन करते हुए। नवंबर, 1960

आजाद भवन के उद्घाटन के अवसर पर तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद का लिया गया एक चित्र। नवंबर, 1960

नवनिर्मित आजाद भवन का विहंगम दृश्य। नवंबर, 1960

आजाद भवन के उद्घाटन पर उपस्थित गणमान्य व्यक्ति। नवंबर, 1960

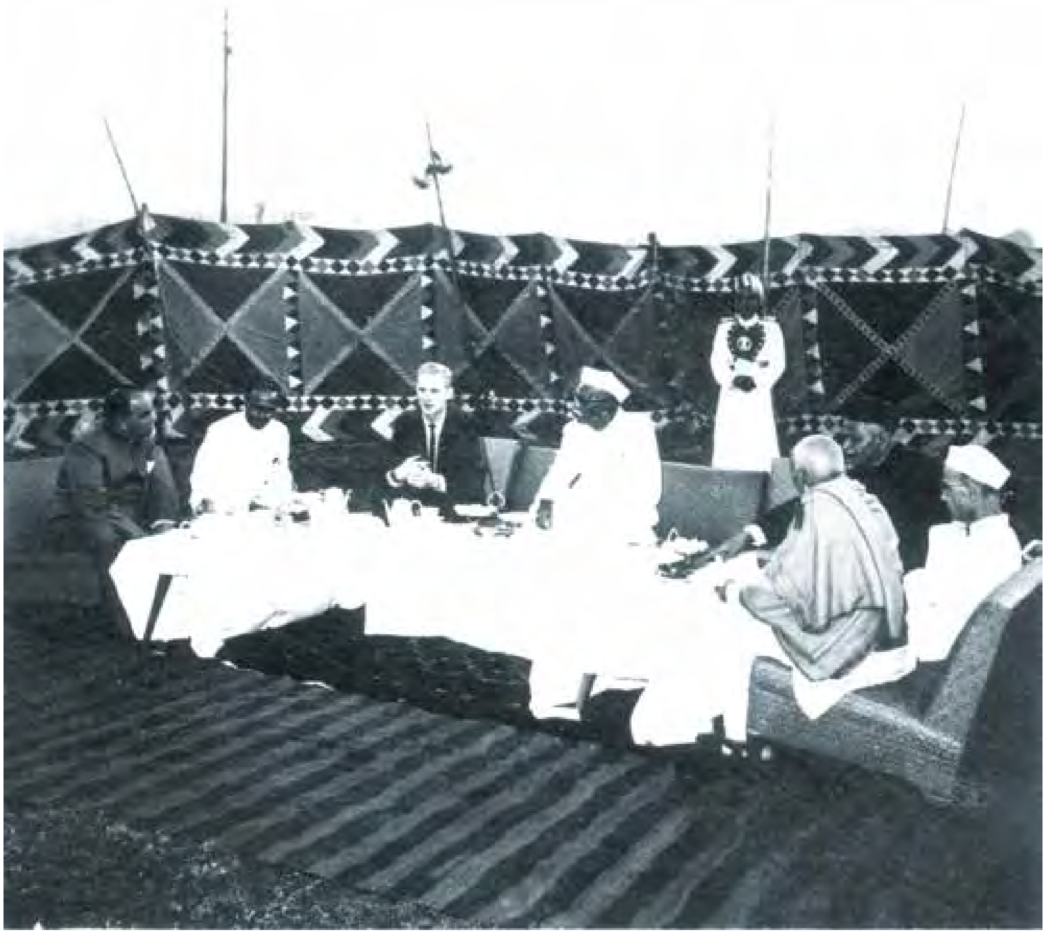

आजाद भवन के उद्घाटन के अवसर पर तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद विशिष्ट मेहमानों के साथ। नवंबर, 1960

आजाद भवन के उद्घाटन के अवसर पर तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद नवनिर्मित भवन का अवलोकन करते हुए। नवंबर, 1960

रसखान की रचनाओं में ब्रजभूमि की बानगी

वर्षा रानी

पिछले तीस वर्षों से भी अधिक समय से विविध विषयों में लेखन कर रहीं वर्षा रानी की हिंदी, अंग्रेजी में कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कई पुरस्कारों से सम्मानित लेखिका वर्तमान में स्वतंत्र पत्रकार हैं।

''देखि गदर हित-साहिबी,
दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा-बंस की,
ठसक छोरि रसखान।।
प्रेम-निकेतन श्रीवनहिं,
आइ गोवर्धन-धाम।
लहयो सरन चित चाहिके,
जुगल-सरूप ललाम।।
तोरि मानिनी तैं हियो,
फोरि मोहनी मान।
प्रेम देव की छबिहि लखि,
भए मियां रसखान।।''

यह रचना भक्तिकाल के मूर्धन्य मुसलमान कवि रसखान की है। इनका जन्म संभवतः सन् 1533 ई. में उत्तर प्रदेश के जिला हरदोई के गांव पिहानी में सैयद इब्राहिम के नाम से हुआ था। लेकिन कुछ विद्वान इनका जन्म सन् 1558 ई. को भी हुआ मानते हैं। इनके ही एक वंशज कन्नौज के काजी सैयद अब्दुल गफूर को, हरदोई जिले की तहसील शाहाबाद में 5000 बीघा जंगल और पांच गांव शेरशाह सूरी से हुमायूं को बचाने के लिए इनाम में मिले। यही कहीं पिहानी गांव बसाया गया था। सुख-सुविधापूर्ण बचपन यहां बिताने के बाद इब्राहिम ने अपनी युवावस्था शायद दिल्ली दरबार के वैभवपूर्ण माहौल में बिताई थी। लेकिन संवत् 1613 (1556 ईस्वी) में दिल्ली अचानक युद्ध, अराजकता और नरसंहार के रंगों में रंग गई। मुगल बादशाह हुमायूं की मौत हो चुकी थी और उसके 14 वर्षीय पुत्र अकबर ने आगरा को अपनी राजधानी बनाया। अपने संरक्षक और सिपहसालार बैरमखां के सहयोग से एक तरफ उसने सूर वंश का नाश किया और दूसरी ओर हेमू को पानीपत में करारी मात देकर हिंदुस्तान का बादशाह बनने की अपनी योग्यता को सिद्ध किया। सत्ता के लिए मुगलों के इस संघर्ष से मची भारी तबाही और संवत् 1612-1613 में वर्षा के अभाव के कारण पड़े भयानक अकाल के कारण दिल्ली श्मशान में तब्दील हो चुकी थी। कहते हैं कि अन्न के अभाव में भूख से त्रस्त लोगों ने घास-पात, बीज, पशुओं की खाल से लेकर नर मांस तक खाकर जीवन रक्षा करने की असफल कोशिश की। जो मौत के घाट उतर गए उनको न कफन नसीब हुआ न कब्र और धरती लाशों और कंकालों से पट गई। खेती करने के लिए किसान नहीं बचे और लुटेरों ने शहर को खूब लूटा। कई प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकारों जैसे अब्दुल कादिर बदायूंनी ने 'मुनतखिबुत्तवारीख' एवं नसीरुद्दीन अहमद ने वाकयते-दारुल-हुकूमत देहली में युद्ध और अकाल से त्रस्त लोगों का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है।

शाही दरबार से जुड़े 25 वर्षीय इब्राहिम का मन दिल्ली की बदहाली के साथ-साथ एक तरफ एक वनिक पुत्र से आसक्ति और दूसरी ओर अपनी मानिनी प्रेमिका की प्रताड़ना से भी पीड़ित था। इन सबसे इब्राहिम को तब मुक्ति मिली जब उसे वैष्णव भक्तों ने एक चित्र में श्रीकृष्ण की अनुपम झलक दिखाई और ब्रजधाम जाकर उनकी भक्ति करके अपना जीवन संवारने की प्रेरणा दी। चित्र को देखते ही इब्राहिम में तत्क्षण एक आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ और भगवान के चित्र को लेकर उनकी खोज में वह फौरन ही ब्रज की ओर उन्मुख हो गए। यहां उनके जीवन में आमूल चूल परिवर्तन होने वाला था। ब्रज की हरियाली और प्राकृतिक सुषमा ने उनका मन मोह लिया लेकिन बहुत मंदिरों में भटकने के बाद भी चित्र वाले अपने अभीष्ट का प्रत्यक्ष दर्शन उन्हें कहीं नहीं हुआ तो बेसुध इब्राहिम हारकर गोविंद कुंड पर जा बैठे। तीन दिन तक वह भूखे प्यासे गोवर्धन पर्वत पर स्थित श्रीनाथजी के मंदिर की ओर एकटक देखते रहे। अंत में अपने इस निराले भक्त की करुण दशा से द्रवित होकर और उसकी अनोखी भक्ति से प्रसन्न होकर भक्तवत्सल श्रीकृष्ण ने चित्र वाला रूप धरा और वैसे ही वस्त्र और आभूषण से सुसज्जित होकर ग्वाल बाल और गौएं लिए इब्राहिम को दिव्य दर्शन दिया। अपने इष्ट (महबूब) को साक्षात् देखकर बेचैन इब्राहिम उन्हें पकड़ने के लिए झपटे लेकिन श्रीनाथजी तब तक अंतर्ध्यान हो गए। गोकुल में वैष्णव गुरु विट्ठलनाथ के सामने फिर उनका आविर्भाव हुआ, जहां उन्होंने गोसाईंजी को इब्राहिम को अपना शिष्य बनाने की प्रेरणा दी। गोसाईंजी से वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होकर इब्राहीम ने मंदिर में प्रवेश किया और अपने इष्ट का अतुल्य रूप देखकर बन बैठे रसखान—''प्रेम देव की छबिहिं लखि भये मियां रसखान।''

तत्पश्चात् रसखान जैसे ही वापस जाने के लिए मुड़े तो श्रीकृष्ण ने उनकी बांह पकड़ कर रोक लिया और अपने साथ धेनु चराने ले गए। माना जाता है कि रसखान को इस प्रकार पहले कृष्ण की रसमय और आनंदमय लीलाओं का प्रत्यक्ष दर्शन होता था और भावावेश में

(ब्रज का एक ग्वाला। पृष्ठभूमि में बरसाना स्थित राधाजी का मंदिर)

वे उसमें सम्मिलित भी होते थे, और बाद में उन्हीं नयनाभिराम दृश्यों का बखान करते थे। आचार्य वल्लभ ब्रह्मसूत्र के अनुसार प्रभुलीला में इस प्रकार भाग लेकर साधक मोक्ष से भी अधिक पा जाता है और फिर उसे बैकुंठ की प्राप्ति की भी इच्छा शेष नहीं रहती। जिसने अपने अनन्य प्रेम से प्रभु को प्रसन्न कर लिया और उनका प्रेम पा लिया उसे ही हरिलीला देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण के मनोहारी रूपों और लीलाओं को भजते-भजते रसखान को गोपी भाव की सिद्धि हुई। कृष्ण के अलौकिक और अभूतपूर्व प्रेमरस में डूबने के बाद वह ब्रज में ही बस गए और जीवन भर इसे नहीं छोड़ा।

यों पिहानी गांव के इब्राहिम कर्म से वैष्णव बने। ब्रजभूमि और श्रीकृष्ण से अनन्य प्रेम करने वाले रसखान जन्म से तो मुसलमान थे, लेकिन परम भक्ति रस चखने वाले को धार्मिक कट्टरता से क्या, हर धर्म से इतर था उनका कृष्ण प्रेम। विद्यानिवास मिश्र की पुस्तक 'रसखान रचनावली' में सत्यदेव मिश्र ने उनका जीवन वृत्त लिखते हुए सही कहा है कि, ''परम प्रेम (ईश्वर प्रेम) अथवा चरम भक्ति की अनुभूति के कारण सांप्रदायिक धर्मों का उनके लिए कोई महत्व ही न रह गया। उनका प्रभु-प्रेम धर्मातीत है, धर्म से परे है। धर्म की संज्ञा में उसे बांधा नहीं जा सकता। वह धर्म संप्रदाय के बंधनों से उन्मुक्त ऊर्ध्वगामी है। अतः वह न हिंदू है और न मुसलमान। मात्र ईश्वर प्रेमी हैं, प्रभु भक्त हैं।'' प्राक्कथन में विद्यानिवास मिश्र भी इस बात की पुष्टि करते हैं, ''वे सच्चे अर्थ में भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि हैं। आज जाति, धर्म और समुदाय के नाम पर विखंडित राष्ट्र को ऐसे साहित्यकारों की आवश्यकता है, जो भारतीय जनमानस में प्रेम और समन्वयवादी भाव भर सकें। कहना न होगा कि मुसलमान होते हुए भी रसखान का कृष्ण-प्रेम इसका ज्वलंत उदाहरण है।'' रसखान तुलसीदास के समकालीन थे और संवत् 1634-1636 के दौरान तीन वर्षों तक यमुना तट पर 'रामचरितमानस' का पाठ सुनने के बाद संभवतः उन्हें काव्य रचना की प्रेरणा मिली। फारसी, संस्कृत और हिंदी के जानकार बने इब्राहिम और हिंदू धर्म और प्राचीन वेद पुराणों के ज्ञाता भी। कहा जाता है कि फारसी में 'श्रीमद्भागवत' का रूपांतरण पढ़ने के बाद श्रीकृष्ण के प्रति उनका आकर्षण और भी बढ़ गया और वही उनकी सारी रचनाओं के आधार बने और ब्रज की धरती बनी उनका कर्मक्षेत्र।

ब्रज के सबसे बड़े आकर्षण थे उसमें जन्मे और पले बढ़े श्रीकृष्ण—जिनके सान्निध्य के लिए सारा ब्रज व्याकुल था। जिनके हाथ सारा ब्रज बिक चुका था, जिनमें जीवन के नवरस प्रेम, मद, मोह, क्रोध, राग, द्वेष, ईर्ष्या, करुणा, वात्सल्य सभी समाहित थे और जिनके प्रेम का उत्कट जादू ब्रजवासियों की तरह रसखान पर भी इस तरह से तारी हो गया कि फिर जीते जी न उतरा। ब्रज की माटी का अप्रतिम सौंदर्य, धरती और आकाश, सूर्य और चंद्र, धूप और छाया, गर्मी और बरसात सब कृष्णमय थे। विद्यानिवास मिश्र के शब्दों में, ''इसकी रेत रस की सरिता है, और इसकी नदी विरह के उद्वेग से खौलती हुई लहर, इसके पाहन को छप्पन भोग लगता है और इसके तमाल के अंधकार में नीले और सुनहले प्रकाशों का

खेल होता है।'' इसी माटी में निवास करके रसखान ने अपने लौकिक प्रेम (इश्के मजाजी) को अपने प्रिय पर न्योछावर करना सीखा और उसे अलौकिक प्रेम (इश्के हकीकी) में परिणत होते पाया। उन्होंने यह भी जाना कि कमलतंतु से कोमल और तलवार से भी धारदार प्रेम शारीरिक और मानसिक दोनों उत्सर्ग चाहता है और किसी भौतिक वर्जना, सामाजिक प्रतिष्ठा, लोक-लाज, नियम-कानून को नहीं मानता। ब्रजमंडल जो प्राकृतिक और आध्यात्मिक वैभव का पवित्र धाम था। वहां की रसयात्रा के कारण ही रसखान ने प्रेम के इस सच्चे संपूर्ण स्वरूप और उससे होने वाले परमानंद को अनुभव किया। डॉ. माजदा असद अपनी पुस्तक 'रसखान व्यक्तित्व और कृतित्व' में कहती हैं कि, ''हिंदी साहित्य में रसखान की अविस्मरणीय मौलिक देन उनका 'प्रेमदर्शन' है... उन्होंने प्रेम को आनंद का स्त्रोत माना है। बिना प्रेम के आनंद की अनुभूति नहीं होती। आनंद के दोनों छोर विषयानंद और आत्मानंद प्रेम के लौकिक तथा दिव्य रूप माने जाते हैं। भक्तिकाल में उत्पन्न होकर उससे प्रेरणा लेकर एक नई काव्यधारा को जन्म देना उनकी असाधारण प्रतिभा की देन है।'' यों कृष्ण और उनके धाम के प्रति अपार और अनन्य प्रेम की आंतरिक अनुभूति और भक्ति में पगे मन और कंठ से जो स्वच्छंद, सहज, स्वाभाविक, मधुर, मुग्ध भाव व्यक्त हुआ वही रसखान का काव्य बन गया। इस प्रकार इब्राहिम को रसखान बनाने में रसमय ब्रजभूमि जो उनके आराध्य की जन्म और लीलास्थली दोनों ही थीं का बहुत बड़ा योगदान था। ब्रज की इसी माटी ने अपने कण-कण में कृष्ण और राधा, पुरुष और प्रकृति के प्रेम और मिलन की स्मृतियां संजोई थीं। इस युगल जोड़ी और इनके सहचर गोप-गोपियों के प्रेममय और अपूर्व संसार में रसखान ऐसे रम गए कि उन्हें बाकी सब कुछ निरर्थक लगने लगा—''दंपत्ति सुख अति विषयरस पूजा निष्ठा ध्यान, इन तें परे बखानिए सुद्ध प्रेम रसखान।'' अपने कृष्ण प्रेम का विशद निरूपण करते हुए रसखान ने ज्ञान, कर्म और उपासना की अपेक्षा सिर्फ प्रेम को ही श्रेष्ठ माना है, क्योंकि वह अहंकार रहित होता है और इस अनुभूति के बिना मनुष्य को ब्रह्मानंद की प्राप्ति नहीं हो सकती। अपने इष्ट के प्रेम की वेदना और माधुर्य दोनों का रस चखकर उन्हीं के रूप और लीलाओं के बखान से उन्होंने अपनी काव्य यात्रा की शुरुआत की। 'प्रेमवाटिका' उनकी पहली रचना थी जिसे उन्होंने श्रीचरणों में ही समर्पित कर दिया—

''विधु-सागर-रस-इंदु सुभ,
 बरस सरस रसखानि।
प्रेमवाटिका रुचि रुचिर,
 चिर हिय हरख बखानि।।
अरपि श्रीहरि-चरण जुग,
 पदुम-पराग निहार।
विचरहिं या में रसिकवर,
 मधुकर-निकर अपार।।''

उनके नैनों और अंतर्मन में तो कृष्ण का चित्र वाला ही अनुपम सुंदर स्वरूप बसा हुआ था और इसी का अत्यंत मनोहारी चित्रण उन्होंने बड़ी लगन से किया। ऐसी थी वह मोहनी मूर्ति, जिसकी उपमा देने के लिए कवियों को शब्द नहीं मिलते थे, ''देख्यौ रूप अपार मोहन सुंदर स्याम को। वह ब्रज राजकुमार, हिय जिय नैननि मैं बस्यौ।''

(गोवर्धन मंदिर जहां रसखान को श्रीकृष्ण के दर्शन हुए)

(इस्कॉन मंदिर स्थित राधाकृष्ण और गोपियों का विग्रह जिनके लीलाओं का बखान करते हुए इब्राहिम रसखान बने)

कानों में कुंडल, सिर पर मोरपंखी, गले में मादक सुगंधित बनमाला पहने, हाथ में बंसी लिए, बड़ी बड़ी आंखों और कमान जैसी भौंह वाले सांवले सलोने श्रीकृष्ण की अद्‌भुत छवि, उनकी मनमोहिनी मुस्कान, उनका रोमांचक स्पर्श, उनकी मधुर आवाज और उनकी मनोरम चेष्टाएं—अन्य गोपियों की तरह रसखान भी श्रीकृष्ण के रूप-रंग और अगाध प्रेम में उलझ कर रह गए हैं—

''डोरि लियौ दृग चोरि लियौ
चित डारयौ है प्रेम को फंद घनेरो।
कैसी करों अब क्यौं निकसौं
रसखानि परयौं तन रूप को घेरो।।''

आराध्य देव होने के बावजूद रसखान के इष्ट सिर्फ भगवान या अवतार नहीं बल्कि एक सुंदर सुपुरुष हैं—

''बांकी बड़ी अंखिया बड़रारे
कपोलनि बोलनि कौं कल बानी।
सुंदर हास सुधानिधि सों मुख,
मूरति रंग सुधारस सानी।
ऐसी नवेली ने देखे कहूं
ब्रजराज लला अति ही सुखदानी।
डोलति हैं बन बीथिन में
रसखानि मनोहर रूप लुभानी।।''

अपने अनंत रूपराशि से नंद का वह पुत्र गोपियों के प्राणों को इस तरह बेध देता है कि वे अपना आपा खो देती हैं—

''लोक की लाज तज्यौं तबहीं
जब देख्यौ सखी ब्रजचंद सलोनो।
खंजन मीन सरोजन की छवि
गंजन नैन लला दिनहोनो।।
रसखानि निहारि सकें जु सम्हारि
कै को तिय है वह रूप सुठोनो।
भौंह कमान सों (जोहन) कों सब
बेधत प्रानिन नंद को छौनो।।''

डॉ. माजदा असद के शब्दों में, ''पुरुष सौंदर्य चित्रण की यह परंपरा रसखान की हिंदी-साहित्य को अवेक्षणीय देन है।''

यों राधाकृष्ण, गोप-गोपियां और ब्रजवासी सारे अभिनेता बने और ब्रज बना एक विशाल रंगमंच जिस पर श्रीकृष्ण ने जन्म से लेकर युवावस्था तक की अपनी महत्वपूर्ण लीलाएं दर्शाई। दिव्य प्रेम में उन्मत्त प्रेमी-भक्त रसखान सिर्फ दर्शक नहीं रहे। अपने कमाल की भावशक्ति और सहज प्रेमपूर्ण आवेग में रचित कवित्त, सवैया, सोरठा और दोहों के माध्यम से उन्होंने अपने इष्ट के दैनिक क्रियाकलापों को मार्मिक अभिव्यक्ति दी। सत्यदेव मिश्र के अनुसार—''प्रेम, भक्ति, बाल-लीला, गोचारण, चीरहरण, कुंज-विलास, रास-लीला, पनघट-प्रसंग, वन-लीला, गोरस-लीला, राधा रूप वर्णन, वयःसंधि, सुकुमारता, वंशीवादन, पूर्वराग, अभिलाषा, रूपमाधुरी, चेतावनी, उपदेश, प्रेम-लीला, दधिदान, उपालंभ, सपत्निभाव, मिलन, वियोग, चौपड़ रिझवार, मानवती प्रिय, विदग्ध, सूरत, सुरतांत, होली, भ्रमरगीत, हरिशंकरी, भक्ति भावना, अलौकिकत्व, नटखट कृष्ण, कृष्ण सौंदर्य, कालिया-दमन, फाग-लीला, सखी-

शिक्षा, कुवलयापीड़, उद्धव-उपदेश, बराक प्रेम आदि अन्यान्य प्रसंगों का वर्णन ही अनंत का लीला व्यापार है। अथवा उसके क्रीड़ा कुंज की प्रतिच्छाया है।''

अतः वसंत हो या सावन, चांदनी रात हो या गर्म दुपहरी, होली हो या दीवाली ब्रज की हर ऋतु, हर दिवस, हर त्योहार अपनी पूर्ण सजधज में श्रीकृष्ण लीला के लिए रमणीय हो उठते हैं। यहां प्रेमऋतु वसंत का आगमन मंजरियों से भरे आम के वृक्षों, तमाल से लिपटी कोमल हरियाली लताओं, कूकती कोयल, मंडराते भौंरों और हौले-हौले बहती सुगंधित बयार से होता है—

''डहडही बैरी मंजुडार सहकार की पै,
चहचही चुहल चहूं कित अलीन की।
लहलही लोनी लता लपटी तमालन पै,
कहकही तापै कोकिला की काकलीन की।।
तहतही करि रसखानि के मिलन हेत,
बहबही बानि तजि मानस मलीन की।
महमही मंद मंद मारुत मिलनि तैसी,
गहगही खिलनि गुलाब की कलीन की।।''

जेठ की धूप से बचकर कुंजों में प्रणय निवेदन भी कुछ कम आह्लादकारी नहीं है, ''जेठ के घाम भाई सुखधाम अनंद ही अंग ही अंग समाहीं।।''

फागुन का तो कहना ही क्या, ''फागुन लाग्यों सखी जब तैं तब तैं ब्रजमंडल धूम मच्यौं है।'' होली के विविध रंगों में रंगी ब्रजभूमि प्रेम के रंगों को और प्रगाढ़ बना देती है। रंग भरी पिचकारी, अबीर और गुलाल लिए धूम मचाते ग्वाल बाल संग कृष्ण, गोपियों और राधा को उल्लासपूर्वक प्रेम रंग में भी सराबोर कर रहे हैं—

(माता यशोदा के वात्सल्य में डूबे कृष्ण, बलराम और ग्वालबाल)

''आवत लाल गुलाल लिए मग
सूने मिली इक नार नवीनी।
त्यौं रसखानि लगाइ हिये भटू
मौज कियौ मन माहि अधीनी।
सारी फटी, सुकुमारी हटी,
अंगिया दरकी सरकी रंगभीनी।
गाल गुलाल लगाइ लगाइ कै
अंक रिझाइ बिदा करि दीनी।''

रंग में डूबी गोपियां सावन के आकाश में बिजली की भांति कौंधती हैं,

''मिलि खेलत फाग बढ़यौ अनुराग
सुहाग सनी सुख की रमकैं।
कर कुंकुम लै करि कंजमुखी
प्रिय के दृग लावन कौं झमकैं।
रसखानि गुलाल की धूंधर में
ब्रजबालन की दुति यौं दमकैं।
मनों सावन सांझ ललाई कै
मांझ चहूं दिसि तें चपला चमकैं।''

दीवाली ब्रज को रोशनी और प्रेम दोनों से आलोकित कर देती है। बृषभान के घर पर सभी ब्रजवासी एकत्र होकर गा बजा रहे हैं, लेकिन कृष्ण और राधिका के बीच इशारों

में प्यार मनुहार चल रहा है और सबकी नजर बचा कर कृष्ण राधा की आंखों में काजल लगा देते हैं और माथे पर कुंकुम—

''वृषभान के गेह दिवारी के
ध्यौस अहीर अहिरिनि भोर भई।
जित की तितही धुनि गोधन की
सब ही ब्रज ह्वै रह्यो राग मई।
रसखान तबै हरि राधिका यौं
कुछ सैननि ही रस बेल बई।
उहि अंजन आंखिनि आन्ज्यौ भटू
उन कुंकुम आइ लिलार दई।''

ब्रज की मिट्टी भी श्रीकृष्ण के स्पर्श से धन्य होकर पुण्यधाम बनी। इसलिए विद्यानिवास मिश्र के शब्दों में, ''रसखान की काव्य यात्रा को समझने के लिए ब्रज की जमीन को समझना बहुत जरूरी है।'' गोकुल में नंदजी के आंगन में विराट पुरुष को इसी मिट्टी को फांककर महान बनाते देखकर रसखान आश्चर्य से भर जाते हैं—

''कहा कहूं आली कछु कहती बनै न दसा।
नंदजी के अंगना में कौतुक एक देख्यौ मैं।।
जगत के ठाटी महापुरुष विराटी जो निरंजन।
निराटी ताहि माटी खात देख्यौ मैं।।''

इस ब्रजभूमि पर श्रीकृष्ण जो भी रूप लेते हैं रसखान उस पर मोहित हो जाते हैं। एक ओर तो वे धूल भरे आंगन में पैंजनी बजाते खेलते हुए सुंदर बालकृष्ण पर लुभा जाते हैं, जिनके हाथ से कौआ माखन रोटी ले उड़ता है—

''धूरि भरे अति सोभित स्यामजू
तैसी बनी सिर सुंदर चोटी।
खेलत खात फिरै अंगना पग
पैंजनी बाजति पीरी कछोटी।
वा छवि को रसखानि विलोकत
वारत काम कलानिज कोटि।
काग के भाग बड़े सजनी
हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी।।''

तो दूसरी ओर बड़े होकर अपने गायों और ग्वालबालों के साथ कदंब वृक्ष पर चढ़कर धमाचौकड़ी मचाने वाले पीतांबर और वनमाला पहने, बांकी चितवन, बंसी की मधुर तान और मंद मुस्कान से मन हरने वाले, युवा श्रीकृष्ण के रूप पर मोहित हो जाते हैं—

''गोरज विराजै भाल लहलही वनमाल,
आगे गैयां पीछें ग्वाल गावें मृदुतान री।
जैसी धुनि मधुर मधुर बांसुरी की,
तैसी बंक चितवनि मंद-मंद मुस्कान री।।
कदम विटप के निकट तटनी के तट,
अटा चढ़ि देख पीत पट फहरान री।
रस बरसावै तन तपन बुझावै,
नैन प्राननि रिझावै वह आवै रसखानि री।।''

ब्रज की कुंजों में मुस्कुराते हुए जब वह गोपियों का रास्ता रोक लेते हैं, तो वे अपनी सुधबुध, घरद्वार और लोकलाज भूल कर उनके रूप जाल में फंस जाती हैं—

''रंग भरयौ मुसकात लला निकस्यौ
कल कुंजन ते सुखदाई।
टूटि गयौ घर को सब बंधन
छूटि गी आरज लाज बड़ाई।।''

खुद प्रेम रस में पगी गोपी राधिका को वन में प्रवेश करने से मना करती है, क्योंकि कचनार की डालियों पर वहां फूल नहीं मारक प्रेम खिला है। वहां सघन कुंजों में बैठे कृष्ण के सामने वह अपनी लाज संभाल नहीं पाएगी—

''जाहि री ना भटू क्यों करि के
बन पैठत पाईबी लाज संभारन।
कुंजनि नंदकुमार बसै तहां
मार बसै कचनार की डारन।।''

लेकिन ब्रज की धरती पर पुरुष और प्रकृति का मिलना अनिवार्य है, वन के एकांत में, एक दूसरे के सान्निध्य में, उनके प्रेम पगे बातों से, स्नेहिल स्पर्शों और मादक अभिसार से ही तो तीनों लोकों का सौंदर्य प्रगाढ़ होता है—

''लाड़ली लाल लसैं लखिए
अलि पुंजनि कुंजनि में छवि गाढ़ी।
ऊजरि ज्यौं बिजुरी सी जुरी
चहूं गूजरी केलिकला सम काढ़ी।
त्यौं रसखानि न जानि परै
सुखमा तिहुं लोकन की अति बाढ़ी।
बालन लाल लिए बिहरैं छहरैं
बर मोरपंखी सिर ठाढ़ी।।''

महाउपद्रवी कृष्ण को ब्रजभूमि में कहीं भी आने-जाने और कुछ भी करने से भला कौन रोक सकता है। तभी तो जमुना में नहाती हुई गोपियों का चीरहरण करके वह कदंब के वृक्ष पर जा बैठते हैं। क्रोधित गोपियां पहले अधिकार से और फिर मनुहार से अपने वस्त्र मांगती हैं। यहां पर (वस्त्र) यानि माया या भौतिक संस्कारों को त्याग कर जीवात्मा (गोपियां) भक्ति सागर (जमुना जल) में स्नान कर परमात्मा में लीन होने का उपक्रम कर रही हैं—

''एक समय जमुना-जल में सब
मज्जन हेत धसीं ब्रज-गोरी।
त्यौं रसखानि गयौ मनमोहन
लैकर चीर कदंब की छोरी।।
न्हाई जबै निकसीं बनिता
चहुंओर चितै चित रोष करो री।
हार हियें भरी भावन सों पट
दीने लला वचनामृत बोरी।।''

लेकिन जैसे ही रास के लिए सम्मोहिनी बंसी बजने लगती है, तो बेचैन गोपियां, क्रोध त्याग कर, हर बाधा पार कर, लोक-लाज और कुल की प्रतिष्ठा को भूल कर वंशीवट तक खिंची चली आती हैं, कृष्ण के सान्निध्य के अद्‌भुत आनंद और उनके विविध मनोहारी भावों के रसपान से वे वंचित नहीं रहना चाहती हैं। यहां गोपियां कृष्ण भक्तों का पर्याय हैं, जो रास के माध्यम से प्रभु मिलन को आई हैं—

''आज भटू मुरली-बट के तट
नंद के सांवरे रास रच्यौ री।
नैननि सैननि बैननि सौं नहिं
कोऊ मनोहर भाव बच्यौ री।
जध्यपि राखन कौं कुलकानि
सबैं ब्रजबालन प्रान पच्यौ री।
तध्यपि वा रसखानि के हाथ बिकानि
कौं अंत लच्यौ पै लच्यौ री।।''

ब्रज की हवाओं में श्रीकृष्ण की चिर संगिनी बांसुरी की मधुर तानों की गूंज को रसखान कैसे अनसुना कर पाते जिसे सुनकर बेसुध राधा गागर भरना भूल जाती थीं, गोपियां दही जमाना भूल जाती थीं, पथिक चलना भूल जाते थे। नाद ब्रह्म का रूप, बंसी की यह

ध्वनि आध्यात्मिक और भौतिक दोनों तरह का सुख देती हैं, और वल्लभाचार्य के शब्दों में जिसे प्रभु का अनन्य प्रेम प्राप्त होता है, उसे इस बंसी की आनंददायक तान अनायास ही सुनाई देने लगती है—

''कौन ठगौरी भरी हरि आजु
बजाई है बांसुरिया रंग भीनी।
तान सुनी जिनहीं तिनहीं तबहीं
तिन लाज बिदा कर दीनी।।
घूमै घड़ी घड़ी नंद के द्वार
नवीनी कहा कहूं बाल प्रबिनी।
या ब्रजमंडल में रसखानि सु
कौन भटू जो लटू नहिं कीनी।।''

राधा पर तो श्रीकृष्ण की बांसुरी ऐसा मूठ चलाती है कि उनके प्राण ही संकट में पड़ जाते हैं—

''बंसी बजावत आनि कढ़ो सो
गली में अली कछु टोना सों डारैं।
हेरी चितै तिरछी करि दृष्टि
चलो गयो मोहन मूठि सी मारैं।।
ताही घरी सों पपरी धरी सेज पै
प्यारी न बोलति प्रानहूं वारैं।।
राधिका जीहैं तो जीहैं सबै न तौ
पीहैं हलाहल नंद के दवारै।।''

बेसुध, उसांसे भरती, रोती-बिलखती, मूर्छित होती, उलटे-सीधे पग धरती, कृष्ण मिलन को बावरी गोपियां बांसुरी को अपना सौत मानती हैं—

''कान्हा भए बस बांसुरी के अब
कौन सखी हमकों चहिहै।
निस ध्योस रहै संग-साथ लगी
यह सौतिन तापन क्यों सहिहै।।
जिन मोहि लियौ मनमोहन को
रसखानि सदा हमकों दहिहै।
मिलि आओ सबै सखी भगि चलै,
अब तौ ब्रज में बंसुरी रहिहै।।''

जब इस बैरन से कृष्ण का ध्यान हटाने के उनके सभी प्रयास निष्फल हो जाते हैं, तब वे इसका नाश करने की ठान लेती हैं—

''करियै उपाय बांस डारियै कटाय,
नाहिं उपजैगो बांस नाहिं बाजै फेरि बांसुरी।''

ब्रजभूमि श्रीकृष्ण की उन कार्यों की भी साक्षी बनी, जो उन्होंने आसुरी शक्तियों का नाश करके मानव कल्याण के लिए किया। अत्याचारी मामा कंस के द्वारा उनका वध करने के लिए भेजे गए हाथी कुवलया का अंत करके श्रीकृष्ण इसका प्रमाण देते हैं—

''कंस के क्रोध की फैलि रही सिगरे
ब्रजमंडल मांझ फुकार सी।
आई गए कछनी कछि कै तबहीं
नट-नागर नंदकुमार सी।
दूवरद को रद खैंचि लियौ रसखानि
हियै महि लाई विचार सी।
लीनो कुठौर लगी लखि तौरि
कलंक तमाल तें कीरति-डार सी।।''

कालिया नाग का अनोखा दमन भी ब्रज की धरा पर हुआ था। यमुना जल में इसे वश में करके कृष्ण जैसे ही उसके सिर पर चढ़कर नाचने लगते हैं, तो आनंदित ब्रजवासी कृष्ण की सकुशलता पर भयभीत यशोदा के भाग्य की सराहना करने लगते हैं—

''लोग कहैं ब्रज के रसखानि
अनंदित नंद जसोमति जू पर।
छोहरा आजु नयो जन्म्यो तुम सो
कोऊ भग भरयौ नहिं भू पर।
वारि कै दाम संवार करौ अपने
अपचाल कुचाल ललु पर।
नाचत रावरो लाल गुपाल सो
काल सो व्याल-कपाल के ऊपर।।''

असंख्य नाम और गुण वाले अपरंपार और महाशक्तिशाली परब्रह्म, योगियों के साध्य श्रीकृष्ण अपने भक्तों की निश्चल भक्ति से प्रसन्न होकर इसी ब्रजभूमि में उन्हें आनंद देने के लिए उनकी साधारण इच्छाओं की पूर्ति करते हैं—

''सेष गनेस महेस दिनेस
सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड
अछेद अभेद सुबेद बतावैं।
नारद से सुक ब्यास रहैं पचि
हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोरियां
छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं।।''

ऐसे महिमामय प्रभु को समर्पण करके, उनकी शरण में जाकर पूर्णरूप से आश्वस्त हुआ जा सकता है—

''द्रौपदी और गनिका गज गीध,
अजामिल सों कियो सो न निहारो।
गौतम-गेहनी कैसी तरी,
प्रह्लाद कौं कैसे हरयौ दुख भारो।
काहे कौं सोच करै रसखानि
कहा करिहै रबिनंद बिचारो।
ताखन जाखन राखियै माखन
चाखन हरो सो राखनहारो।।''

यों रसखान ने ब्रजधाम के सभी रंगों और दृश्यों, ऋतुओं और त्योहारों, ब्रजवासियों की वेशभूषा और सिंगार, उत्सवों और खेलों, जादू-टोना और श्रीकृष्ण के प्रति आकर्षण और समर्पण यानि संपूर्ण श्रीकृष्ण लीला का अभूतपूर्व वर्णन बड़ी सहजता से किया है। डॉ. माजदा असद के शब्दों में, ''रसखान ने अपने काव्य में ब्रज संस्कृति के दर्शन कराए हैं। इस संस्कृति के प्रति उनका विशेष मोह है।''

अपनी रचनाओं के माध्यम से रसखान ने सारी मानवीय संवेदनाओं को जैसे प्रेम, कलह, वात्सल्य, माधुर्य, ईर्ष्या, क्रोध, हास-परिहास, आमोद-प्रमोद इत्यादि को जनमानस की आम बोली ब्रजभाषा में बहुत स्वाभाविक ढंग से उकेरा है—यही भाषा तो श्रीकृष्ण भी बोलते और समझते थे। डॉ. माजदा असद का विचार सही है कि 'भाषा की सरसता के ही कारण रसखान के कवित्त सवैयों का नाम रसखानि (रस की खान) पड़ गया।''

जिस समय पावन धाम में रसखान की अभिलाषा पूर्ण हुई, ब्रज का वह संसार रसखान को इतना प्रिय हो गया कि वह इसके ऊपर सभी मूल्यवान चीज वारने को तैयार थे—

''या लकुटि अरु कामरिया पर,
राज तिहूं पुर को तजि डारौं।
आठहूं सिद्धि नवो निधि को सुख
नंद की गाइ चराई बिसारौं।।

रसखानि कबौं इन आंखिन सों ब्रज
के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक रौ कलधौत के धाम
करील के कुंजन ऊपर वारौं।।''

ब्रज की भूमि उन्हें बड़ी न्यारी लगी, क्योंकि यहां अचानक ही कुछ अनमोल मिल जाता है, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। रात में सोते हुए भी यशोदा ने उस भगवान को प्राप्त कर लिया, जिसे युग-युगांतर में जागते हुए किसी ने नहीं पाया—

''काहू न चौजुग जागत पायो
सो राति जसोमति सोवत पायो।।''

अपना उदाहरण देते हुए वह कहते हैं कि मुझे भी तो वह एकाएक ही मिला, मैं तो उसे जानता-पहचानता भी नहीं था, क्योंकि वह मेरी गली से पहले कभी निकला ही नहीं। फिर भी कालिंदी के किनारे उसकी एक ही झलक ने मुझे संपूर्ण रूप में बदल डाला—

''माइ सुहाइ न या पै कहूं यह
न कहूं यह मेरी गिरि निकरयौ है।
धीर समीर कालिंदी के तीर,
खरयौ रहै आजु री दीठि परयौ है।।''

श्रीकृष्ण के माध्यम से ब्रज जीवात्मा को परमात्मा में लीन हो जाने के लिए प्रबल रूप से आमंत्रित करता है, अवसर प्रदान करता है। जो यहां आता है वह कृष्णभक्ति में अपने आप को खोकर ऐसा कुछ पा लेता है, जो उससे फिर कभी नहीं छूटता, ''अब कैसे छुटाई छुटै अंटकी रसखानि दुहुंकी बिलोकनि बांकी।।'' श्रीकृष्ण की वियोग की कल्पना से इस माटी में निवास करने वाले हर ब्रजवासी की भांति रसखान भी घबरा उठते हैं। उनकी छेड़छाड़, मस्ती, लूटपाट, चालबाजी, हर उपद्रव सहकर ब्रज उन्हें अपने ही धरा पर हमेशा देखना और रखना चाहता है—

''डरै सदा चाहें न कुछ सहै सबै जो होय।
रहै एक रस चाहि कै प्रेम बखानौ सोय।।''

लेकिन परिवर्तन संसार का नियम है और यही श्रीकृष्ण जब ब्रजभूमि छोड़ आते हैं, सब नेह तोड़ जाते हैं, तो ब्रजवासियों का असहनीय दर्द रसखान कुछ इस तरह महसूस करते हैं—

''सांझ ते भोर लौं भोर ते सांझ लौं
गोपिन घातक यौं रट लाई।
एरी भटू कहिए तौ कहां कहूं
बैरी अहीर ने पीर ना पाई।।''

और जब उद्धव वेदना से विह्वल गोपियों को कृष्ण का संदेश देकर अनासक्त होने को कहते हैं, तो उन्हें न पहचानकर उनका मखौल उड़ाती हुई वे कहती हैं, कि वे बावरे हैं, जो काले नाग कृष्ण की विषरूपी विरह ज्वाला को जोग की भस्म-भभूति से उतारने का प्रयत्न कर रहे हैं—

''कारे विसारै को चाहे उतारयौ
अरी विष बावरो जे राख लगाइ कै।''

उद्धव को क्या पता कि यही ज्वाला तो इस धरा के निवासियों की जीवन ज्योति है। जो श्रीकृष्ण पर रीझे वही तो प्राण हैं, जिस रूप पर श्रीकृष्ण रीझे वही तो रूप है, जो सीस उनके चरण छुए वही तो सीस है, जिसे श्रीकृष्ण स्पर्श करे वही तो देह है, जो श्रीकृष्ण दुहे वही तो दूध है, जिसे वह ढरका दे वही तो दही है, जो उन्हें अच्छा लगे वही तो मानव स्वभाव होना चाहिए—

''प्रान वही जु रहैं रिझ वा पर
रूप वही जिहिं वाहि रिझायो।
सीस वही जिहिं वे परसे पग
देह वही जिन ता परसायो।।
दूध वही जो दुहायो री वाही ने
सोइ दही जू वही ढरकायौ
और कहां लौं कहूं रसखान
सुभाव वहीं जु वही मन भायो।।''

अनन्य ब्रजवासी रसखान ने इस प्रकार 85 साल तक कृष्णमय जीवन बिताने के बाद इसी ब्रजभूमि में संवत् 1675-1676 के आसपास देह त्याग किया और कहते हैं कि मरने के उपरांत उनका अंतिम संस्कार श्रीकृष्ण द्वारा ही किया गया। वृंदावन से 6 मील दूर महावन में लाल पत्थर से बनी उनकी समाधि आज भी देखी जा सकती है। जीवन और मृत्यु दोनों में रसखान ने ब्रजधाम में ही शांति पाई तभी उनकी आखिरी साध थी—

''मानुष हौं तो वही रसखानि
बसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पशु हौं तो कहा बस मेरो
चरौं नित नंद की धेनु मंझारन।।
पाहन हौं तो वही गिरि को
जो धरयो कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौ मिलि
कालिंदी कूल कदंब की डारन।।''

अगर मेरा अगला जन्म मनुष्य का हो तो मैं फिर रसखान बनकर गोकुल गांव के ग्वालों के बीच ब्रज में निवास करूं। जो पशु बनूं तो फिर मैं नंद की गायों के साथ चरता रहूं। अगर पत्थर बनूं तो उस गोवर्धन पर्वत का, जिसे छत्र की तरह उठा कर कृष्ण ने इंद्र द्वारा भेजी गई मूसलाधार वर्षा को रोका। जो मैं चिड़िया बनूं तो मेरा बसेरा जमुना तट पर खड़े कदंब की डाल पर हो। यों ब्रज की मनोरमता और कृष्ण की सरसता अपनी आत्मा में संजोए रसखान ने ब्रज की रज में अपनी रसयात्रा संपूर्ण की।

संदर्भ—

रसखान : व्यक्तित्व और कृतित्व, प्रथम संस्कारण, 1991, डॉ. माजदा असद, प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली।

रसखान रचनावली, सं. 1994, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

रसखान और उनका काव्य : दूसरा संस्करण, चंद्रशेखर पांडे, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

रसखान का अमर काव्य : 1958, दुर्गाशंकर मिश्र, पवन प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊ।

रसखान जीवन और कृतित्व : प्रथम संस्करण, 1962, देवेंद्र प्रताप उपाध्याय, आनंद पुस्तक भवन, वाराणसी।

रसखान कवितावली : भार्गव पुस्तकालय काशी।

रसखान पदावली : सं. 1987, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, हिंदी प्रेस, प्रयाग।

सी-897-डी, सुशांत लोक, फेज-1,
गुड़गांव-122002 (हरियाणा)

रसखान का कृष्ण प्रेम

सकीना अख़्तर

विभिन्न राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में सकीना अख्तर के लेख, कहानियां तथा शोध-पत्र प्रकाशित। कश्मीरी लोक साहित्य एवं संत परंपरा पर पुस्तक प्रकाशित।

सैयद इब्राहिम रसखान जिन्हें गुलाम मुहम्मद रसखान के नाम से भी जाना जाता है, उनकी गणना ऐसे भक्त कवियों में की जाती है, जिन्होंने स्वांतःसुखाय काव्य रचा। उनकी रचनाएं सांसारिकता के मोह, माया, यशोलिप्सा से विरक्त विशुद्ध प्रेम से सराबोर है। उनकी प्रेममयी तन्मयता उच्च कोटि की है। श्रीकृष्ण की माधुर्य भक्ति में आकंठ डूबे रसखान ने धर्म-संप्रदाय के बंधनों से मुक्त होकर अपना संपूर्ण जीवन कृष्ण प्रेम पर न्योछावर कर दिया। वे उस 'अनिवार' प्रेम पंथ के यात्री हैं, जो कमलतंतु से भी अधिक कोमल है और तलवार की धार से भी अधिक तेज, जितना सीधा है उतना ही टेढ़ा है।

''कमल तंतु सौ क्षीणतर,
कठिन खडग की धार।
अति सूधो टेढ़ो बहुर
प्रेमपंथ अनिवार।।''
(रसखान रचनावली)

रसखान के लिए अन्य सारे अनुभव व्यर्थ हो चुके हैं। इनके लिए ज्ञान कर्म और उपासना सब 'अहमति को मूल' है। अर्थात् सबमें कहीं न कहीं अहंकार बना रहता है और बस एक प्रेम ही है, जिसमें अहंकार रह ही नहीं सकता। रसखान प्रेम को एक ऐसा दर्पण मानते हैं, जिसमें अहंकार या कोई भी निजता अनमेल हो जाती है। वे उसको प्रेम नहीं मानते जिसमें दो मन एक हो जाते हैं। जब दो शरीर एक हो जाए तो वे उसे सच्चा प्रेम मानते हैं। दो शरीर एक होने से उनका तात्पर्य यह है कि, अपना शरीर अपना न रह जाए, वह श्रीकृष्ण का शरीर हो जाए और श्रीकृष्ण का शरीर श्रीकृष्ण का शरीर न रहकर अपना शरीर हो जाए—

''दो मन इक होत सुन्यौ पै वह प्रेम न आहि।
होइ जबै द्वै तनहु इक सोई प्रेम कहाइ।।''
(रसखान रचनावली)

रसखान ने प्रेम को ही अपने जीवन का सार माना है। इसी कारण उन्होंने किसी भी प्रकार के बंधन को स्वीकार नहीं किया फिर चाहे वह धर्म, जाति, समाज या जन्म-संस्कार से ही जुड़ा क्यों न हो। जिसका प्रमाण है, स्वामी वल्लभाचार्य के सुपुत्र स्वामी विट्ठलनाथ का शिष्यत्व ग्रहण करके भी सांप्रदायिक मत-मतांतरों से आक्रांत न होना। समय के साथ-साथ उनके प्रेम का स्वरूप भी विराट होता चला गया। फिर चाहे वह लौकिक हो या अलौकिक। उन्होंने अपने लौकिक प्रेम को परिष्कृत करते हुए उसे अपने आराध्य राधा-कृष्ण के उदात्त प्रेम में परिवर्तित कर दिया। उनकी भक्ति मूलतः माधुर्य भाव की भक्ति है, जो कि किसी भी प्रबंधत्व से परे काव्य-शास्त्रीय मापदंडों से मुक्त प्रेमासक्ति से आप्लावित हृदय और वाणी से पूर्ण भावोद्गारों से ओत-प्रोत है।

रसखान के कृतित्व से स्पष्ट है कि उनका उद्देश्य ग्रंथ-रचना नहीं रहा होगा। हृदय की गहन भावनाओं के साथ कंठ से जो राग-रागनियां निस्सृत हुई वे कवित्त सवैयों के रूप में अभिव्यक्त हुई। जिन्हें लोकमानस ने न केवल रसमग्न होकर सुना बल्कि मुक्तकंठ से गाया। इन कवित्त सवैयों को अपनी सरसता एवं मिठास के कारण इतनी लोकप्रियता प्राप्त हुई कि वे 'रसखानि' कहलाई। किंतु दुख की बात है कि आज उनकी रचनाओं का बहुत कम अंश उपलब्ध है। उनके काव्य की खोज के लिए भारतेंदु हरिश्चंद्र, पंडित प्रतापनारायण मिश्र, बाबू राधाकृष्ण दास, पंडित राधाचरण गोस्वामी आदि ने बहुत प्रयत्न किया किंतु किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा संग्रहित सामग्री से अधिक उन्हें कुछ प्राप्त न हो सका। लखनऊ से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'सुधा' (वर्ष 1, खंड 2 संख्या 5) में रसखान शतक तथा उनके छंदों को प्राप्त करने के लिए एक विज्ञप्ति भी प्राप्त प्रकाशित हुई थी, परंतु उस समय कुछ नई सामग्री हाथ नहीं लगी (पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ)।

रसखान से संबंधित विभिन्न ग्रंथों और आलोचनात्मक कृतियों के सूक्ष्म अध्ययन से यह सिद्ध होता है कि केवल 'सुजान रसखान' और 'प्रेमवाटिका' ही उनकी प्रमाणिक रचनाएं हैं। इनमें उन्होंने अपने कृष्ण प्रेम को अभिव्यक्त करने के लिए केवल भारतीय प्रेम पद्धति को ही नहीं बल्कि सूफी प्रेम अथवा तसव्वुफ को भी अपनाया।

कृष्ण-लीलाओं का वर्णन करते हुए रसखान ने उन्हें आनंदमयी तथा रसमयी माना है, किंतु उनके द्वारा किया गया कृष्णलीला वर्णन पुष्टिमार्गीय लीला वर्णन से भिन्न है। इनमें श्रीकृष्ण साधारण मानव की सी क्रीडाएं करते हुए प्रतीत होते हैं। बाललीला, गोचरण लीला, कुंजलीला, रासलीला, पनघटलीला, दानलीला, वनलीला, गोरसलीला आदि में इन्होंने अधिक रुचि नहीं दिखाई, प्रत्येक लीला पर कुछ ही पद रचे। उनमें भी कृष्ण के शृंगारी रूप को ही दर्शाया। चीरहरण, कुंज-विलास, पनघट-प्रसंग, राधारूप वर्णन, वयसंधि, सुकुमारता, वंशीवादन, पूर्वराग, अभिलाषा, रूपमाधुरी, सपत्नी भाव, उपालंभ, प्रेमलीला, मिलन, रिझवार, मानवती प्रिया, विदग्धा, वियोग, फागलीला, ब्रज-प्रेम आदि विषयों पर इन्होंने विशेष रुचि का प्रदर्शन किया। इनमें गोपियों के मनोभावों को कृष्ण की अपेक्षा अधिक विस्तृत तथा परिष्कृत

दिखाया है। संभवतः इसका कारण कृष्ण का एक और गोपियों का अनेक होना रहा हैं। जितनी गोपियों उतने ही उनके मनोभाव और उतनी ही अभिलाषाएं। एक गोपी अपने मनोभावों को प्रकट करती हुई कहती है—

''देखन को सखी नैन भयै
सबै तन आवै गाइन पाछै।
कान भए प्रति रोम नहि सुनिबै
को अमानिधि बोलनि आछै।।
ए सजनी न सम्हारि परै वह
बांकि बिलोकनि करि कराछै।
भूमि भयो न हियो मेरी आली
जहां हरि खेलत काछनि कांऊ।।''

भावार्थ यह है कि यदि मेरे सहस्र नेत्र होते तो मैं उनके द्वारा गाय चराते हुए कृष्ण के सौंदर्य को अपने मन में भर लेती, यदि मेरे बहुत से कान होते तो उनसे मैं कृष्ण की अमृत के समान मधुर वाणी को सुनती और यदि मेरा हृदय पृथ्वी का एक खंड होता तो श्रीकृष्ण उस पर कछनी काछै कई प्रकार के खेल खेलते।

रसखान ने संयोग श्रृंगार का जितना मनोमुग्धकारी वर्णन किया है, उतना ही वियोग का मनोदग्धकारी चित्रण भी किया है। यद्यपि उनका विरहवर्णन उतना विस्तृत नहीं है, फिर भी उनके काव्य में विरह की दस दिशाओं में से प्रलाप, जड़ता और मरण के अतिरिक्त अन्य सभी का उल्लेख मिलता है। रसखान का कृष्ण प्रेम इतना उदात्त है कि उन्हें इसकी तुलना में संसार का संपूर्ण सुख वैभव तुच्छ दिखाई पड़ता है। इसी कारण वे कृष्ण की लकुटि और कामरि पर तीनों लोकों का राज्य त्यागने को तैयार है।

''वा लाकुटि अरु कामरिया पर
राज तिहूं पुर को ताजि डारौ।
आठहु सिद्धि नवौ निधि को सुख
नंद की गाय चराय बिसारौं।।
ए रसखानि जबै इन नैनन तै,
ब्रज के बन बाग तडाग निहारौं।
कोटिक ये कलधौत के धाम
करील की कुंजन ऊपर वारौं।।''

नंद बाबा की गायों को चराने के लिए वे आठों सिद्धियों और नौ निधियों के सुख को भुला सकते हैं तथा ब्रज के वनों पर सोने के करोड़ों महल न्योछावर करने को तैयार है। अपनी 'प्रेमवाटिका' में रसखान ने प्रेम की जो विशेषताएं बताई है, वे लौकिक प्रेम और पारलौकिक प्रेम पर समान रूप से लागू होती हैं। जीवन-दर्शन के मर्म को समझने वाले ज्ञानियों का मानना है कि जीव की जीवन साधना का सबसे बड़ा लक्ष्य संसार के बंधन से मोक्ष प्राप्त करना है। कर्म, ज्ञान आदि इसी साध्य के साधन है। भक्ति की विलक्षणता इस बात में है कि वह साधना भी है और साध्य भी। यही बात रसखान ने कही है। उनका कहना है कि प्रेम कारण भी है और कार्य भी। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रेम या भक्ति के लिए किसी दूसरी साधना की आवश्यकता नहीं है। वह स्वतंत्र है अपने आप में पूर्ण है।

''कारज कारण रूप है यह,
प्रेम अहै रसखान।
कर्ता, कर्म, क्रिया, करन,
आपहि प्रेम बखान।।''
(रसखान व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व)

रसखान के प्रेम में सूफी साधना के समस्त आयाम भी दृष्टिगत होते हैं। सूफी साधकों ने ईश्वर को प्रेम स्वरूप देखा और प्रेम के ही द्वारा प्राप्त माना। सूफियों का तसव्वुफ (रहस्यवाद) पूर्णतः इश्क पर आधारित है। सूफी भक्तों को ईश्वर एक परमसौंदर्य से युक्त माशूका (प्रेमिका) के रूप में दिखाई देता है, जो परम गुज संपन्न है और जिसकी एक झलक पाने के लिए साधक अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तत्पर है। प्रेम की अधिकता के कारण उसे सुख-दुख तथा लोक-परलोक में कोई अंतर अनुभूत नहीं होता। वह केवल इस प्रतीक्षा में रहता है कि कब उसकी आत्मा इस संसार से मुक्त होकर परमात्मा में लीन हो जाए। सूफी इश्के मजाजी (लौकिक) के माध्यम से इश्के हकीकी (अलौकिक) को प्राप्त करते हैं। रसखान के काव्य में इस इश्क का पूर्ण निरूपण मिलता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने सूफी साधना के अन्य गुणों जैसे तवक्कुल (स्वयं तथा स्वयं से जुड़े समस्त संबंधों को अटूट विश्वास के साथ केवल अल्लाह को सौंपकर पूर्ण रूप से समर्पित हो जाना) को अपनाते हुए अपने काव्य में उसकी सफल अभिव्यंजना की है। वे कहते हैं कि लोग विभिन्न देवी-देवताओं को पूजकर अपनी मनोकामनाएं पूरी करते हैं, परंतु मेरा एक मात्र सहारा वही एक (परमसत्ता) है, जो तीनों लोकों का स्वामी है। मैं तो केवल उसी पर तवक्कुल करता हूं।

''सेष सुरेस, दिनेस, गनेस,
प्रजेस, धनेस, महेस मनावौ।
कोऊ भवानी भजौ, मन की
सब आस सभी विधि पुटावौ।।''
(आइत ए मारफत पृ. 89)

सूफी साधना में 'जिक्रोफिक्र' अर्थात ईश्वर का नाम स्मरण का भी अत्यंत महत्त्व है। इस विषय में रसखान कहते हैं—

''जो रसना, रसना बिलसै तेहि
देहु सदा निज नाम उच्चारण''
(प्रेमवाटिका, पृ. 40)

इसी प्रकार तर्क (त्याग) तथा फना (सूफी साधना का अंतिम सोपान है। जिसमें अहम का पूर्ण त्याग कर, आत्मविस्मृत हो आत्मा परमात्मा में लीन हो जाए) इस अवस्था को रसखान निम्न शब्दों में अभिव्यक्ति करते हैं—

''पै मिठास वा मार के, रोम रोम भरपूर।
भरत जियै झुकतो थिरै बनै सु चकनाचूर।।''
(प्रेमवाटिका, पृ. 30)

निष्कर्षतः रसखान ने अपनी प्रेम अभिव्यक्ति में सूफियों की प्रेमाभिव्यंजना को भी आत्मसात किया है। उनका जीवन आद्योपांत कृष्ण प्रेम में सराबोर रहा। उन्होंने इहलीला का स्वरज मथुरा वृंदावन में किया। उनकी समाधि महावन में आज भी विद्यमान है। अपने निवास और शरणागत प्रभु की भक्ति के संबंध में उन्होंने लिखा है—

''प्रेम निकेतन श्रीवनहिं
आइ गोवर्धन धाम।
लत्धौ सरन चित्त चाहि के
जुगल सरूप ललाम।।''

सेंट्रल कश्मीर विश्वविद्यालय,
ट्रांजिट कैंपस, सोनवार, जी.वी. पंत अस्पताल
के नजदीक, श्रीनगर–190004

मानवीय मूल्य और प्रेम के अनन्य कवि—रसखान

डॉ. दीपक नरेश

डॉ. दीपक नरेश तुर्कमेनिस्तान के अशगाबाद में द आजादी इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ वर्ल्ड लैंग्वेज में प्राध्यापक हैं। मीडिया में कई वर्षों से सक्रिय और यूजीसी के दो रिसर्च प्रोजेक्ट से जुड़े रहे। दो पुस्तकें प्रकाशित। फिलहाल हिंदी-तुर्कमेन शब्दकोश पर काम जारी।

रसखान का नाम हिंदी साहित्य के उन कवियों में शुमार है, जो मानवता और मानवीय मूल्यों को धर्म का मूल मानते थे। वैसे तो भक्तिकालीन हिंदी साहित्य में कबीर को सबसे उदार और समाजप्रेरक कवि का दर्जा हासिल है लेकिन रसखान ने लीक से हटकर कई ऐसी रचनाएं की हैं, जिनमें सामाजिक मूल्य, उच्च नैतिक आचरण और सद्भाव के सूत्र मिलते हैं। भगवान की भक्ति के लिए उन्होंने भक्त के लिए मन और वाणी के संयम के साथ कुछ अन्य गुणों का समावेश भी जरूरी माना है—

''सुनियै सबकी कहियै न कछु
        रहियै इमि या मन-बागर मैं।
करियै ब्रत-नेम सचाई लियें,
        जिन तें तरियै मन-सागर मैं।
मिलियै सब सौं दुरभाव बिना,
        रहियै सतसंग उजागर मैं।
रसखानि गुबिंदहिं यौं भजियै
        जिमि नागरि को चित गागर मैं।।''

भक्तिकाल की अधिकांश रचनाओं में भगवत प्रेम को मुक्ति का मार्ग बताया गया है और इसके लिए नाना प्रकार के माध्यमों की चर्चा भी मिलती है। लेकिन रसखान की रचनाओं की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि कृष्ण भक्ति के अलावा किसी अन्य साधन को ऐसा नहीं मानते जिससे भवसागर को पार किया जा सके। यानि सांसारिक माया-मोह का त्याग किया जा सके। और ये भक्ति भगवान श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम से ही उपज सकती है। ऐसी उनकी निश्चित धारणा थी—

''कहा रसखानि सुखसंपति सुमार कहा,
कहा तन जोगी ह्वै लगाए अंग छार को।
कहा साधे पंचानल, कहा सोए बीच नल,
कहा जाति लाए राज सिंधु-आरपार को।
जप बार-बार तप संजम बयार-ब्रत,
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को।
कीन्हौं नहीं प्यार, नहीं सेयौ दरबार चित
चाह्यौ न निहारयौ जो पै नंद के कुमार को।।''

हालांकि कतिपय विद्वानों ने रसखान के एक दोहे से ये भी निष्कर्ष निकाला कि रसखान भगवत-भक्ति में कर्म, ज्ञान, उपासना को भी बराबर का महत्त्व देते थे। लेकिन भवसागर पार करने के लिए अंततः वो निर्विकार भक्ति को ही सर्वोपरि रखते थे—

''ज्ञान कर्म रु उपासना,
        सब अहमिति को मूल।
दृढ़ निस्चय नहिं होत बिन
        किए प्रेम अनुकूल।।''

रसखान का यही अनन्य प्रेम उन्हें मथुरा ले गया और वो वहां रहने लगे। अपने आप को भूल कर पूरी तरह वल्लभ प्रेम में लीन हो गए। धार्मिक मान्यताओं और बाह्य आडंबरों से भी उन्होंने खुद को विरक्त कर लिया। कुंज बिहारी के इसी प्रेम और अनन्य आस्था के चलते उनके मन में ये दृढ़ विश्वास उपजा कि जब तक कृष्ण मुरारी उनके संरक्षक हैं, उनका कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता—

''देस विदेस के देखे नरेसन
        रीझ की कोऊ न बूझ करैगो।
तातें तिन्हैं तजि जानि गिरयौं गुन,
        सौगुन औगुन गांठि परैगो।
बांसुरीवारो बड़ो रिझवार है
        श्याम जु नैसुक ढार ढरैगो।
लाड़लो छैल वही तौ अहीर को
        पीर हमारे हिये की हरैगो।।''

×××

कहा करै रसखानि को कोऊ चुगुल लबार।
जो पै राखनहार है माखन चाखन हार।।''

रसखान के पदों की सबसे प्रमुख विशेषता है—तन्मयता की पराकाष्ठा। भगवान कृष्ण के प्रेम में जिस प्रकार ब्रज की गोपियां खुद को तिरोहित कर देती हैं। उसी प्रकार का माधुर्य-भाव रसखान के पदों में भी देखने को मिलता है। इसी रतिभाव का आलंबन लेकर कृष्ण के साथ एकाकार होने में ही रसखान ने मुक्ति का मार्ग देखा और जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति को भी इसी माध्यम से प्राप्त करने की चेष्टा की—

''मोर के चंदन मौर बन्यौ दिन
        दूलह है अली नंद को नंदन।
श्री बृषभानुसुता दुलही दिन
        जोरी बनी बिधना सुखकंदन।
आवै कह्यौ न कछू रसखानि री
        दोऊ फंदे छबि प्रेम के फंदन।

जाहि बिलोकें सबै सुख पावत वे
ब्रज जीवन हैं दुख दंदन।।

×××

मोहनी मोहन सों रसखानि
अचानक भेंट भई बन माहीं।
जेठ की घाम भई सुखधाम
अनंद ही अंग ही अंग समाहीं।
जीवन को फल पायौ भटू
रसबातन केलि सों तोरत नाहीं।
कान्ह को हाथ कंधा पर है
मुख ऊपर मोर किरीट की छाहीं।।''

रसखान की रचनाओं का अनुशीलन करने पर ये ज्ञात होता है, कि उन्होंने कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम में अधिकांश रचनाएं की। ऐसे में साहित्य के विद्वानों को उनकी रचनाओं में विशेषकर जहां उन्होंने श्रृंगार विषयक पद रचे हैं, भक्ति भाव के दर्शन ना होना लाजिमी है। लेकिन हमें ये नहीं भूलना चाहिए कि ऐसे पद भी उन्होंने कुंज बिहारी के प्रति अतिशय आसक्ति के चलते रचे। भले ही यहां गोपियों की कृष्ण के प्रति विरहाशक्ति की व्यंजना होती जान पड़ती है।

''जोग सिखावत आवत है वह,
कौन कहावत को है, कहां को।
जानति हैं बर नागर है पर
नेकहु भेद लस्यो नहीं ह्यां को।
जानति ना हम और कछू मुख
देखि जियैं नित नंद लला को।
जात नहीं रसखानि हमें तजि,
राखनहारो है मोरपखा को।।''

रसखान को भक्तकवि-परंपरा में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है लेकिन वो लोकमंगल कवि तुलसीदास की भांति भक्ति भावना रखने वाले कवि नहीं थे। उनका कहना था कि प्रेम ही जीवन का साध्य है। प्रेम के माध्यम से ही मुक्ति का मार्ग प्राप्त किया जा सकता है। सभी ग्रंथों का अंतिम लक्ष्य प्रेम की प्राप्ति के मार्ग का निर्देशन करना ही है।

''स्त्रुति पुरान आगम स्मृतिहि,
प्रेम सबहि को सार।
प्रेम बिना नहि उपज हिय,
प्रेम-बीज-अंकुवार।।''

हालांकि रसखान ने भगवत प्रेम को सर्वोपरि माना है। इस प्रेम को सर्वोच्च बताने हेतु उन्होंने जिन आदर्शों का उल्लेख किया है उनसे प्रेम की अतिशयता और भी महिमामंडित होती है—

''बिमल सरल रसखानि
मिलि भई सकल रसखानि।
सोई नव रसखानि कौं,
चित चातक रसखानि।''

उनका भगवत-प्रेम वस्तुतः कृष्ण-प्रेम ही है। जिसको लेकर उनका मत अत्यंत दृढ़ है। अपने प्रेम भाव की दृढ़ता और अविच्छिन्नता को प्रकट करने हेतु रसखान ने बेहद सुंदर पंक्तियां रची हैं—

''बैन वही उनको गुन गाइ
औ कान वही उन बैन सों सानी।
हाथ वही उन गात सरै अरु
पाइ वही जु वही अनुजानी।
जान वही उन आन के संग
औ मान वही जु करै मनमानी।
त्यौं रसखानि वही रसखानि
जु है रसखानि सों है रसखानि।।''

देखा जाए तो रसखान मूलतः माधुर्य के कवि हैं और उनकी मान्यता का आलंबन भी यही है, कि माधर्यु रस की प्राप्ति के लिए तन्मयता अपरिहार्य है। हालांकि कुछ विद्वानों ने उनकी रचनाओं के अनुशीलन के उपरांत ये संदेह भी प्रकट किया है, कि रसखान की रचनाओं में माधुर्य रस और तन्मयता का उचित समानुपात फलीभूत नहीं हुआ है। इसके पीछे एक दलील ये दी जा सकती है, कि रसखान स्वयं कोई शास्त्रज्ञाता या प्रकांड विद्वान नहीं थे। उन्होंने अपने को सांसारिक विषय से दूर करने हेतु भी भगवत-भक्ति का रास्ता नहीं चुना था। उनकी जीवनी के विषय में जो तथ्य ज्ञात हैं अगर उसको सही माने तो कृष्ण भक्ति की ओर उन्मुख होने का एक कारण ये भी बताया जाता है कि ये एक सामाजिक उलाहना की प्रतिक्रिया का परिणाम था। हालांकि ये भी कहा जाता है, कि दिल्ली का मसान रूप देखकर इन्हें सांसारिक जीवन से विरक्ति हुई और ये मथुरा चले गए।

वजह चाहे जो रही हो लेकिन रसखान की रचनाएं हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। ''मानुस हों तो वहीं रसखान, बसौं ब्रज गोकुल गांव की ग्वालन'' से खुद का परिचय करवाने वाले रसखान, सूरदास और मीराबाई की तरह जीवनपर्यंत सिर्फ कृष्ण प्रेम में लीन रहे। उनकी रचनाएं इसका अकाट्य प्रमाण हैं।

एस.आर.ए.-25-ए, शिप्रा रिवेरा, इंदिरापुरम,
गाजियाबाद-201010 (उत्तर प्रदेश)

साझी विरासत के वाहक : रसखान

संजीव श्रीवास्तव

पत्रकारिता के अलावा कविताएं, कहानियां, उपन्यास, निबंध, समीक्षा के क्षेत्र में सक्रिय संजीव श्रीवास्तव का एक उपन्यास 'गीत-गोदावरी' के अलावा 'समय, सिनेमा और इतिहास' पुस्तक प्रकाशित।

महाकवि रसखान उस परंपरा और विरासत के कवि थे, जहां सौहार्द्र की सीमा और रेखा नहीं होती। उनके काव्य में सांस्कृतिक ताना-बाना अपनी मौलिकता में संपूर्णता से नजर आता है। रसखान के प्रेम की उपासना का यही सामाजिक निहितार्थ है। बिना किसी पूर्वाग्रह या अतिरिक्त प्रभाव के रसखान जब कृष्ण के श्रृंगार का वर्णन करने लगते हैं, तो नयनाभिराम नजारे का अनोखा अहसास होने लग जाता है—

''धूरि भरै अति सोमित स्यामजू
तैसी बनी सिर सुंदर चोटी।
खेलत खास फिरै अंगना पग
पैंजनी बाजती पीरी कछोटी।
वा छवि को रसखान विलोकत
वारत काम कला नज कोटि।
काग के भाग बड़े सजनी
हरि हाथ सौ ले गयो माखन रोटी।''

भक्ति और सौंदर्य का यह मिश्रण अनोखा है। रसखान यहां बाल्यकाल के श्यामजू अर्थात् श्रीकृष्ण का धूल से सना तन-बदन देखने के लिए आतुर हैं साथ ही उनकी इच्छा है, कि वह उनके सिर पर बनी सुंदर चोटी की शोभा भी देख सकें। कवि चाहते हैं कि पीले वस्त्र धारण कर पैरों में पायल बांधे माखन रोटी खाते-खेलते हुए श्यामजी दिखाई दें। भक्ति के इस प्रेम में अतीव आकर्षण है। निस्पृह आस्था है तो मनोरंजक श्रृंगार भी।

यही रसखान होने का अपना अलग आशय और स्थान है। भक्तिकाव्य में तो वे सूरदास से अलग स्थान बनाते हैं। मध्ययुगीन साहित्य में सूरदास के गीति-तत्त्व की सुबोधता सर्वोपरि है, जायसी का सौंदर्यबोध अपनी अलग ऊंचाई पर स्थित है लेकिन रसखान के काव्य में विभिन्न तत्त्वों का सम्मिश्रण अपने अनोखेपन के लिए विख्यात है। कृष्ण भक्ति में गोपी के प्रेम, रस और समर्पण की यही अनोखी छटा देखी जा सकती है—

''रंग भरयो मुस्कात लला
निकस्यो कल कुंज ते सुखदाई।
मैं तबही निकसी पर ते तनि
नैन विसाल की चोट चलाई।
घूमि गिरी रसखानि तब हरिनी
जिमी बान लगै सिर जाई।
टूट गयो घर को सब बंधन
छुटियो आरज लाज बड़ाई।''

अर्थात् मुस्कुराता हुआ कन्हैया जब कुंज से बाहर निकला तभी संयोगवश मैं भी अपने घर से निकली। मुझे देखते ही उन्होंने मुझ पर अपनी बड़ी आंखों के प्रेम रस से भीगे बाण चला दिए, जिसको मैं सहन न कर सकी। जिस प्रकार बाण लगने पर हिरणी चक्कर खा कर गिर जाती है, उसी प्रकार मैं भी अपनी सुध-बुध खो बैठी।

कृष्ण भक्ति में लीन रसखान का प्रेम हिंदू संस्कृति के रंग में रंगा हुआ है। रसखान हर सूरत में रसवर्षा करते ही जाते हैं, और उस सुंदर काव्य की संरचना करते रहते हैं, जहां शिव अर्थात् समस्त जगत के कल्याण निहितार्थ हैं। यही आकर रसखान हमारी साझी विरासत के वाहक बन जाते हैं और वर्तमान समाज की समस्त संवेदनाओं को अनुप्रेरित करते हैं। कृष्ण प्रेम उनकी सृजनशीलता का आराध्य होता है, सौंदर्य चित्रण उपालंभन और परंपरा-त्योहार का जिक्र उनकी संवेदना की सचित्र व्याख्या। होली के चित्रण का उनका एक अनोखा रंग हिंदी कविता की भक्ति धारा में अत्यंत दुर्लभ है—

''खेलत फाग लख्यो पिय प्यारी को
ता मुख की उपमा किहिं दीजै।
×××
त्यौं त्यौं छबीलो छकै छवि छाक
सौ हेरे हंसे न टरै खरौ भीजै।।''

अर्थात् एक गोपी सखी से कहती है—हे सखी मैंने कृष्ण और उनकी प्यारी राधा को होली खेलते हुए देखा है, उस शोभा की कोई उपमा नहीं दी जा सकती। जैसे-जैसे राधा एक के बाद दूसरी पिचकारी चलाती हैं—वैसे वैसे छबीले कृष्ण उनके उस रंग भरे रूप को छक कर पीते हुए वहीं खड़े मुस्कुरा कर भीगते रहते हैं।

लेकिन रसखान के भक्ति काव्य की विशेषता केवल सगुण नहीं है। उसमें निर्गुण भी है और यही निर्गुण उन्हें एक बार फिर भक्ति काव्य के रचनाकारों से पृथक कर देता है और संत काव्य की परंपरा में भी समाहित कर देता है। रसखान कृष्ण के साथ-साथ शिव की भक्ति में भी उसी संवेदना के साथ काव्य रचना करते हैं। रसखान कृष्ण को अगर साकार मानते हैं तो शिव को विराट और सबसे महान

देवों के देव—

''वेही बड़ा ब्रह्मा जाहि सेकत हैं रैन दिन,
सदासिव सदा ही धरत ध्यान गाढ़े हैं।
वेई विष्णु जाके काज मानि मूढ़ राजा रंक,
जोगी जती व्हैके सीत सझौ अंग डाढ़े हैं।
वेई ब्रजचंद रसखानि प्रान प्रानन के,
जाके अभिलाष लाख लाख भांति बाढ़े हैं।
जसुदा के आगे बसुधा के मान मोचन ये,
तामरस लोचन खरोचन को ठाढ़े हैं।''

रसखान का पूरा नाम सैयद इब्राहिम रसखान था। रसखान उपनाम लगाने के पीछे उनका मकसद साहित्यिक था। आशय उनके काव्य में रस की उपादेयता से था। रसखान ने कृष्ण हों या शिव उनकी लीलाओं और सौंदर्य का जो वर्णन किया है, उसमें रसविभोर भक्ति उनके काव्य की पहचान है। खास बात यह है कि रसखान ने सूफीज्म (तसव्वुफ) को भी कृष्ण के माध्यम से प्रकट किया है। जाहिर होता है वे सामाजिक समरसता एवं आपसी सौहार्द्र के कितने बड़े पैरोकार थे। हालांकि यह भी सच है, कि रसखान तुलसीदास या सूरदास की तरह भक्तकवि नहीं थे। उन्होंने खुद भी लिखा है, सभी वेदों, पुराणों, आगमों और स्मृतियों का निचोड़ प्रेम (अर्थात ईश्वर-विषयक प्रेम) है—

''स्त्रुति पुरान आगम स्मृतिहि,
प्रेम सबहि को सार।
प्रेम बिना नहिं उपज हिय,
प्रेम-बीज-अंकुवार।।''

रसखान के अनुसार भक्ति या प्रेम सबमें श्रेष्ठ है। कर्म में अहंकार आ सकता है जबकि भक्ति रागात्मक और रसाधारित होती है—

''काम क्रोध मद मोह भय लोभ द्रोह मात्सर्य
इन सब ही तें प्रेम है परे, कहत मुनिवर्य।।''

हिंदी साहित्य में कृष्ण भक्त तथा रीतिकालीन कवियों में रसखान के काव्य में भक्ति, शृंगार रस दोनों प्रधानता से मिलते हैं। रसखान कृष्ण भक्त हैं और प्रभु के सगुण और निर्गुण निराकार रूप के प्रति श्रद्धालु हैं। रसखान के सगुण कृष्ण लीलाएं करते हैं बाललीला, रासलीला, फागलीला, कुंजलीला आदि। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने जिन मुस्लिम भक्त कवियों के लिए कहा था—''इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिन हिंदू वारिए'' उनमें 'रसखान का नाम सर्वोपरि है।

हिंदी साहित्य के भक्तियुग (संवत् 1375 से 1700 वि. तक) का स्थान भक्ति काव्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। सूरदास, मीराबाई, तुलसीदास, रसखान आदि की रचनाओं ने इस शताब्दी के गौरव को बढ़ा दिया है। भक्ति का जो आंदोलन दक्षिण से चला वह हिंदी साहित्य के भक्तिकाल तक सारे भारत में व्याप्त हो चुका था। उसकी विभिन्न धाराएं उत्तर भारत में फैल चुकी थीं। दर्शन, धर्म तथा साहित्य के सभी क्षेत्रों में उसका गहरा प्रभाव था। एक ओर सांप्रदायिक भक्ति का जोर था, दूसरी ओर ऐसे भी भक्त थे, जो किसी भी तरह की सांप्रदायिक हलचल से दूर रह कर भक्ति में लीन रहना पसंद करते थे। रसखान इसी प्रकार के भक्त थे। वे स्वच्छंद भक्ति के प्रेमी थे।

''मानुष हों तो वही रसखानि
बसो गोकुल गांव के ग्वालन
जो पशु हौं तो कहा बसु मेरो
चरौ नित नंद की धेनु मंझारन
पाहन हो तो वही गिरि को
जो धरयौ कर छत्र पुरंदर धारन
जो खग हौं तो बसेरो करौ मिल
कालिंदी-कूल-कदंब की डारन।''

दरअसल रसखान का अपने आराध्य के प्रति बेहद गंभीर लगाव था। रसखान हर परिस्थिति में अपने आराध्य के सान्निध्य की इच्छा रखते हैं। इसीलिए रसखान अपने काव्य में यहां तक कहते हैं कि आगामी जन्म में उन्हें फिर से मनुष्य की योनि मिले और उसमें भी गोकुल गांव के ग्वालों के बीच रहने का सुयोग भी हासिल हो, ताकि कृष्ण की भक्ति में उनका मन रमता रहे। रसखान यहां तक कहते हैं कि अगर उन्हें पशु योनि मिले, तो हे प्रभु उन्हें ब्रज में ही रखना, ताकि नंद की गायों के साथ विचरण करने का नसीब हासिल हो सके। अगर पत्थर भी बन जाएं तो भी उस पर्वत के बनें, जिसे श्रीकृष्ण ने अपनी तर्जनी पर उठा ब्रज को इंद्र के प्रकोप से बचाव किया था। पक्षी बना तो बसेरा करने के लिए यमुना किनारे कदंब की डालों से अच्छी जगह तो कोई और हो ही नहीं सकती।

प्रेम की पीड़ा और प्रेम के शृंगार में रसखान इतना रस लेते प्रतीत होते हैं कि पत्थर दिल के मुख पर भी मुस्कान की रेखा खिल जाए—

''प्रेम प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोइ
जो जन जानै प्रेम तो, मरै जगत क्यों रोइ
कमल तंतु सो छीन अरु, कठिन खड़ग की धार
अति सूधो टढ़ौ बहुरि, प्रेमपंथ अनिवार
प्रेम अगम अनुपम अमित, सागर सरिस बखान
जो आवत एहि ढिग बहुरि, जात नाहिं रसखान
भले वृथा करि पचि मरौ, ज्ञान गरूर बढ़ाय
बिना प्रेम फीको सबै, कोटिन किया उपाय
प्रेम रूप दर्पण अहे, रचै अजूबो खेल
या में अपनो रूप कछु, लखि परिहै अनमेल
हरि के सब आधीन पै, हरी प्रेम आधीन
याही ते हरि आपु ही, याहि बड़प्पन दीन।।''

रसखान के प्रेम की यही विशेषता है कि वह सांसारिक होकर भी अंततः अध्यात्म की ओर आहिस्ते से गमन कर जाता है। ऐसे में रसखान प्रेम और सौंदर्य बोध की वर्षा करके भी आखिरकार सामाजिक समरसता के धार्मिक कवि कहलाते हैं।

37-ए, तीसरी मंजिल, गली नं.-2, प्रताप नगर,
मयूर विहार-1, दिल्ली-110091

फाग के रंग : रसखान के संग

मीरा अवस्थी

कवयित्री मीरा अवस्थी हिंदी एवं अंग्रेजी में लेखन करती हैं। कविता के अलावा इनके लेखन का विषय विज्ञान एवं पर्यावरण है। इन्होंने पर्यावरण संबंधी पुस्तकों के अनुवाद का कार्य भी किया है। आजकल स्वतंत्र लेखन कर रही हैं।

जब बसंत ऋतु की मादकता वातावरण में चहुं ओर व्याप्त हो रही हो, तो प्रकृति बलात अपने सारे रंगों में निखर कर एक अति लुभावनी छवि लिए प्रेम, लालित्य एवं उल्लास के रंगों में आलिप्त हो उठती हैं। इन छटाओं में सर्वाधिक लालित्य-धारा का पक्ष है—फाग का। कवि हृदय तो सदैव ही सुकोमलता एवं सौंदर्य के अन्वेषण में लगा होता है। अतः कई कवियों एवं लेखकों की दृष्टि 'फाग' जैसे रंग बिरंगे शृंगारिक पर्व पर पड़ कर इस विषय का आख्यान कर चुकी है, परंतु जब इन कवियों की कतार में 'रसखान' का भी स्थान हो तो वह बखान समस्त कमनीयता लिए हमारे मानस में उतर कर गहरी छाप छोड़ जाता है। कारण है रसखान के बखान में फाग का आकर्षण का अकेला नहीं वरन् मनमोहन के मनमोहक मुद्रा एवं लीला का मनमुग्धकारी पुट का होना है।

रसखान यों तो परमभक्त हैं, परंतु कृष्ण जैसे मनोहारी की भक्ति में भी मुख्य तत्त्व रस का, शृंगार का ही विद्यमान है। रसखान उस भारतवर्ष की असल पहचान है, जहां हिंदू-मुसलमान संस्कृति की गंगा-यमुना के संयुक्त प्रवाह को इसके रचनाकार एक अबाध गति देते हैं। यह मात्र इस देवभूमि का वैशिष्ट्य है जो जन्म से मुसलमान, एक अति संवेदनशील हृदय को कृष्ण रंग में डुबो भी सकती है और इस माध्यम से दोनों जातियों, धर्मों एवं आचरण को मूलतः मानवीय भी सिद्ध कर सकती है। इसी भूमि पर जन्म से हिंदू रघुपति सहाय—फिराक गोरखपुरी बन जाते हैं एवं सैयद इब्राहिम बन जाते हैं—रसखान।

रसखान एक अत्यंत शिक्षित भाषाविज्ञानी थे। हिंदी, संस्कृत एवं फारसी के इस ज्ञाता का बौद्धिक स्तर उनकी कृतियों से अवश्य झलकता है, परंतु उनका भाव-पक्ष उससे भी मुखर रूप में सामने आता है। कृष्ण रंग में नख-शिख आप्लावित इस कवि को नटखट श्याम की बाल, रास एवं गोपी-लीलाओं ने तो मोहपाश में जकड़ ही रखा है, उस पर होली व फाग की अलमस्ती इस पर एक नया कलेवर चढ़ा बैठी है अर्थात् सोने पर सुहागा।

मानव-हृदय की मार्मिकता का बड़ा सुंदर चित्रण उनके काव्य में हुआ है, कि एक वस्तु या भावना (कोयल की कूक, कूल) दो विभिन्न परिस्थितियों में पड़े व्यक्ति के लिए कैसे दो विपरीत अर्थ या भाव-संचार लेकर आ रही है। संयोग प्राप्त नायिका के कानों में अमृत और वियोगी नायिका के लिए हृदय में टीस उठने वाली मूल क्रिया एक ही है। रसखान जैसा भावुक कवि ही कोयल की मीठी कूक में चुभन और खिलते फूलों के रंग से उपजी रंगहीनता को अभिव्यक्त कर सकता है।

फाग आ पहुंचा है। फाल्गुन लगे ब्रज की धूमधाम रसखान की लेखनी की मधुरिमा है। इशारे-इशारे में ही रसखान बता जाते हैं कि ब्रज में होली सिर्फ दिन में दो प्रहर तक नहीं मनाई जा रही, श्री युगलकिशोर, नटवर नागर जहां हो वहीं गुलाल उड़ता है, सांझ तक और कोई भी बाला रंग से अछूती नहीं रह गई हैं—

''फागुन लाग्यो सखी जब तें,
तब तें ब्रजमंडल धूम मच्यो है।
नारि नवेली बचै नहिं एक बिसेख
यहैं सबै प्रेम अच्यो है।।
सांझ सकारे वही रसखानि
सुरंग गुलाल लै खेल रच्यो है।
को सजनी निलजी न भई अरु
कौन भटू जिहि मान बच्यो है।।''

यहां यह परिलक्षित होता है कि रसखान के लिए सारा ब्रह्मांड ब्रजमंडल तक ही सिमट गया है। फाग हिंदुस्तान में बहुत स्थानों में भरपूर मनाया जाता है, पर श्याम रंग में डूबे रसखान के नेत्र ब्रजमंडल को ही फाग-प्रांगण की परिधि मानते हैं। सरल ब्रजभाषा और सरल शैली के सहज प्रवाह से रसिक जन को अभिभूत कर देने की शक्ति है—रसखान के बखान में।

जब कोई भी गोपी या राधा रंगों से बच कर अपना मान नहीं बचा पाती, तो ब्रज मे एक अनंत दिव्यलीला, रंग वर्षा पर्व प्रारंभ हो जाता है। किस पर कौन सा रंग भरा बादल बरस कर उसे किस रंग का कर गया, ये सारी रंग-अभिव्यंजना रसखान बताते हुए कहते हैं, कि श्याम सांवले (काले) से लाल हो गए और गोपियां उसके और गुलाल के रंग में (लाल) पड़ गई हैं, रच-बस गई हैं। एक सवैये में होली के समय बाहर न निकलने का निर्देश देती एक सखी, नटवर की मनमानी का बखान वर्जना एवं निषेध का विरोधाभास बड़ी सुंदर समन्वय शैली में रचा है। साथ ही कृष्ण-बलराम के स्नेह के मापदंड प्रस्तुत किए हैं—अप्रत्यक्ष रूप में जहां गोपियां श्याम के फाग खेलने की उदंडता को सीमा में रखने के लिए उन्हें भाई (वीर) की शपथ देती हैं। यहीं रसखान के पारिवारिक मूल्य और प्रेम

के सभी रूपों का सम्मान झलकता है। पूर्णतः हास्य-क्रीड़ा में भी गोपियां कृष्ण पर अपने भाई के प्रति हित एवं स्नेह का विश्वास रखती हैं।

रसखान की रचनावली 'सुजान रसखान' से उभरे उनके सवैये न सिर्फ गोपियों के उस आनंद की अभिव्यक्ति करते हैं, जो उन्हें श्रीकृष्ण के साथ खेले फाग से मिलता है वरन् श्रीकृष्ण को भी इस फाग-रंग से मिले आनंद का भी बखान हुआ है। इस सवैये में श्रीकृष्ण का फाग बखान कुछ यों बन पड़ा है—

''खेलत फाग सुहाग भरी
अनुरागहिं लालन को धरि के।
मारत कुंकुम केसरि के
पिचकारिन से रंग को भरि के।।
गेरत लाल गुलाल लली,
मनमोहिनी मौज मिटा करि के।
जात चली रसखानि अली
मदमस्त मनों मन कों हरि के।।''

अंतिम पंक्ति में रसखान कहते हैं, कि यह होली मदमस्त-सी हरि (कृष्ण-विष्णुरूपी) के मन को चुराकर चली जाती है। ब्रज की ललनाओं पर प्रेम भरी पिचकारी पड़ती है, पर ये तो पहले से ही प्रेमरंग में डूबी हैं, अब कुंकुम और केसर के रंग ऊपर से पड़ रहे हैं अर्थात् तन-मन दोनों कृष्ण रंग से संतृप्त हैं। रंग इतना प्रभावी है, कि मनमोहिनी राधा को लाल गुलाल लगा कर लालिमामय करते-करते नंदलाल स्वयं लाल हो जाते हैं। रसखान ने सब जगह अबीर, गुलाल, टेसू, कुंकुम केसर जैसे स्तरीय प्राकृतिक रंगों की बात की है, उस समय भी निम्न स्तरीय साधन उपलब्ध रहे होंगे जिनका रसखान ने कोई उल्लेख उचित नहीं समझा। साथ ही सदा इन रंगों के उपयोग से नायक, नायिका, गोप-गोपी, स्वयं श्रीकृष्ण के तनमन सौंदर्य-वृद्धि का वर्णन किया है, वीभत्सता का नहीं, यह तथ्य रसखान के सौंदर्य-बोध एवं पर्व-उत्सव के मान को बढ़ा गया है। शायद भक्ति प्रेम का माधुर्य रसखान के शब्दों में स्वतः राग-लय की तरह स्त्रवित होने लगा और शब्दों के यह समूह कभी कवित्त, कभी सवैये तो कभी दोहों का नाम लेने लगे। रसखान के यह फाग भी इतने सुरीले थे, संगीतमय थे कि लोग इन्हें प्रायः गुनगुनाने लगे थे। उस समय जनसाधारण लिखित शब्दों से इतना परिचित नहीं रहा होगा जितना कि स्वर, रागिनी और मौखिक विधाओं से। अतः रसखान के फाग भी रंग-बिरंगे बादलों से जनमानस पर बरस पड़े।

रसखान का फाग-वर्णन कला-पक्ष में भी सशक्त है। किसी रचना की परख के लिए स्थापित मानदंडों पर रसखान रचित सवैये व मुक्तक खरे सोने-सा पूरे उतरते हैं। जैसा कि भक्त कवियों की परंपरा रही है—रसखान भी किसी बद्ध शैली व नियमों पर जोर न देकर मुक्त रचना में विश्वास रखते हैं। वे प्रबंध काव्य रचना अथवा किसी अन्य योजना की तरह स्वतंत्र प्रवाह में बहे हैं।

रसखान के माध्यम से कभी फाग दर्शन-सुख में नायक-नायिका को बांधा गया है तो कभी कृष्ण केलि में—

''खेलत फाग लख्यौ पिय प्यारी को
ता सुख की उपमा किहिं दीजै।
देखत ही बनि आवैं भलै रसखान
कहा है जो वारि न कीजै।।
ज्यों-ज्यों छबीली कहै पिचकारी
लै एक लई यह दूसरी लीजै।
त्यों-त्यों छबीली छके छबि छाक
सो हेरै, हंसे न टरै खरौ भीजै।।''

अर्थात् होली खेलना रसखान ने पिय-मुख दर्शन का एक अभीष्ट बना दिया है। क्यों न हो, होली खेलने से अनुराग जो बढ़ता है, ऐसा तो हम आज के आधुनिक, व्यस्त एवं भौतिकतावादी युग में भी मानते हैं रसखान का निम्न सवैया भी इस तथ्य को दुहराता है—

''मिलि खेलत फाग बढ़्यो अनुराग
सुराग सनी सुख की रमके।
कर कुंकुम लै करि कंजमुखी
प्रिय के दृग लावन कौं धमके।।
रसखानि गुलाल की धूंधर में
ब्रजवालन की दुति यौं दमके।
मनौ सावन मांझ लालई के मांझ
चहूं दिसि ते चपला चमके।।''

यहां प्रेम और सौंदर्य फाग-क्रीड़ा को और मनभावना बना रहे हैं। फाग एक ऐसा दिव्य पर्व बन गया है, जहां अनुराग का संसार बन रहा है। रसखान के नेत्रों से देखें तो यह संसार भावनाओं का ही है—प्रेम का, सौंदर्य का, शृंगार का, प्रकृति की उपमाओं का।

रसखान की लेखनी शृंगार का ही वर्णन कर रही है, कान्हा की भक्ति में ही डूबी है पर शब्द रचती है—फाग की अबाध आनंद-धारा का, कान्हा के संपर्क को ही बालाएं पुण्य मानती हैं—

''लीने अबीर भरे पिचकारी रसखानि
खरो बहु भाय भरो जू।
मार से गोप कुमार, कुमार से
देखत ध्यान टरो न टरो जूं।।
पूरन पुंयनि हाथ पर्यौ तुम
राज करौ उठि काज करो जू।
ताहि सरो लखि लाख जरौ
दूहि पाख पतिव्रत ताख धरो जू।।''

रसखान यहां परोक्ष रूप से कृष्ण के ईश्वरीय रूप को प्रतिपादित करते हैं, जहां पति ईश्वर के समक्ष गौण हो गया है। सखियां कृष्ण-प्रेम में डूब कर फाग का आह्वान नहीं करती वरन् अपना आराध्य मान कर उनके स्पर्श, संपर्क से अपने को धन्यभाग भी मानती है। वास्तव में रसखान के फाग बखान की कहीं न कहीं अतिशय भौतिक भावना एवं स्पर्श को, हाड़ मांस के मात्र एक व्यक्ति (कृष्ण) से जोड़ कर देखने पर यह प्रगल्भता अथवा मर्यादा-सीमा से परे लगती है। कृष्ण को ईश्वरीय रूप देकर ही हम इन सारी क्रियाओं को निष्कपट व निष्पाद मान सकते हैं और वह मात्र एक भक्त की लेखनी व दृष्टि द्वारा ही हो सकता था।

रसखान एक स्वच्छंद प्रकृति कवि हैं, सांसारिक वर्जनाओं की सीमा में बद्ध नहीं हैं। रसखान एकपक्षीय रचेता नहीं हैं—वे भक्त हैं, वे प्रेमी हैं, भावुक हैं और हैं शृंगार रस में आकंठ डूबे कवि। फाग स्वयं एक अतीव रसमय पर्व है अतः रसखान और इस रस की खान पर्व का अटूट नाता बनता है। श्रीकृष्ण को आराध्य पाकर, सैयद इब्राहिम के पूर्वोत्तर जीवन का वैभव-विलास रसप्रियता के प्रति भौतिक प्रेम कृष्ण के आध्यात्मिक रंग से निखरे उत्तर जीवन में परिवर्तित हो गया। पर

रसप्रियता के कारण फाग-बखान वास्तव में नवरंग-चित्रण बन गया। श्रीकृष्ण जिसका आराध्य हों, गोवर्द्धन-धाम जिसका आश्रय हो और मन जिसका रंगस्थली हो, उसकी लेखनी से रंगों की बौछार तो होनी ही थी। गोवर्द्धन-धाम निवास के पश्चात् रसखान एकांगी कृष्ण के स्थान पर उनके राधाकृष्ण रूप में, युगलकिशोर रूप में अर्थात् संपूर्ण रूप में आसक्त हो गए थे। इस संपूर्ण रूप को मान्यता देता पर्व है—फाग, जहां प्रियतम-प्रियतमा अनुरक्ति-आसक्ति, रूप-सौंदर्य एवं केलि-क्रीड़ा आदि सब रंगों में डूबे दिव्य अस्तित्त्व बन कर गोलोक में रंग-वर्षा की अनुरचना कर बैठते हैं। रसखान ने कृष्ण अनुरागी मीरा की तरह मात्र यही नहीं कहा—

''जाहु न कोउ सखी जमुना जल
रोके खडो मग नंद के लाला।
नैन नचाइ चलाइ चितै
रसखानि चलावत प्रेम को भाला।।
मैं जु गई हुती बैरन वाहिर
मेरी कारी गति टूटि गो माला।
होरी भई के हरी भए लाल के
लाल गुलाल पगी ब्रजवाला।।''

रसखान के फाग का केंद्र है—एक श्याम सलोना किंतु फाग खेलनहारे हैं—अनेक ब्रजवासी और अनेक रमण स्थान फिर चाहे वह ब्रजकुंज हो या वीथिका का पनघट।। अतः यह नटखट ग्वाला जगह-जगह फाग खेल कर समस्त ब्रजवासियों को कृतार्थ करता चलता है। यहां तक कि वय-भेद, संबंध-मर्यादा सब तिरोहित कर देता है। लोक-लज्जा एवं कुल-रीति भूल कर एक ओर वयप्राप्त सास सुबह तो युवा सांझ समय नट-नागर के लिए नर्तन कर उठते हैं। रसखान ने अपने इस कवित्त द्वारा फाग की उन्मुक्तता तथा रूढ़-बंधन-उल्लंघन को सजीव कर दिया है। कान्हा जा पहुंचा है, चौमुहे पर चाचर मचाने—

''गोकुल को ग्वाल कान्हि
चौमुंह की ग्वालिन सौं
चांचर रचाई एक धूमहिं मचाइगो।
हियो हुलसाय रसखानि तान गाई बांकी
सहज सुभाइ सब गांव ललचाइगो।।
पिचकारी चलाइ और जुबती भिजाइ नेह
लोचन नचाई मेरे अंगहि बचाइगो।
सासहि नचाइ भोरि नंदहि नचाइ खोरी
बैरिन सचाइ गोरी मोहि सकुचाइगो।।''

श्याम का फाग शाम तक चलता है। गोपियां अपनी सीमाएं भूल जाती हैं, विवश हो जाती हैं फिर भी स्वयं कृष्ण को उलाहना ही नहीं फाग खेलने का आमंत्रण दिए बिना नहीं मानती—

''खेलिए फाग निसंक ह्वै,
आज मयंक मुखी कहे भाग हमारो।
तेहु गुलाल छुओ कर में,
पिचकारिन मैं रंग हिय महं डारो।।
भावे सु मोहि करो रसखान जू
पांव परो जनि घूंघट टारो।
वीर की सौंह हौं देखि हौं कैसे
अबीर तो आंखि बचाव के डारो।''

रसखान तो हैं ही रसपूजक और रसों में भी शृंगार उपासक। तो ऐसे रसप्रिय से होली जैसा लुभावना, स्वच्छंद एवं शृंगार पर आधारित 'फाग' जैसा पर्व कैसे अछूता रहता। सही कहा गया है कि फाल्गुन में चलने वाली हवा भी ऐसी मादक होती है कि वयप्राप्त प्राणियों को भी बौरा देती है। होली और शृंगार रस का अभिन्न साथ है फिर चाहे वह रसखान की लेखनी का फागकीर्तन 'प्रियतम बिछोह' के वियोग-पक्ष वर्णन में मर्मांतक पीड़ा बन कर उकेरा गया हो या प्रियतम-मिलन के रूप में फाग-क्रीड़ाओं से सजाया गया हो।

जिसका आराध्य ही कृष्ण जैसा शाश्वत शृंगार-स्त्रोत, धारक एवं प्रणेता हो, तो उस भक्त कवि रसखान की लेखनी किसी अप्रतिम चित्रकार की तूलिका के अबीर गुलाल से समस्त ब्रज को सांगोपांग रंगों में क्यों न डुबा डालती? रसखान की भाषा की सरलता और उसका स्थानीय रूप उनके भावों को जनमानस में और संवेग दे देता है। रसखान ने अपने फाग-वर्णन में ब्रज भाषा का सरल सुंदर उपयोग किया है। अतः प्रत्येक जन विशेषतः ब्रजवासियों के लिए तो वह इस तरह आपबीती बन गया कि उनके जीवनकाल में ही लोगों की जिह्वा पर उनकी रचनाएं—सवैये, कवित्त, दोहे आदि चढ़ गए। हां, इस जनप्रियता के मूल में उनकी रचनाओं में बहता संगीत एवं सहज लयबद्धता का भी कम योगदान नहीं।

रसखान की लेखनी 'फाग' आ पहुंचने का संकेत देती है—कुंज वाटिकाओं में खिलते फूलों के बखान से, जो अनंग देव के बाणों का काम करते हैं—

''फलत फूल सबे बन बागन,
बौलत और बसंत के आवत।
कोयल की किलकारी सुनै,
सब कंत विदेसन ते धावत।।''

यहां विरही नायिका को कोयल की कुहुक याद दिलाती है, कि फाग की इस सुंदर ऋतु में परदेसी स्वामी भी अपने घर वापस लौटने लगते हैं पर नायिका के प्रियतम से अभी भी उसका वियोग उससे कहला उठता है—

''ऐसो कठोर महा रसखान जू,
नेकहु मोरी ये पीर न पावत।
हूक सी सालत हिय में जब
बैरिन कोयल कूक सुनावत।।''

रसखान का फाग-वर्णन प्रमाण है, इस हृदय परिवर्तित कवि का जो मात्र आराध्य ब्रजेश कृष्ण का ही नहीं वरन् उनकी फाग-क्रीड़ाओं के माध्यम से लोक-परंपरा व पर्वों का उदात्त भक्त बन गया। जिसका मात्र आराध्य ही छैल-छबीला-रंगीला नटखट मनमोहन-माधव नहीं था पर जिसकी लेखनी भी नटखट नटिनी तथा छबीली-रंगीली थी। ठीक फाग के अबीर-गुलाल जैसी, कुंकुम-केसर जैसी सुलास्य एवं सुरभि के साथ श्रीकृष्ण के साथ अपने आत्मा एवं काया के संबंध को, रसखान की लेखनी ने फाग-रंग के लास्य से उकेर कर फाग जैसे एक सामाजिक-पर्व को एक शाश्वत तत्त्व प्रदान कर निराला बना दिया हे।

निःसंदेह रसखान की यह फाग छटा हिंदी साहित्य के गगनांचल को और सुरम्यता देती चिरंतन रंगित करती रहेगी। जब कभी कोई गुणीजन रसखान के फाग-वर्णन का आस्वादन करेंगे, बरबस उनके अधर बोल पड़ेंगे—''आज रंग है।''

बी-3/1 ई, जी.ए.एस.टी.ए. आवास परिसर,
पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063

स्वच्छंद काव्यधारा के कवि : रसखान

बबिता कुमारी

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में स्वतंत्र रूप से लेखन कर रही बबिता कुमारी ने दूरदर्शन के 'पत्रिका' कार्यक्रम के लिए भी लेखन कार्य किया है।

रसखान कृष्णभक्त कवियों के अत्यंत मान्य कवि माने जाते हैं, उनके स्वयं के अनुसार वे बादशाह वंश के थे। यद्यपि अनेक आलोचक उन्हें दिल्ली का पठान सरदार भी मानते हैं। मुसलमान होते हुए भी ये वैष्णव भक्ति से सराबोर रहे। मिश्रबंधु और रामचंद्र शुक्ल इन्हें विट्ठलदास का शिष्य मानते हैं, जबकि चंद्रबली पांडेय इसका समर्थन नहीं करते। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार पहले ये एक बनिये के लड़के पर इस कदर आसक्त थे, कि उसका जूठा खाते और उसी की प्रदक्षिणा करते रहते थे। यह संयोग ही कहा जा सकता है, कि एक बार इन्होंने दो व्यक्तियों को आपस में बात करते हुए सुना कि ईश्वर की भक्ति ऐसी होनी चाहिए, जैसी कि रसखान, सेठ के लड़के की भक्ति करता है। तभी इनका हृदय परिवर्तित हुआ और इन्होंने श्रीनाथजी के दर्शन करने का निश्चय किया। गोकुल में इन्हें गोस्वामी विट्ठलनाथ से दीक्षा मिली। और दीक्षा मिलते ही इन्होंने अपना तन-मन श्रीकृष्ण के चरणों में समर्पित कर उन्हें अपना साध्य मान लिया। यही कारण है कि इनका नाम गोस्वामी विट्ठलनाथ के दो सौ पच्चीस शिष्यों में आदरपूर्वक लिया जाता है।

एक अन्य आख्यान के अनुसार इनका कृष्ण भक्ति से जुड़ना भी इनकी प्रेयसी को ही माना जाता है। सुजान के तिरस्कार से दुखी एक बार जब ये श्रीमद्भागवत के फारसी अनुवाद का अध्ययन कर रहे थे, उसी समय इन्हें कृष्ण के प्रति गोपियों के प्रेम की अनुभूति हुई और ये श्रीकृष्ण की भक्ति में रम गए।

इनकी कृति 'प्रेमवाटिका' के अनुसार इनका जन्म लगभग सन् 1533 ई. के आसपास माना जा सकता है। सन् 1555 ई. में मुगल सम्राट हुमायूं ने पठान शासकों से अपना राज्याधिकार फिर से हासिल किया था। और इस शासनाधिकार को प्राप्त करने में हुए रक्तपात और विध्वंस से कोमल हृदय कवि में विरक्ति के भाव जागे—

''देखि गदर हित साहबी,
दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा-वंश की,
ठसक छोरि रसखान।।
प्रेमनिकेतन श्रीबनहिं,
आइ गोबर्धन धाम।
लह्यो सरन चित्त चाहिके,
जुगलसरूप ललाय।।
तोरि मानिनी ते हियो,
फोरि मानिनी मान।
प्रेम देवकी छविहिं,
लखि, भए मियां रसखान।।''

लेकिन 'तोरि मानिनी ते हियो' से इनकी बनिये के लड़के के प्रति आसक्ति की बात सिद्ध नहीं हो पाती। इनकी बादशाही की ठनक इनकी रचना में भी देखी जा सकती है—

''विधु सागर रस इंदु सम,
बरस बरस रसखान।
प्रेमवाटिका रचि रुचिर,
चिर हिय हरख बखानि।''

भक्तकवि रसखान के काव्य में सूफियों के प्रेम की पीर की प्रधानता तो मिलती है। लेकिन उनका प्रेम-निरूपण बिलकुल स्वच्छंद दिखता है। इन्होंने प्रेम पीर के कृष्ण को मूर्त अवलंब बना दिया है। यद्यपि रसखान की गणना भक्त कवियों में की जाती है, परंतु वे मूल रूप से रसिक जीव थे और उनके लौकिक प्रेम ने अलौकिक प्रेम का रूप धारण कर लिया। आचार्य चंद्रबली पांडेय के अनुसार रसखान वल्लभी न होकर नारदी भक्त थे। रसखान के जीवन और काव्य का मूल आधार प्रेम है—

''आनंद अनुभव होत नहीं,
बिना प्रेम जग जान।
कै वह विषयानंद कै,
ब्रह्मानंद बखान।।''

भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा रचित 'उत्तर भक्तमाल' में इनकी भक्ति की प्रशंसा की गई है। वहीं राधाचरण गोस्वामी के 'नव भक्तमाल' में भी इनकी कीर्ति का बखान किया गया है, जिसमें इन्हें 'बादसा-वंश-विभाकर' कहा है। इसके अलावा 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में भी इन्हें श्रीनाथजी का भक्त बताया गया है।

रसखान की सभी रचनाएं अभी तक उपलब्ध नहीं हैं किंतु इनकी प्रमुखतः चार रचनाएं प्रामाणिक मानी गई हैं—'प्रेमवाटिका', 'सुजान-रसखान', 'दानलीला' और 'अष्टयाम'।

'प्रेमवाटिका' लगभग 52 प्रेम विषयक दोहों की कृति है, जिसमें उन्होंने राधा-कृष्ण के अलौकिक प्रेम का बखान किया है। वहीं 'सुजान-रसखान' में कवित्त, सवैया और

घनाक्षरी द्वारा एकनिष्ठ प्रेम की मार्मिक अभिव्यंजना मिलती है। 11 छंदों में रचित 'दानलीला' में राधा-कृष्ण संवाद किया गया है। इसी तरह से 'अष्टयाम' में कृष्ण की दिनचर्या के साथ-साथ अन्य क्रीड़ाओं को भी दर्शाया गया है। प्रेम इनके लिए दत्तचित्त अवस्था, भाव-विह्वलता और विशेष अनुराग की उमंग है।

रसखान अपने नाम के अनुरूप काव्यरूपी रस की खान साबित हुए हैं। उन्होंने ब्रजलीला से अधिक विलोकन और मुस्कान को महत्त्व देकर संयोग और वियोग शृंगार पक्षों का बेहद सुंदर चित्रण किया है। इसीलिए आचार्य शुक्ल ने भी लिखा है, ''प्रेम के ऐसे सुंदर उद्‍गार रसखान के छंदों और सवैयों में निकले कि जनसाधारण प्रेम या शृंगार-संबंधी कवित्त सवैयों को ही रसखान कहने लगे—जैसे ''कोई रसखान सुनाओ।'' सूफी काव्य के दीदार और दीवाना की तरह विलोकना और बिकाना इनके काव्य की विशेषता कही जा सकती है। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार इनके द्वारा अनेक कीर्तन भी रचे गए हैं, परंतु वे उपलब्ध नहीं हैं।

रसखान ने अपने काव्य में श्रीकृष्ण की बाललीला की अपेक्षा किशोर या तारुण्य लीलाओं को अधिक महत्त्व दिया है। इनकी भक्ति हृदय से निकली आराधना है, तो इनका शृंगार वर्णन भी हृदय की उन्मुक्त अभिव्यक्ति है। इसके अतिरिक्त दानलीला में भी इनकी उपासना खुलकर बोलती है। रास और चीरहरण लीला का वर्णन तो खुद-ब-खुद बोलने लगता है। वहीं बांसुरी की करामात और कुब्जा भी इनकी पैनी नजर से बच नहीं पाए। इनके काव्य में ब्रजभूमि संबंधी पद काफी सरस बन पड़े हैं। प्रेम तत्त्व के निरूपण में रसखान का अद्‍भुत कौशल दिखता है, उनका प्रेम वर्णन बड़ा ही व्यापक, विशद और सूक्ष्म है। शृंगार रस इनके काव्य का प्रमुख रस है और जिसके आलंबन श्रीकृष्ण हैं। कान्हा के रूप पर मुग्ध राधा एवं गोपियों की मनःस्थिति के चित्रण के माध्यम से रसखान ने शृंगार की मधुर अभिव्यंजना की है। इनकी रचनाओं में दूसरा प्रमुख रस वात्सल्य है। कृष्ण के बाल-रूप की लीलाओं का वर्णन उन्होंने बहुत कम छंदों में किया है परंतु उनकी काव्यात्मक गरिमा देखते ही बनती है—

''धूरि भरे अति सोभित स्याम जू
वैसी बनी सिर सुंदर चोटी।
खेलत खात फिरै अंगना पग
पैंजनि बाजति पीरी कछोटी।।
या छवि को रसखानि विलोकत
वारि काम कलानिधि कोटी।।
काग के भाग बड़े सजनी हरि
हाथ सौं लै गयो माखन रोटी।।''

मूल रूप से प्रेम और शृंगार के कवि की भाषा साहित्यिक ब्रज टकसाली, सरस और सरल, शुद्ध परिमार्जित है। माधुर्य एवं प्रसाद का अनूठा प्रयोग किया गया है। इनकी काव्य भाषा में अनावश्यक अलंकारों और छंदों के आडंबर नहीं मिलते। इस संबंध में भारतेंदुजी का कहना है—

'''इन मुसलमान हरिजन पै
कोटिन हिंदुन वारिये।''

रसखान की कविता का उद्‍घोष है—

''ऐसे ही भये तौ कहा दीख रसखान जु पै।
चित्त वै न कीन्हीं प्रीत पीत पटवारे सों।।''

इनकी भाषा के शब्दों का चयन और व्यंजक शैली हिंदी जगत के लिए एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। इन्होंने दोहा, कवित्त और सवैया छंदों को अपने काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। इनके दो सवैये तो भला कौन भूल सकता है—

''मानुष हौं तो वही रसखान
बसौं संग गोकुल गांव के ग्वारन।''

इसके अलावा—

''या लकुट अरु कामरिया पर
राज तिहुं पुरको तजि डारौ।''

सी-70, अशोक विहार, फेज-2
गुड़गांव-122001 (हरियाणा)

रसखान, श्रृंगार और जीवन रस

अशोक मनोरम

पेशे से पत्रकार अशोक मनोरम कविता, कहानी के क्षेत्र में भी सक्रिय हैं। इसके अलावा विविध विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित।

रस का अर्थ है जीवन। जीवन नीरस नहीं होता। जीवन सदैव सरस होता है। जब तक जीवन में रस है, तभी तक वह सफल है। 'रसखान' का अर्थ है रसों की खान। 'रसखान' के काव्य का आधार भी भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं का गान ही है। श्रीकृष्ण की लीलाओं का सरस वर्णन संभवतः रसखान से अधिक सुंदर किसी अन्य कवि ने नहीं किया है। कृष्ण रसखान के प्रभु हैं। प्रभु की लीला-भक्ति से होते हुए शृंगारमय कब हो गए, यह शायद कवि को भी नहीं पता चला कि कब उन्होंने श्रीकृष्ण के रूप माधुर्य पर अपने को न्योछावर कर दिया। दरअसल दुनिया की वे सब चीजें जो आनंद देती हैं, वह ईश्वरीय तत्त्व कही जा सकती हैं। आनंद में वासना नहीं होती, आनंद में कुंठा भी नहीं होती। आनंद तो जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य है, जिसके मिलने से हृदय-कमल खिल जाते हैं। भगवान की लीला सरस है, पर आसान नहीं। आसान चीजों के दरस-परस के खातिर गंभीर रूप से मन को मेहनत करनी पड़ती है, पर श्रम-बूंदों की तरह मन की कुंठाओं को तिरोहित होने का मार्ग भी तो नहीं निकल पाता।

जब रसखान का हृदय-परिवर्तन हुआ, यानि सांसारिक से आध्यात्मिक हुए, तो उन्होंने अपना शाही चोला उतार दिया। मधुसूदन के प्रेम में अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया। आलोचक रसखान को बादशाह के वंश का मानते हैं। इन्होंने बादशाह के परिवार में काया तो नहीं पाई पर दरबार में पले-बढ़े जरूर थे।

''देखी गदर हित साहिबी,
दिल्ली नगर मसान।
छिनहि बादशाह बंश की
ठसक छोरि रसखान।।''

रसखान की लगन जब ईश्वर (कान्हा) से लगी तो उन्होंने बादशाहत की वेशभूषा छोड़ दी और दिल्ली नगर को त्याग कर गोवर्धन धाम में आकर कृष्ण-राधा की शरण पकड़ ली।

दरअसल, रसखान शृंगार के पुजारी कवि पहले हैं, बाद में भक्त। भक्ति चरम है, शृंगार परम। शृंगार में आस्था से अधिक सानिध्यता होती है। शृंगार में आदर से अधिक जुड़ाव होता है, शृंगार में पावनता से अधिक पहचान होती है। शृंगार में नवधा से अधिक नवीनता होती है। रसखान पहले सांसारिक थे, फिर शृंगारिक हुए और अंत में व्यावहारिक हुए बिना भक्ति में ऐसे लीन हो गए कि श्रीराधा-कृष्ण की छवि में खुद को देखने लगे, कभी कृष्ण के रूप में अपनी पगड़ी कान्हा की तरह संवारते, कभी राधा बन कर कान्हा को रिझाने का उपक्रम करते। रसखान ने अपने प्यारे-प्रभु को हमेशा अपने पास रखने की चाहत पाली। पहले मित्र बनाया, फिर उससे नेह लगाया। शृंगार के सभी आलंबों को अपनी लेखनी से ऐसा सजाया कि श्रीहरि खुद रसखान के भक्त हो गए। कृष्ण की बाललीला ने उन्हें नटखट कान्हा से होते हुए पनघट-लीला करने वाला रसिया बनाया और गोपियों को यह संदेश दिया कि लौ जिससे लगती है, वह ही तो सर्वेसर्वा होता है। दैनिक जीवन के जितने भी उपादान होते हैं, हर जगह श्रीकृष्ण की लीला शृंगार से होते हुए भक्ति में लीन होने की कहानी कहती है।

कान्हा की वस्तु—खिलौने, मुरली, मोरमुकुट, अधर, नयन, करधनी, चाल की ठुमकी, होंठों पर मुस्कान जो संभवतः लोगों के दिलों को जीत सकते हैं, दुनिया-जहान को कवि ने इस तरह संवारा-सजाया कि एक बालक को भगवान बना दिया। रसखान ने श्रीकृष्ण के भीतर जितनी अच्छाइयां देखीं, उन सब को उनके व्यक्तित्त्व के बीच लाकर व्यक्ति को महान बनाने के उपादान के रूप में प्रस्तुत कर दिया। रसखान संभवतः पहले ऐसे कवि हुए, जिन्होंने शृंगार से भक्ति की पराकाष्ठा को पाने में अपने आप को खोना बेहतर समझा और जग के जीवन को ऐसा उपहार दिया कि शृंगार में अविरल अश्रु बहाने वाले ने कब ईश्वरीय कृष्ण को हंसते-खेलते-गाते अपना बना लिया। यह अपना बनने-बनाने के खेल में रसखान कभी असफल नहीं हुए। रसखान की लेखनी से भक्ति की धारा प्रवाहित होते-होते जीवन की संपूर्ण सच्चाइयों को भक्तिमय बनते पाठकों और लेखकों ने देखा एवं स्त्रियां भी वैराग्य छोड़ श्रीकृष्ण की ऐसी दीवानी हुईं कि हर दिल से कसक-ठसक और मसक से होते हुए चसक तक भक्त पहुंच गए। यह चसक गंध नहीं, प्रभु-प्याला था, जिसे कवित्त, दोहों और शृंगार के कई आलंबनों में गूंथ कर भक्त को भी भगवान बनाने का उपक्रम गढ़ लिया। शृंगार से कैसे रसखान की लेखनी ने अध्यात्म की दूरी मापी? यह उनकी कवित्त और छंदों की तन्मयता के साथ दुनियावी समझ को दर्शाती है। उन्होंने भू-लोक से होते

हुए परलोक तक पहुंचने की कथा गढ़ी और भक्ति और शृंगार का एक अटूट रिश्ता बना दिया गया।

विलास—प्रिय के दर्शन, आगमन, आदि के कारण, चाल-ढाल, उठने-बैठने, आसन-शयन, किंवा मुख और नेत्र आदि के व्यापारों के आनंद-सूचक विशेषता का नाम 'विलास' है। रसखान का विलास-दर्शन देखने योग्य है—

''आजु हों निहारयौ बीर निपट कालिंदी-तीर,
दोउन के दोगुने सों मुरि मुसकाइबो।
दाऊ परैं पैयां दोऊ लेते हैं बलैयां उन्हें,
भूलि गई गैंया उन्हें गागर उचाइबौ।
बंक विलोकनि हंसनि मुरि,
मधुरबैन रसखानि,
मिले रसिक रसराज दोऊ
हरखि हिए रसखानि।''

आंखों के द्वारा शृंगार निरूपण रसखान ने बड़ी ही मर्यादा और चतुराई से किया है—

''लोक की लाज तज्यौ तबही
जब देख्यौ सखी ब्रज चंद सलोनो।
खंजन मीन सरोज की छवि
गंजन बैन लगा दिन हौनो।''

(कृष्ण के नेत्रों से प्रभावित होकर गोपियां लोक-लाज को त्याग देती हैं।)

रसखान ने कृष्ण के नेत्रों की उपमा बाण से भी की है। आंखों की मार के लिए बाण को उपमान गृहीत किया है। यों भी बाण का नुकीलापन नयन-कोरकों से बहुत समता रखता है—

''तिरछी बरछी सम मारत हैं
दृग बान कमान सुकान लग्यौं।
जोहन बंक बिशाल के बाणनि
बेधत हैं घट तीछन मारी।''

रसखान विशाल नेत्रों के साथ-साथ विलक्षण चितवन का वर्णन करना भी नहीं भूले हैं। वे जानते थे कि प्रेमोत्पादन में बड़ी-बड़ी आंखें वह स्थान नहीं रखती, जो विलक्षण चितवन रखता है। कृष्ण के बंक-विलोचन का भी अचूक प्रभाव गोपियों पर पड़ता है। वे उसको देख लोट हो जाती हैं—

''बंक विलोचन लोट भई रसखानि
हियौ हित दाहत है तन।''

कटाक्षोपात का प्रभाव भी मन पर पड़ता है। रसखान को भी कृष्ण के कटाक्ष बहुत प्यारे लगे हैं। उन्होंने कई पदों में कटाक्ष के प्रभाव का वर्णन किया है—(कृष्ण के कटाक्ष गोपियों पर अचूक प्रभाव डालते हैं। वे लज्जा का त्याग कर देती हैं।)

''मोहन रूप छकि वन डोलति
घूमति री तजि लाज विचारै।
बंक विलोकनि नैन विसाल
सुदपति कोर कटाछन मारै।।''

भृकुटि-निरूपण—रसखान ने कृष्ण के नेत्रों के साथ उनकी भौहों में भी सौंदर्य के दर्शन किए। भवों का आकार कमान से साम्य रखता है। कमान से तीर छोड़कर जिस प्रकार घायल किया जाता है, उसी प्रकार भवों के कटाक्ष तथा नेत्राभिचालन भी घायल करते हैं—

''भौह कमान सों जोहन की सर
बेधत प्राननि नंद की छोनो।''

भौंह मटकाना चपलता का प्रतीक माना गया है। काव्यशास्त्रियों ने इसे अगज अलंकार के अंतर्गत हाव माना है। रसखान की पैनी दृष्टि से भौंह की मटक न छिप सकी और उनकी गोपियां कृष्ण के चपल रूप को देखना चाहती है।

''चीर की चटक औ लटक नव कुंडल की,
भौंह की मटक नेह आंखिन दिखाउ रे।''

मुख—मानवीय सौंदर्य में मुख की सुकुमारता, आकृति सौंदर्य तथा प्रसन्न मुद्रा आदि का महत्त्व निर्विवाद रूप से स्वीकार किया गया है। रसखान ने भी कृष्ण के मुख का वर्णन किया है। काव्य-परिपाटी के अनुसार कृष्ण का मुखकमल चंद्रमा के समान है और गोपियों के मन को मोहता है। प्रतीक अलंकार द्वारा रसखान ने एक स्थान पर मुख को चंद्रमा से भी अधिक सुंदर दिखाया है—

''मोहन सुंदर आनन चंद तें
कुंजन देख्यौ मैं श्याम सिरोमन।''
जाकौ लखै मुख रूप अनूप
होत पराजय कोटिक चंदा।
हौं रसखानि विकाई गई
उन मोल लई सजनी सुखकंदा।।''

केश—केश वास्तव में सौंदर्य को बढ़ाने वाले माने गए हैं। नखशिख वर्णन में केशों के सौंदर्य की चर्चा संस्कृत साहित्य से चली आ रही है। अलंकार-शेखरकार ने केशों के उपमान की तालिका प्रस्तुत करते हुए तम, शैवाल, मेघ, बर्ह, भ्रमर, चामर, यमुना, बीचि, नीलमणि, नीलकमल और आकाश का उल्लेख किया है। केशों के गुणों का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि उनमें दीर्घता, कौटिल्य मार्दव, नैवित्र्य और नीलापन होना चाहिए। रसखान ने मात्र घुंघराले बालों की चर्चा की है, जो अद्‌भुत हैं—

''मौतिन माल बनी नटकै,
लटकी लटवा लट घूंघरवारी।''

वस्त्र—मानव जीवन में वस्त्राभूषण के महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। वस्त्र मानव की दैनिक आवश्यकताओं में से हैं। सुंदर वस्त्राभूषण मानवीय सौंदर्य में वृद्धि करते हैं। उनकी चर्चा काव्य में प्राचीन समय से चली आ रही है। रसखान ने भी कृष्ण को जिस वेश-भूषा से सुसज्जित दिखाया है, उसकी चर्चा उनसे पहले भी कृष्ण-भक्त कवि करते रहे हैं—

''फेरि फिरैं अंखियां ठहराति हैं
कारि पितंबर वारे के ऊपर।''

उनके शरीर पर पीला वस्त्र देखकर दामिनी की दुति भी लज्जित होती है—

''रसखानि लखें तन पीत पटा
सत दामिनी की दुति लाजति है।''

गोपियों के कृष्ण घन से भी नवीन प्रतीत होते हैं और पीला वस्त्र बिजली के समान प्रतीत होता है। अन्य स्थान पर रसखान पीतांबर की चटक का वर्णन करते हुए कहते हैं—

''वह पीत पटक्कनि की चटकानि
लटक्कनि मोर मुकुट्टनि की।''

यहां रसखान ने सानुप्रास शैली में नाटकीय ढंग से कृष्ण के पीले वस्त्र की सराहना की है। रसखान कृष्ण के दुकूल की चटक के नएपन का निरूपण करते हुए कहते हैं—

''दोउ कानन कुंडल, मोरपखा सिर सोहै
दुकूल नयो चटको।''

आभूषण—कृष्ण को एक विशेष स्वरूप में चित्रित करना कवियों की परिपाटी रही है। श्रीमद्भागवत से लेकर आधुनिक साहित्य तक में कृष्ण स्वरूप का चित्रण हुआ है। रसखान ने भी कृष्ण को विभिन्न मालाओं से विभूषित दिखाया है, जिनमें बनमाल, गुंजों की माला, मोतिन माल, मणिहार, हमेलन हार आदि हैं। गोपियों को भी कृष्ण का यही स्वरूप पसंद है।

''गुंज गरें सिर मोर पखा
अरु चाल गयंद की मो मन भावै।''

×××

केसरिया पट, केसरि खौर,
बनौ गर गुंज को हार ढरारो।''

एक स्थान पर रसखान के कृष्ण मणिहार पहने हुए शोभित हो रहे हैं—

''मनिहार गरे, सुकुमार धरे नट भेस अरे,
पिय की टटकौ।''

मणिहार पहने हुए कृष्ण रसखान को बहुत सुकुमार प्रतीत होते हैं। बच्चे के गले में हमेलन हार पहनाया जाता है। उसकी चर्चा करते हुए रसखान कहते हैं—

''डालि महेलनि हार निहारत बारत
ज्यों चुचकारत छोनहि।''

मोरपंख—कृष्ण की वेशभूषा में मोरपंख का विशिष्ट स्थान है। यह सौंदर्य वृद्धि का एक उपकरण है। रसखान से पूर्व सूरदास ने भी लिखा है। रसखान के मन में कृष्ण का मोर मुकुटधारी रूप ही बसा हुआ है।

''वह पीत पटक्कनि की चटकानि
लटक्कानि मोर मुकुट्टनि की।

×××

दोऊ कानन कुंडल, मोर पखा सिर,
सोहै दुकूल नयो चटको।''

शृंगार-साज-सज्जा—सौंदर्य वही है, जो मन को भाए। सौंदर्य या रूप को बढ़ाने वाली चेष्टाएं शृंगार कहलाती हैं। शृंगार के शब्द इस प्रकार प्रयुक्त हुए हैं कि जो वस्तुएं मानवीय सौंदर्य को बढ़ाने वाली थीं, वे भी शृंगार कहलाने लगीं। रसखान ने शृंगार के शास्त्रीय आधार सोलह-शृंगार को नहीं अपनाया है। कृष्ण का जो रूप उन्हें सुंदर लगा उसका उन्होंने सहृदयता से अपने काव्य में रस निरूपण किया—

''लाल लसै पगिया सबके,
सबके पट कोटि सुगंधनि भीने।
अंगनि अंग सजे सबही
रसखानि अनेक जराउ नवीने।
मुक्ता-गलमाल लसै सबके
सब ग्वार कुमार सिंगार सो कीनै।
पै सिगरे ब्रज कै हरिहीं
हरि ही कै हरै हियरा हरि लीने।''

शृंगार की चेष्टाएं—रसखान ने कृष्ण को घोर शृंगारी के रूप में चित्रित किया है। उन्होंने तो गोपियों का मुख-चुंबन करते हुए भी दिखाया है—

''और कहा रसखानि कहौं मुख
चूमत घातन बात बनाई कें।''

कृष्ण सोती हुई बाला को गोद में भर लेते हैं। वह चौंक उठती है। उस दशा का बहुत ही मार्मिक चित्र रसखान ने अपने काव्य में खींचा है—

''वह सोर हूती परजंक लली
लला लीनो सुआई भुजा भरि कै,
अकुलाइ कै चौंकि उठी सुंदरी
निकरी चहै अंकनितें फरि कै।''

इससे भी अधिक शृंगारी चेष्टाएं देखिए—

''अंखियां अलियां सों सकाइ मिलाइ
हिलाइ रिझाइ हियो हरिबो,
बतियां चित चोरन चेटक सी
रस चारू चरित्रण ऊचरिबो।
रसखानि के प्रान सुधा भरिबो
अधरान पै त्यों अधरा धरिबौ,
इतने सब मैन के मोहनी जंत्र
पै मंत्र बसीकर सी करिवौ।''

कृष्ण को केवल इतने से ही संतोष नहीं होता, वे नायिका के अंग से अंग मिलाते हैं—

''अंगनि अंग मिलाइ दोऊ
रसखानि रहे लिपटे तरु-छाहीं।
संगनि संग अनंग को रंग सुरंग
सनी पिय दे गलबाहीं।''

मुस्कान-निरूपण—कृष्ण की मुस्कान में इतना आकर्षण, इतनी शक्ति है कि गोपियों का मन उसमें डूब चला है। निकलने का प्रयत्न करने पर भी नहीं निकलता।

''माई री वा मुख की मुस्कान
गयौ मन बूड़ि फिरै नहीं फेरो।''

रसखान को कृष्ण का कुंजों से मुस्कराते हुए निकलता रूप बहुत प्रिय है। उन्होंने कई पदों में इस रूप की चर्चा की है। कृष्ण मुख में पान भरे मुस्काते हुए कुंजों से निकलते हैं। गोपियों को कृष्ण का यह स्वरूप इतना प्यारा लगता है कि प्रयत्न करने पर भी एक पल के लिए दिल से नहीं निकलता है। सुसज्जित मुस्काते कृष्ण के 'तुलसी-वन' से निकलते मोहक रूप को देखकर गोपियां किस प्रकार लोक-लाज का त्याग करती हैं, कैसी उनकी मनोदशा होती है—

''आजु दी नंद लला निकस्यौ
तुलसी बन ते बनकै मुस्कातो।

देखें बनै न बनै कह तै अब सो
सुख जो मुख में न समातो।
हों रसखानि बिलोकिबे कौं
कुलकानि के काज कियौ हिय हातो।
आई गई अलबेली अचानक ए
भटू लाज को काज कहा तो।''

कृष्ण की मुस्कान गोपियों को बेसुध कर देती हैं, साथ ही उनकी देह को भी हर लेती हैं।

''ए सजनी लोनो लला लह्यौ नंद के गेह।
चितयौ मृदु मसकाइ के हरी सबै सुधि-देह।।

राधा का धैर्य समाप्त होने लगता है, वे कृष्ण की मुस्कान पर प्रकृति के उपकरणों को वारने के लिए तैयार हो जाती हैं—

''कातिक क्वार के प्रात ही प्रात
सरोज किते बिकसत निहारे।
डीठि पर रतनागर के दरके
बहु दाड़िम बिंब बिचारे।
लाल सु जीव जिते रसखानि
तै रंगनि तोलिन मोलनि भारे।
राधिका श्रीमुरलीधर की मधुरी
मुसकानि के ऊपर वारे।''

बांसुरी—एक गोपी दूसरी से कहती है, कि कृष्ण बांसुरी बजाते, गोधन गाते ग्वालों के साथ मेरी गली में आए। सुग्वालिनि के मिस उन्होंने मेरा नाम ले बंसी बजाई। उनकी बंसी सुन चित्त का चैन समाप्त हो गया तथा उन्होंने चित्त को भी चुरा लिया—

''बेनु बजावत गोधन गावत
ग्वालन संग गली मघि आयौ।
बांसुरी में उनि मेरोई नांव
सुग्वालिनि के मिस टेरी सुनायौ।
ए सजनी सुनि सास के त्रासनि
नंद के पास उसास न भायौ।
कैसी करौ रसखानि नहीं हित,
चान नहीं चित्त चोर चुरायो।''

आगतपतिका नायिका—अपने प्रियतम के आगमन पर प्रसन्न होने वाली नायिका 'आगतपतिका' कहलाती है। रसखान ने आगतपतिका-नायिका का चित्रण बहुत ही सुंदर-भावपूर्ण ढंग से किया है —

''नाह-बियोग बढ़्यौ रसखानि
मलीन महा दुति देह तिया की।
पंकज सों मुख गौ मुरझाई
लगीं लपटैं बरि स्वांस हिया की।
ऐसे में आवत कान्ह सुने
हुलसैं तरकीं जु तनी अंगिया की।
यौ जगाजोति उठी अंग की
उसकाई दई मनौ बाती दिया की।''

नायिका विरह-पीड़ित है, किंतु कृष्ण के आगमन से उसकी पीड़ा समाप्त हो जाती है और उसकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहता। जैसे दीपक की बत्ती बढ़ाने से प्रकाश बढ़ जाता है, वैसे ही प्रिय के आगमन से नायिका का शरीर प्रफुल्लित हो उठता है। काव्यशास्त्र में शृंगार रस को रसराज कहा गया है। रसखान के काव्य में शृंगार की महत्ता अध्यात्म तक पहुंचती है और राह होती है—शृंगार। शृंगार के दो विभेद बताए गए हैं—संभोग-शृंगार और विप्रलंभ-शृंगार।

संभोग शृंगार– जहां नायक-नायिका की संयोगावस्था में जो पारस्परिक रति रहती है, वहीं संभोग शृंगार होता है। 'संभोग' का अर्थ है, संभोग सुख की प्राप्ति। रसखान के काव्य में संभोग शृंगार के अनेक उदाहरण मिलते हैं। राधा-कृष्ण मिलन और गोपी-कृष्ण मिलन में कहीं-कहीं संभोग शृंगार का पूर्ण परिपाक हुआ है—

''अंखियां अंखियां सो सकाइ
मिलाई हिलाई रिझाई हियो हरिबो।
बतियां चित्त चोरन चेटक सी
रस चारू चरित्रन ऊचरिबो।
रसखानी के प्रान सुध भरिबो
अधरान पे त्यों अधरा धरिबो।
इतने सब मैन के मोहनी जंत्र
पे मंत्र बसीकर सी करिबो।''

संयोग शृंगार—कृष्ण के दर्शन मात्र से गोपी उनके प्रेमाधीन हो गई। निम्नांकित सवैये द्वारा संयोग शृंगार की चर्चा देखें—

''बन बाग तड़ागनि कुंजगली
अंखियां सुख पाइ हैं देखी दई।
अब गोकुल मांझ विलोकियैगी
वह गोप सभाग सुभाय रई।
मिलि हैं हंसि गाई कबै रसखानि
कबै ब्रज बालनि प्रेममई।
वह नील निचोल के घूंघट की छवि
देखबी देखन लाजलई।''

रसखान ने दोहे जैसे छोटे छंद में भी हर्ष और उल्लास द्वारा संयोग शृंगार की हृदयस्पर्शी व्यंजना की है—

''बंक बिलोकन हंसनि
मुरि मधुर बैन रसखानि।
मिले रसिक रसराज दोउ
हरखि हिये रसखानि।।''

रसखान ने अपने काव्य में प्रेम का चित्रण किया है। उनके प्रेम चित्रण का प्रेरणास्त्रोत श्रीमद्‌भागवत, सूर-साहित्य तथा फारसी काव्य भी है। श्रीमद्‌भागवत की कथा रसखान ने सुनी थी। सूरदास की तरह लीलागान तथा रूप-माधुर्य का उन्होंने विस्तृत विवेचन किया। फर्क केवल इतना है कि सूरदास को श्रीकृष्ण के बाल-सौंदर्य ने मोहित किया था तथा रसखान को युवा-रूप ने। उन्होंने सूफी सिद्धांतों को कृष्ण कथा का चोला पहनाकर अपने हृदय के मार्मिक उद्‌गारों की अभिव्यक्ति की। यही उनके काव्य की मौलिकता है। जिस प्रकार रसखान श्रीमद्‌भागवत, सूर काव्य तथा सूफी उपासना से प्रभावित हुए हैं, उसी प्रकार उनके समकालीन तथा बाद के कवियों ने रसखान से प्रेरणा ली, जिनमें घनानंद, रहीम, ठाकुर, और देव उल्लेखनीय हैं।

रसखान स्वच्छंद काव्यधारा के प्रथम कवि माने गए हैं, इसलिए बाद के कवियों का उनसे प्रभावित होना स्वाभाविक है। रसखान के काव्य में कृष्ण-भक्ति के साथ ही कृष्ण के मधुर रूप के दर्शन होते हैं। उनके कृष्ण अन्य भक्त कवियों के कृष्ण से अधिक सुंदर और आकर्षक हैं। रसखान की बड़ी विशेषता पुरुष-सौंदर्य का विशद चित्रण है।

हिंदी साहित्य में उनसे पूर्व नारी-सौंदर्य ने ही कवियों को अपनी ओर विशेष रूप से आकर्षित किया था। लेकिन रसखान ने नारी-सौंदर्य के निरूपण के साथ-साथ युवा कृष्ण का विस्तृत रस-चित्रण किया है।

रसखान ने अपने काव्य में ब्रज-संस्कृति के दर्शन करवाये हैं, इस संस्कृति के प्रति उनका विशेष मोह है। ब्रज में होने वाले उत्सव दिवाली, बसंत और होली का उन्हें पूर्ण ज्ञान था। कृष्ण और गोपी-ग्वालों की साज-सज्जा से भी अनभिज्ञ न थे। उन्होंने कृष्ण को अनेक प्रकार की मालाएं पहनाई हैं। कुंडल और मोरमुकुट से सुसज्जित दिखाया है। पाग और पांवरियों का भी चित्रण किया है। जादू-टोना, नजर लगना, आदि का भी स्वाभाविक चित्रण है, जो उनके ब्रज-संस्कृति के प्रति आकर्षण की अभिव्यक्ति करता है। मुसलमान होते हुए भी वे गंधर्व, गणिका, गज, अजामिल, अहल्या, प्रह्लाद और द्रौपदी आदि से परिचित थे। इस प्रकार रसखान को हिंदू धर्म और वेद-पुराणों का पूरा ज्ञान था।

वस्तुतः हिंदी साहित्य में अनेक रत्न हैं, जिनमें रसखान का अपना स्थान है। उन्होंने बाद के कवियों का पथ-प्रदर्शन कर अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है, जो उन्हें हिंदी साहित्य में विशेष स्थान का अधिकारी सिद्ध करती है। हिंदी साहित्य में सूर, तुलसी, बिहारी आदि अनेक महाकवि हैं। उनके अपने विशिष्ट गुण हैं। उनका अपना विशिष्ट स्थान है, लेकिन रसखान अपनी विशेषताओं के कारण ही शृंगार के रसखान हैं।

आर.जेड-31, ब्लॉक-एक्स, कैप्टन रिसाल सिंह मार्ग,
28 फुटा रोड, न्यू रौशनपुरा, पपरावट नजफगढ़,
दिल्ली-110043

रचनाकारों से अनुरोध

- **कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप कराकर भेजें। रचना यदि ई-मेल से भेज रहे हों तो साथ में फॉन्ट भी अवश्य भेजें।**
- **रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हों। शब्द-सीमा 3000 शब्दों तक है।**
- **रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन परिचय भी प्रेषित करें।**
- **रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कहानी के साथ विषय से संबंधित कलाकृतियां (हाई रेज्योलेशन फोटो) अवश्य भेजें।**
- **रचना भेजने से पहले उसे अच्छी तरह अवश्य पढ़ लें।**
  यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं तो वर्तनी को कृपया भली-भांति जांच लें।
- **ध्यान रखें कि भेजी गई रचना के पृष्ठों का क्रम ठीक हो।**
- **यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों तो यह सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।**
- **रचनाएं किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएंगी। अतः उसकी प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।**
- **स्वीकृत रचनाएं यथा समय प्रकाशित की जाएंगी।**
- **रचना के अंत में अपना पूरा पता, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।**
- **आप अपने सुझाव व आलोचनाएं कृपया ddgas.iccr.nic.in पर संपादक को प्रेषित कर सकते हैं।**

कान्हा भक्ति मयूर-पंखी प्रतिभा के हस्ताक्षर रसखान

डॉ. वेणुगोपाल कृष्ण

डॉ. वेणुगोपाल कृष्ण सुपरिचित हिंदी कवि, निबंधकार, अनुवादक एवं स्तंभकार हैं। कई पुरस्कारों से सम्मानित। कई पुस्तकों का अनुवाद एवं संपादन।

चिरपुरातन नित-नवीन जगद्गुरु भारत की सनातन धरती ने सिर्फ भागीरथी, जमुना, सरस्वती का त्रिवेणी-संगम ही उपस्थित नहीं किया, वरन् कर्म-धर्म, भक्ति एवं ज्ञान-मार्ग की त्रिवेणी भी प्रवाहित की, जो समस्त भारत को एक सूत्र में बांधती है। मध्यकालीन भारत में भक्ति की जो भागीरथी प्रवाहित हुई, उसमें भक्त शिरोमणि महाकवि सूरदास, गोस्वामी तुलसीदास, भक्त मीराबाई, रसखान, रहीम, जायसी, रैदास आदि कितने महा-मनीषियों ने सहज ही गोता लगाया और अपरंपार मोती बटोरे। कृष्णभक्ति, रामभक्ति और अवतारवाद ने समाज को कृष्ण और राम भक्ति का रतिवंत रसदार वाङ्मय दिया। भक्ति साहित्य ने समाज को निडरता तो बेशक दी, साथ ही साथ कल्याणकारी कामना भी की।

लब्धप्रतिष्ठित समालोचक व निबंधकार रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में ''आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएं श्रीकृष्ण की प्रेमलीला का कीर्तन करने उठी, जिनमें सबसे ऊंची, सुरीली और मधुर-झंकार अंधे कवि सूरदास की वीणा की थी। मनुष्य के सौंदर्य व माधुर्यपूर्ण पक्ष को दिखाकर कृष्णोपासक वैष्णव कवियों ने जीवन के प्रति अनुराग जगाया, या कम से कम जीने की चाह बनी रहने दी। कृष्ण-भक्ति शाखा के कवियों ने, चाहे सूर हो या मीराबाई, रहीम हो या रसखान, कृष्ण की रागमयी भक्ति के आधार पर ही प्रेमतत्व का विस्तार के साथ वर्णन किया। भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का हिरण्मय-युग कहा जाता है, क्योंकि प्रस्तुत काल में ही सूर, तुलसी, कबीर, रहीम, रसखान सरस कविवृंदों ने अपने काव्य-प्रणयन किए। भक्तिकालीन-साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति उसमें व्याप्त समन्वय की मनोभिराम भावना है।

कृष्णभक्ति शाखा के सुविख्यात कवि रसखान की जिंदगी में आए अति रसदार रागप्रसंग तो अजीबोगरीब हैं। वैसे संसार में शायद ही ऐसा कोई इनसान हो जिसके अंतःस्थल में कभी राग या अनुराग नहीं पनपा हो। परंतु कवियों व साहित्यकारों को इनसे भी अनुभूति, अनुभव, प्रेरणा तथा अत्यपूर्व उपलब्धियां वरप्रसाद स्वरूप प्राप्त होती हैं। अनुभवों और अनुभूतियों से विचित्र निचोड़ भी हासिल होता है, कि किसका अनुभव

कैसा और क्या-क्या रहा तथा उन्होंने उससे कौन सी चीज प्राप्त की। हां, यह देशकाल, वातावरण, काल और स्थल पर निर्भर रहता है कि प्रस्तुत प्रसंगों का क्या असर रहा और निष्कर्ष कौन सा निकला।

इंद्रप्रस्थ निवासी रसखान नामक पठान सरदार के अंतरंग में एक वैश्य तनय पर अंकुरित अनोखी व अद्भुत आसक्ति ने ही भौतिक प्रेम प्रतिक्रिया के रूप में अलौकिक प्रेम का रूप धारण कर लिया। एक दिन की बात है कि चंद वैष्णव साधु उपदेश दे रहे थे—''प्रभु में तो ऐसा भावमग्न होना चाहिए जैसे रसखान उस लड़के पर फिदा है।'' उसी की रूप-माधुरी में ही वह मस्त रहते, उसी का जूठन भी परम स्वाद से खाते। मामला रसखान ने जान लिया तो वह उन वैष्णवों से मिले और उनसे प्रभु के ऐश्वर्यों की जानकारी प्राप्त की। जिसके फलस्वरूप प्रणय मंदाकिनी ने पार्थिव-पथ को छोड़ दिया और तुरंत स्वरगंगा हो गई। तारुण्य की शुरुआत में घूमते-फिरते रहे रसखान अंपाटि पहुंचे और विट्ठलनाथाचार्य से संन्यास ग्रहण करके उनके अत्यंत कृपापात्र शिष्य बन गए। ''दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' ग्रंथ में यह उल्लेख है, कि उन्होंने वल्लभ-संप्रदाय के गोस्वामी विट्ठलनाथजी से दीक्षा ली थी। कान्हा के राग में यह ऐसे रंगे कि रसखान शब्द ही फिर प्रेम का पर्याय बन गया।

एक बार हिंदी रस की खान रसखान श्रीमद्भागवत का फारसी रूपांतर पढ़ रहे थे। प्रत्येक दिन अपने बीच चलते-फिरते, हंसते-बोलते, वन में गाय चराते देखते-देखते गोपियां कान्हा में अनुरक्त होती हैं और कान्हा गोपियों में। उनके कान्हा-प्रणय का वर्णन पढ़ते ही उन्होंने अपनी रूपगर्विता प्रणयिनी को छोड़ कर कान्हा से ही नाता जोड़ लिया और उसी के प्रेम में मस्त रहने लगे। परमार्थ तो यह है कि कृष्ण के प्रति रसखान का जो अनोखा अनुराग है, उसने उनकी जिंदगी की धारा ही बदल दी। तुरंत वह वृंदावन जा पहुंचे। उनके द्वारा रचित निम्नलिखित दोहे में प्रस्तुत

बात की थोड़ी सी परछाई दृष्टिगोचर होती है—

''तोरि मानिनी तें हियो,
फोरि मोहिनी मान।
प्रेम देवकी छविहिं लखि,
भये मियां रसखान।।''

काव्य मनीषी रसखान का जन्म करीब सन् 1558 ई. में हुआ। उनका उर इष्टदेव कृष्ण के प्रति भक्ति-भावना से ओत-प्रोत था। उनके द्वारा रचित ग्रंथद्वय 'सुजान रसखान' और 'प्रेमवाटिका' कवि की मार्के की भक्ति भावना और काव्य-कुशलता का साक्षात् प्रतीक है। उनकी कृतियों में भक्ति, रसराज तथा वात्सल्य रस की त्रिपुटी है।

वैसे, प्रभु परमपिता परमेश्वर तो सर्वशक्तिमान हैं, जो प्रत्येक को कुछ देने या न देने की कूबत रखते हैं। प्रणय भाव की चरम सीमा, आसरा तथा आलंबन हैं, इसलिए भगवद भक्ति की उपासना के लिए राग-तत्व को ही वल्लभाचार्य और विट्ठलाचार्य ने सामने रखा और रसखान जैसे उसके अनुयायी कृष्णभक्त कवि इसी को लेकर चले।

आत्मीयता के गौरीशंकर पर पहुंचे रसखान, सर्वशक्तिमान और योग के महानायक कृष्ण के परमभक्त थे। कान्हाभक्ति का विचित्र रसास्वादन करके हिंदी वाङ्मय में उन्होंने दरअसल भक्ति रस की धारा ही बहा दी। कान्हा का जो प्राकट्य है, वह नर को अपने नारायण रूप में जागृत करने का प्राकट्य है। गोपाल की जिंदगी में न पुकार है न आवाज है। वह नाचते हैं तो सरासर नाचते हैं, हंसते हैं तो सरासर हंसते हैं। श्रीकृष्ण जिस समय जो करते हैं सरासर करते हैं। इस अप्रतिम अवतार ने जिंदगी को पूर्णता की ओर ले जाने के लिए ही समस्त लीलाएं की।

जनता का संवेदन जनता की भाषा में लिखने वाले अपार जनप्रिय कवि प्रेम और भक्ति को समर्पित सरस गायक रसखान, जो हिंदू-मुस्लिम ऐक्य के साक्षात प्रतीक हैं। इस्लाम धर्मावलंबी होने के बावजूद, प्रत्येक दिन पांचों वक्त का नमाज पढ़ने के बावजूद उनके पवित्र बदन से सतत् कृष्ण की रट ही निकलती रहती थी। एक आस्थावान मुस्लिम की तमाम जिंदगी जीते हुए भी कृष्ण के प्रति अप्रतिम भक्ति, श्रद्धा, सहज आसक्ति, आत्मीयता और उत्सर्ग की जो भावना रसखान में है वह अन्यत्र विरल है।

अगर ग्वाल बने तो गोपाल के खेलों में भाग ले, गाय बने तो गोचरण खेल में भाग

ले, पाषाण बने तो गोवर्धन का हिस्सा बने, यों जिंदगी उनकी उपकृत हो जाएगी, इस सुंदरतम भाव की अभिव्यक्ति, को अनन्य कृष्णभक्त रसखान ने बड़ी कुशलता के साथ किया है।

''कवि भक्ति तो मुख्यतः लीलाभक्ति है। रसखान कृष्ण के साथ नैकट्य स्थापित कर उनकी विचित्र व विशिष्ट लीलाओं में भाग लेने में ही जिंदगी की सफलता मानते हैं। वीणा पुस्तक धारिणि के वात्सल्य का वरप्रसाद प्राप्त महाकवि रसखान की कविता असल में कृष्णभक्तों का अंतःस्थल छूने वाली है, वैसे भक्त-जन को देवता की प्रत्येक चीज बिल्कुल ही प्रियंकर होती है। प्रभु की लीला स्थली, प्रकृति आदि उन्हें वास्तव में पहले से भी बेहद प्रियंकर लगते हैं। कृष्णभक्तों के वास्ते तो ब्रज, वृंदावन, गोकुल, तरु, तृण, पौधे, लताएं इत्यादि प्राण से भी ज्यादा जान पड़ते हैं। 'लहरी' शीर्षक के अंतर्गत संकलित 'सुजान रसखान' से एक और रमणीय रचना का आस्वादन कीजिए–

''या लकुटी अरु कामरिया पर,
रात तिहूं पुर को तजि डारौं।
आठहुं सिद्धि नवो निधि को सुख,
नंद की गाय चराइ बिसारौं।।
रसखानि कबौं इन आंखिन सौं
ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक हौं कलधौत के धाम
करील के कुंजन ऊपर बारौं।।''

ज्ञान, ध्यान, तप, विरक्ति, भक्ति आदि भगवत प्राप्ति के साधनों में सुलभ पद भक्ति को ही कहा गया है। प्रभु अपने भक्तों के कितने निकट आते हैं, कितनी आम-लीलाएं करते हैं, यही प्रस्तुत सवैये में अभिराम ढंग से अभिव्यक्त है। आखिरी पंक्ति के द्वारा कृष्ण लीला का नितांत चित्ताकर्षक दृश्य ही काव्यमनीषी ने खड़ा किया। ब्रजभाषा का जो चलतापन रसखान की कविता में है वह अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। प्रस्तुत पद्य में अनुप्रास अलंकार की जो प्रभा है वह शत-प्रतिशत प्रशंसनीय ही है।

राग से भरित बावन देदीप्यमान दोहे वाली 'प्रेमवाटिका' नामक संकलन में रसखान ने ठीक ही जताया है कि ''मैं राज परिवार से संबद्ध हूं।'' भक्तिकाल के जिन कवियों में हिंदी साहित्य को हिरण्मय योगदान दिए, उनमें महाकवि सूरदास और भक्त मीराबाई के उपरांत रसखान ही सब से अधिक प्रतिष्ठित हैं। हमारी सभ्यता की चेतना में शताब्दियों से समाये हुए महानायक भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त महाकवि रसखान के लिए आधुनिक युग के प्रवर्तक भारतेंदु हरिश्चंद्र ने यह पद लिखा–

''इन मुसलमान हरिजनन पै,
कोटिन हिंदू वारिये!''

प्रेम और भक्ति को सरासर समर्पित मोर

पंखी बुद्धि के हस्ताक्षर रसखान हिंदू-मुस्लिम एकता के साक्षात् प्रतीक हैं। उनके दोहों, कवित्तों तथा सवैयों में जो स्वाभाविकता है, जो हृदयविदीर्ण करने वाली मुलायमियत व तीव्रता का मिलाप है, उसका उदाहरण और कहीं मिलेगा क्या? अक्षरों की खूबसूरती शब्दों की जादुई शक्ति और भाषाभंगिमा में किस प्रकार रसखान निजी स्वत्व या अस्तित्व प्राप्त करते हैं, यह रेखांकित करते दोहाद्वय नीचे उद्धृत किए गए हैं—

''बिमल ससल रसखान मिलि,
भई सकल रसखान।
सोई नव रसखान को,
चित चातक रसखान।।''

''कहा करै रसखान को,
कोऊ चुगुल लबार।
जो पै राखनहार है,
माखन चाखनहार।।''

भक्ति रस से भरपूर रसखान की रसवंत कविताएं 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्' का अनर्घ पारितोषिक वाचकों को प्रदान करके उनके चित्तानुरंजन करने में सरासर सक्षम है। परमपिता परमेश्वर रासबिहारी के रूप-रंग, पहनावा, किस्म-किस्म की अनोखी चेष्टाएं इत्यादि तमाम भक्तजनों को हियरारी लगते हैं, तभी तो भक्ति करने वाला प्रत्येक व्यक्ति मालिक की भांति बनावट और भेष उपार्जित करके प्रस्तुत चेष्टाओं की अनुकृति करता है, जो लीलाभक्ति का ही अंग है। आप उसका आस्वादन करें, कोई गोपालिका कान्हा का अनुकरण किस प्रकार करने की ख्वाहिश रखती है—

''मोर-पंख सिर ऊपर राखिहौं,
गुंज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढ पितंबर ले लकुटी बन,
गोधन ग्वारिन रंग फिरौंगी।
भावतो वोहि मेरे रसखानि,
सो तेरे कहे सब स्वांग भरौंगी।
या मुरली मुरलीधर की,
अधरान धरी अधरान धरौंगी।।''

रसनिधि श्रीकृष्ण की भांति, शीश पर मयूर पंख का मुकुट पहन कर, गर्दन में गुंजन का हार पहन कर, बांह में लठिया लेकर और वन में गायों तथा ग्वालिनों के संग सैर करने की अभिलाषा है हमारी। रसखान की कृष्ण-भक्ति, वेणु-भक्ति, ब्रज-भक्ति, वृंदावन-भक्ति, प्रकृति-प्रेम, परमात्मा-प्रेम, माया-ममता... हां सकल सरबस से कृतार्थ 'सुजान रसखान' और 'प्रेमवाटिका' सच कहूं तो भारतीय भक्ति साहित्य के सनातन विस्मय हैं।

''सूते सूकरयुवति, सुतशमति दुर्भगम् झटिति;
करिणी चिरेण सूते, सकलमहीपाल लालितम्
कलभम्।''

इस वाक्य को चरितार्थ करने वाले प्रणयन ही हैं रसखान कृत दोनों पुस्तकें।

कृष्ण-कन्हैया व ब्रज-लीलाओं को धार्मिक शक्ल देने वाले, छछिया भरी छाछ पर वेणुगोपाल कृष्ण को नचाने वाले, करील-कुंजों पर अनगिन कंचनधाम उत्सर्ग करने वाले, राष्ट्रभाषा के मर्मज्ञ और कृष्ण भक्ति शाखा के मार्के का स्तंभ रसखान मोर-मुकुटधारी माधव की याद करते हुए मर्त्यलोक को अलविदा कहकर सन् 1628 ई. में सदा सर्वदा के लिए सुरलोक चले गए। रसखान कृत पवित्र ग्रंथ द्वय आज भी जन-जन के कांतिदायक कंठहार हैं।

संदर्भ–

1. रामचंद्र शुक्ल संचय—आचार्य रामचंद्र शुक्ल—साहित्य अकादेमी।
2. संक्षिप्त ऑक्सफोर्ड—हिंदी साहित्य परिचायक—गंगाराम गर्ग।
3. प्राचीन काव्य संग्रह और काव्य कुसुम—दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास।
4. प्रबंध सागर—यज्ञदत्त शर्मा, आत्माराम एंड संस, दिल्ली।
5. सूक्ति सागर—रमाशंकर गुप्त, यू.पी. हिंदी संस्थान, लखनऊ।
6. मौखिक परीक्षा पथ प्रदर्शिका—जयाकिशन प्रसाद खंडेलवाल।

इंदीवरम, मायनाट, कालिकट-673008

रसखान की काव्य कला

प्रो. जोहरा अफजल

कई पुरस्कारों से सम्मानित प्रो. जोहरा अफजल की सात पुस्तकें और तीस शोध लेख प्रकाशित हो चुके हैं। कई सेमिनारों में हिस्सेदारी।

मध्ययुगीन हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाव्य का कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण स्थान है। कई ऐसे विशिष्ट कारण हैं, जो इस काव्य को व्यापक आयाम प्रदान करते हैं। उन कारणों में एक उल्लेखनीय विशेष कारण है, मुस्लिम कवियों द्वारा ब्रजभाषा, अवधी, बुंदेलखंडी, भोजपुरी आदि लोक-भाषाओं में काव्य प्रणयन। इन मुस्लिम भक्त कवियों ने अपने इष्टदेव के प्रति अपनी आस्थापूर्ण भक्ति का सहजभाव से प्रदर्शन किया है। मजहब, संप्रदाय या पंथ इनके भक्तिमार्ग में कभी रोड़ा नहीं बना। निर्गुण और सगुण भाव से भक्तिमार्ग का अवलंबन करने वाले इन कवियों ने कभी संकीर्ण बुद्धि से ईश्वराधना नहीं की। इनकी भक्तिपरक रचनाओं में हिंदुओं की पौराणिक कथाओं का सम्मिश्रण पाकर आश्चर्यचकित होने की आवश्यकता नहीं है। समन्वय भावना से इन मुस्लिम कवियों का काव्य ओत-प्रोत रहा, जिसके कारण इनकी रचनाओं ने व्यापकता प्राप्त की। उन्होंने भारतीय जनमानस में रमे राम और कृष्ण जैसे अवतारी पुरुषों को समान रूप से अपनी सृजनशीलता का आधार बनाया। उनकी दृष्टि में भगवान की भक्ति किसी मजहबी किताब में कैद नहीं थी। अतः धार्मिक प्रपंच से दूर रहकर इन कवियों ने अपनी आस्था, श्रद्धा और पूज्य बुद्धि से भक्तिभाव की स्वतंत्र रूप से रचना की। यही सब गुण हमें रसखान के काव्य में दृष्टिगत होते हैं।

रसखान स्वच्छंद कवि थे। उन्होंने किसी भी धार्मिक मत-मतांतर में बंधकर काव्य नहीं रचा, उन्हें सांप्रदायिक परिवेश स्वीकार नहीं था। उनकी धर्मोपासना उनकी मौलिक सृष्टि है। उनका धाम वर्णन उनके धामी (कृष्ण) से भी बढ़कर है उदाहरणतः उनके द्वारा रचित यह निम्नलिखित सवैया—

''या लकुटि अरु कामरिया पर
राज तिहूं पुर को तजि डारौ।
आठहु सिद्धि नवो निधि को सुख
नंद की गाय चराय बिसारौ।।
रसखानि कबौ इन आंखिन ते
ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौ।
कोटि किहू कल धौत के धाम
करील के कुंजन ऊपर वारौ।।''

(रसखान व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व)

इस धाम वर्णन में उनकी भौतिक उद्‌भावना का परिचय मिलता है। वे करोड़ों स्वर्ण महलों को वृंदावन के करील कुंजों पर न्योछावर करते हैं। धाम की उपासना करते समय वे स्वर्ग की श्री-शोभा को भी भुला देते हैं। नंद बाबा की गायें चराने के समक्ष सब सिद्धियों और निधियों के सुख को बेकार बताते हैं।

इनका काव्य कृष्णभक्ति किंवा ब्रजभक्ति का सरस काव्य है। इनकी कविता अलंकृत है, अलंकरण शोभा विधायक है। सहज सज्जा, अकृत्रिम विदग्धता और भाव प्रतीति, मनोरम बिंब-विधान, रमणीय भाव विदग्धता और प्रांजल भाषा का चारुत्व, शब्द सौष्ठव सर्वत्र पाया जाता है। रसखान के काव्य को पढ़कर ऐसा लगता है कि इस कवि का भाव और भाषा पर नैसर्गिक अधिकार है। भक्ति के आवेश में जो उमंग मन में उठती है, उसके लिए मनोरम भाव और प्रासादिक भाषा का प्रवाह स्वतः स्फूर्त होकर कविता का रूप धारण कर लेता है। रसखान ने 'प्रेमवाटिका' में अपना संक्षिप्त परिचय देते हुए लिखा है—

''तोरि मानिनि ते हियो,
फोरी मानिनि मान।
प्रेम देव की छविहि लखि
भये किया रसखान।।''

(वही पृ.7)

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास में रसखान के विषय में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं—''दिल्ली के एक पठान सरदार थे। इन्होंने 'प्रेमवाटिका' में अपने को शाही वंश का कहा है। संभव है पठान बादशाही की कुल परंपरा से इनका संबंध रहा हो। ये बड़े भारी कृष्णभक्त और गोस्वामी विट्ठलनाथजी के बड़े कृपापात्र शिष्य थे। इनका रचनाकाल सं. 1640 के उपरांत ही माना जा सकता है क्योंकि गोस्वामी विट्ठलनाथजी का गोलोकवास सं. 1643 में हुआ था।'' (हिंदी साहित्य का इतिहास पृ. 176)

रसखान की काव्य प्रेरणा के विषय में 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार यह कथा प्रसिद्ध है कि वे एक बनिए के लड़के पर आसक्त थे। लोगों को इन्होंने कहते सुना कि जैसा रसखान का प्रेम उस बनिए के लड़के पर है, वैसा प्रेम भगवान में होना चाहिए। रसखान यही बात सुनकर विरक्त हो विट्ठलनाथजी

के पास गए और उनसे दीक्षित हुए।

उनसे संबंधित विभिन्न ग्रंथों तथा आलोचनात्मक कृतियों के गहन अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि उनकी प्रामाणिक रचनाएं केवल दो ही है—''सुजान-रसखान और प्रेमवाटिका''। इन्हीं ग्रंथों के आधार पर रसखान के काव्य का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। यह तथ्य सर्वविदित है कि रसखान के काव्य का वर्णन विषय कृष्ण-प्रेम अथवा उनकी लीलाएं है। इन लीलाओं में—बाल-लीला, गोचरण-लीला, कुंज-लीला, रास-लीला, पनघट-लीला, दान-लीला, मुरली वादन, होली-वर्णन, बसंत-वर्णन, दीपावली-वर्णन, कालियादमन, कुवलया-वध, भ्रमरगीत आदि का सुंदर तथा अलौकिक चित्रण देखने को मिलता है।

रसखान की काव्य-यात्रा में कोई पड़ाव नहीं है, कही विश्राम लेने को मन नहीं करता क्योंकि एक तो यात्रा ऐसी है जिसमें एक क्षण के लिए विस्वलता कम नहीं होती और दूसरे यह कि ऐसे चपल के साथ प्रीति की यात्रा है, जो बार-बार झांसा देता रहता है, हाथ में आकर फिर निकल जाता है। अपनी काव्य यात्रा का संकल्प लेते समय इब्राहिम मियां ने प्रेम देव की छवि छककर अपना नाम रसखान रख लिया और रसखान का नाम हिंदी साहित्य में एक सार्थक नाम बन गया। रसखान के लौकिक प्रेम के अलौकिक प्रेम में परिवर्तित होने की कथा प्रसिद्ध है। उनका काव्य वियोग व्यथा की मंजूरी है। उनकी भाषा ब्रज के उस खरीक की भाषा है, जो श्रीकृष्ण के हृदय में खटकता रहता है, क्योंकि यह भाषा छल-कपट रहित सीधी भाषा है। उस भाषा में संबोधन करने वाला और संबोधित होने वाला व्यक्ति दो नहीं एक ही है, वही अपने आप गोपी बनता है, वही अपने आप कृष्ण बनता है, अपने आप उलाहना देता है, अपने आप उत्तर देता है, कभी अकेला हो जाता है तो सोचता है सब ऐश्वर्य झूठ है। यह समस्त राजपाठ व्यर्थ है—

''ग्वालन संग जे वन ऐबो सु गाइन संग,
हेरि तान गइबो हा हा नैन फरकत हैं।
ह्यां के गजमोती भाल बारौं गुंज मालन पै,
कुंज सुधि आए हाए प्रान धरकत हैं।
गोनर को गारो सुतौ मोहि लगै प्यारौ,
कहा भयौ महल सोने की जटित मरकत है।
मंदिर ते ऊंचे यह मंदिर है द्वारिका के,
ब्रज के खिरक मेरे हिए खटकत है।''

(रसखान रचनावली पृ. 121)

रसखान स्वच्छंद भावधारा के कवि हैं। उनके काव्य में आवेग की बराबर सृष्टि हुई है। भावावेश का सहज उच्छलन, गहरी विरहनुभूति, आत्माभिव्यंजक-वक्रोक्तियां आदि अन्यान्य ऐसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व उनकी कविता में है, जो उन्हें सहज, स्वच्छंद और भावुक कवि प्रमाणित करते हैं। उनकी कविता आत्मानुभूति का प्रतिफलन है। शास्त्रीय नियमों से अपरिचित रसखान ने अपने अनुभूति विधान के लिए स्वानुकूल मार्ग बनाया है। उनके विशुद्ध प्रेम की अनुभूति किंतु अनावृत अभिव्यक्ति सुजान रसखान में हुई है। भावों और वर्णनमत चेष्टाओं में वे प्रेम के औदात्य को कभी नष्ट नहीं होने देते। भाव अथवा शिल्पगत कृत्रिमता से उनके काव्य का दूर का संबंध भी नहीं है। प्रेम और रति कामना-सूचक हाव-भाव, मुद्राओं और चेष्टाओं की तन्मयतापूर्ण अकृत्रिम और सजीव अभिव्यक्ति ने उनके काव्य को अत्यंत मर्मस्पर्शी बना दिया है।

रसखान सौंदर्य के सफल चितेरे हैं। उनका सौंदर्य चित्रण स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति का सौंदर्य है। उनका काव्य अनुभूतिमय आत्मस्पर्श का काव्य है। उनकी अनुभूति अभिधा और कभी-कभी लक्षणा के सहारे भाव-आवर्तों द्वारा संचरित होती है। ''यद्यपि सौंदर्य-शास्त्रियों ने सौंदर्य को गोपनशील माना है, किंतु रसखान और घनानंद का काव्य इसका अपवाद है। यहां कुछ भी गोपन नहीं। सौंदर्य विधायनी कल्पनाओं से युक्त भाव-चित्र इन कवियों की रचनाओं से बिखरे पड़े हैं। रसखान का काव्य तो स्वतः स्फूर्त काव्य है। उनकी अनुभूतियां अनिर्वचनीय आद्रेक करती है।'' (रसखान रचनावली)

रसखान ने अपनी रचनाओं में सहज स्वाभाविक भाषा को अपनाया, अलंकारों की बात की जाए तो उन्हें 'अनुप्रास' का प्रेमी ठहराया जा सकता है। उन्होंने ध्वनि योजना का भी अच्छा प्रयोग किया है। उनकी भाषा माधुर्य तथा प्रसादगुणयुक्त शुद्ध ब्रजभाषा है। उनका शब्दचयन प्रसंगानुकूल तथा भावानुकूल है। उन्होंने लोक प्रचलित मुहावरों का भी सुंदर प्रयोग किया है। इससे उनका भाषा पर विशेषाधिकार सूचित होता है। सजीव और प्रचलित मुहावरों से अलंकृत भाषा विशेष शक्तिमयी हो गई है—

''जा रसखानि बिलोकत ही
सहसा ढरि रॉग सो आंग ढ़रयो है।''
''वां दिन सौं कुछु टौना सौ कै
रसखानि हियै में समाई गयौ है।''
''रसखानि करयौ घर भी हिय में
निसिबासर एक पलौ निकसै न।''

मुहावरों के सफल एवं स्वाभाविक प्रयोग के कारण उनके काव्य में अर्थ व्यंजना के साथ-साथ भाव तथा भाषा सौंदर्य में भी अभिवृद्धि हुई है।

रसखान की काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसे समझने के लिए प्रयास नहीं करना पड़ता। कोई भी पद पढ़ते या सुनते ही उसका भावार्थ सहज ही स्पष्ट हो जाता है। यही कारण है कि वे इतने लोकप्रिय हुए। आज भी कृष्णभक्त कवि उनके द्वारा रचित काव्य मुक्त कंठ से गाते हैं।

सेंट्रल कश्मीर विश्वविद्यालय, ट्रांजिट कैंपस, सोनवार, जी.वी. पंत अस्पताल, श्रीनगर–190004

रसखान के प्रेम की अवधारणा

राजेंद्र परदेसी

वरिष्ठ लेखक राजेंद्र परदेसी पिछले तीन दशक से लेखन में सक्रिय। कविता, कहानी सहित विभिन्न विधाओं में लेखन। आठ पुस्तकें प्रकाशित। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित। संप्रति : इंजीनियर।

मनुष्य की दो मौलिक प्रवृत्तियां हैं—स्वार्थ और परार्थ, पहली है—व्यक्तिगत, आत्मव्यंजक और परिग्रही, दूसरी है—सामाजिक, आत्मत्यागी और लोकसंग्रही। ये प्रवृत्तियां दो स्तरों पर आधारित हैं—शारीरिक और मानसिक अर्थात् वैचारिक, हमारे मनीषियों ने इन प्रवृत्तियों को ही तीन नामों से अभीहित किया है—वित्तेषणा, लोकेषणा और कामेषणा।

वित्तेषणा शारीरिक स्तर पर आहारेषणा या भूख है और मानसिक स्तर पर परिग्रहेच्छा है। लोकेषणा शारीरिक स्तर पर यूथचारि और मानसिक स्तर पर धर्म और नैतिकता है। इसी तरह कामेषणा शारीरिक स्तर पर यौवन संबंध, संतानोत्पत्ति एवं कामना है और मानसिक स्तर पर इंद्रिय-लभ्य-आनंद-भोग है। इन तीनों प्रवृत्तियों के स्वरूप रागात्मिक हैं, क्योंकि संपत्ति एवं स्त्री-पुरुष के प्रति राग-प्रेम, करुणा, सेवा, सहानुभूति, हर्ष, शोक, घृणा, क्रोध, ईर्ष्या, संघर्ष आदि के भाव उत्पन्न करते हैं। अतएव प्रेम एक कामेषणाजनक रागात्मिक प्रवृत्ति है। इसकी उत्पत्ति के संबंध में डॉ. बच्चन सिंह ने कहा है—''प्रेम वह अनुकूल वंदनीय मनोवृत्ति है, जो किसी अन्य जीव या पदार्थ के सौंदर्य, गुण, शक्ति, सामीप्य आदि के कारण उत्पन्न होती है।''

जहां तक प्रणयानुभूति का प्रश्न है, प्रेम दो प्रकार का होता है—पार्थिव प्रेम या लौकिक और अपार्थिव या अलौकिक। पार्थिव प्रेम को ही प्राकृत प्रेम और अपार्थिव प्रेम को सात्विक प्रेम कहते हैं। पार्थिव प्रेम शुद्ध, नैसर्गिक, अनाध्यात्मिक और लौकिक है। लौकिक आलंबन के कारण प्राकृत प्रेम में वासनात्मक प्रणय की अभिव्यक्ति रहती है। इसमें प्रिय और प्रेमी का सहज आकर्षण मिलता है। अतः शारीरिक भोग की प्रबल इच्छा से प्रणय निवेदन किया जाता है। इसके विपरीत अपार्थिव प्रेम पूर्ण निर्दोष, आध्यात्मिक और यौन-भाव से मुक्त होता है। इसमें प्रिय और प्रेमी के शरीर, मन और आत्मा का पूर्ण तादात्म्य स्थापित होता है। अतः यह सत्यम्, शिवम् और सुंदरम् है।

हिंदी का पूर्व मध्यकाल जिसमें भक्ति और प्रेम के काव्यों की रचनाएं हुई, भक्तिकाल के नाम से अभिहित है। इस काल में काव्य की तीन धाराएं प्रवाहमान थीं—भक्तिधारा, रीतिधारा और स्वच्छंद वृत्तिधारा। स्वच्छंद वृत्तिधारा के कवियों ने स्वच्छंद वृत्तिधारा की सिद्धि के लिए काव्य को एक साधना माना। ये काव्य-रचना के लिए विशेष साधना नहीं करते थे। प्रेमवेग या भावावेग में विभोर होने पर ही उनमें काव्य-प्रवाह स्वतः प्रवाहित हो जाता था, काव्यों या रीतियों की कोई चिंता नहीं होती थी। इनके लिए काव्य कोई साध्य नहीं था। भक्ति की अभिव्यक्ति उनका अभिप्रेत नहीं था। ये कोई प्रचार भी नहीं चाहते थे। ये केवल अपनी अभिव्यक्ति को ही पसंद करते थे। अतः इन कवियों को स्वच्छंदतावादी कहा गया। स्वच्छंदतावादी कवियों में तीन प्रमुख हैं—रसखान, बोधा और घनानंद।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार कविवर रसखान स्वच्छंदवादी काव्यधारा के सबसे प्राचीन कवि हैं। ये प्रेमोभंग के गायक हैं। इनकी प्रेम-प्रक्रिया दोनों प्रकार की है—पार्थिव और अपार्थिव। किंतु इनके प्रेम का मार्ग ऋजु है, प्रत्येक व्यक्ति इसका अनुगमन नहीं कर सकता है। यौवन काल के प्रारंभिक जीवन में तथाकथित वणिक-तनय और खत्रानी पर आसक्त होने वाले रसखान का प्रेम शरीरी था—एकदम पार्थिव। इन्हीं तथ्यों के आधार पर देवेंद्र प्रताप उपाध्याय ने इनके संबंध में दो बातों को उजागर किया हैं। प्रथम यह कि ये विवाहित थे और द्वितीय कि इनके अंदर सौंदर्य के प्रति जिज्ञासा और प्रेम था। प्रथम बात की पुष्टि इनके दोहे की एक पंक्ति—''तोरि मानिनी ते हिए फोरि मोहिनी मान।'' इससे स्पष्ट होता है कि किसी छोरे या छोरी से प्रेम करने के कारण इनकी पत्नी सदैव मानिनी बनी रहती थी। किंतु दूसरी बात की पुष्टि भी होती है, ये अविवाहित और पूर्णतः स्वच्छंद थे। जो भी हो, रसखान सौंदर्योपासक थे, परंतु इनका प्रेम सौंदर्य के आलंबन साहचर्य से नहीं, वरन् शुद्ध सौंदर्य के प्रति था। जो मासंल नहीं, सात्विक था। एक बार सौंदर्य राशि संपन्न राधा-कृष्ण के विग्रह का प्रत्यक्ष दर्शन इनको हुआ, तो राधा-कृष्ण इनकी प्रेमवाटिका के माली-मालिन बन गए—

''प्रेम अयनि श्री राधिका,
प्रेम बरन नंद-नंद

प्रेमवाटिका के दोऊ,
माली-मालिन द्वंद।।''
—प्रेमवाटिका

राधा-कृष्ण के अलौकिक सौंदर्य का दर्शन करने के उपरांत कविवर रसखान के अंतस की वासना काफूर हो गई और सात्विक प्रेम का स्वरूप निखर आया। जिससे भक्ति का ऐसा स्फुरण हुआ, जिसका संबल लेकर वे प्रेम का विशद परिचित्रण करने लगे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'प्रेमवाटिका' के दोहों में प्रेम के स्वरूप और उच्चतम आदर्शों की प्रतिष्ठापना की है। इसके साथ ही प्रेम की पहचान, प्रेम का प्रभाव, प्रेम प्राप्ति के साधन और प्रेम की सर्वोच्चता का भी निरूपण किया और बतलाया कि सच्चा प्रेम गुण, रूप, यौवन, धन आदि से निरपेक्ष होता है। इसमें स्वार्थ की गंध का कोई स्थान नहीं होता और न कामना का कोई अवकाश। वह तो मन की ऐसी संवेदनात्मक अवस्था है, जिसमें घटाव-बढ़ाव होता ही नहीं—

''बिनु गुण जोबन रूप धन,
बिनु स्वारथ हित जानि।
शुद्ध कामना ते रहित,
प्रेम सकल रसखानि।।''
—प्रेमवाटिका

प्रेम को कारण और स्वार्थ से निरपेक्ष बतलाते हुए उन्होंने कहा है—

''इक अंगी बिनु कारन ही,
इक रस सदा समान।
गनै प्रियहि सर्वस्य,
सोई प्रेम प्रमान।।''
—प्रेमवाटिका

इसी प्रकार उनकी अभिधारणा है, कि प्रेमी प्रेम प्राप्त कर बैकुंठ और ईश्वर की इच्छा न करे वही सच्चा प्रेम शुभ और अलौकिक है—

''जहि पाए बैकुंठ अरु
हरिहू की नहीं चाह।
सोई अलौकिक शुद्ध शुभ
शुभ सरस सुप्रेम कहाहि।।''
—प्रेमवाटिका

प्रेम की दशा को दरसाते हुए वे कहते हैं—प्रेम दशा की अंतिम परिणति वह नहीं है जिसमें दो मन मिलते हैं, वरन् दो शरीरों का भी मिलन अत्यावश्यक है। तन-मन जब एकाकार हो जाएं, एक दूसरे को आत्मसात कर लें, तभी प्रेम के सर्वोच्च शिखर का अनावरण होता है—

''दो मन इक होते सुन्यो,
पै वह प्रेम न आहि।
होहि जबै छै तन इकहू,
सोई प्रेम कहाहि।।''
—प्रेमवाटिका

एक शरीरधारी के लिए शरीर से बढ़कर संसार में कुछ भी नहीं, परंतु सात्विक प्रेम प्राप्ति के लिए अपने तन की ममता का त्याग करना अत्यावश्यक हो जाता है—

''जग में सबतें अधिक अति
ममता तनहि लखाय।
पै या तन हूं तें अधिक,
प्यारी प्रेम कहाय।।''
—प्रेमवाटिका

अलौकिक प्रेम दांपत्य-सुख, विषय-रस, पूजा, निष्ठा, ध्यान से परे है, बिना इनके जाने कुछ भी जाना नहीं जाता। अतः शुद्ध प्रेम का अनुभव न होना ही अज्ञानता है और उसका अनुभव ही सर्वज्ञता है—

''जेहि बिनु जाने कछुहि नहीं,
जानी जान विशेष।
सोइ प्रेम जेहि जानि कै,
रहि न जात कछु शेष।।''
—प्रेमवाटिका

प्रेम-मार्ग को कविवर रसखान ने कमलतंतु से भी कोमल और खड़ग-धार से भी दुर्गम, अत्यंत सीधा और अत्यंत टेढ़ा तथा अटपटा भी बताया है—

कमल तंतु से छीन अरु,
कठिन खड़ग की धार।
अति सुधो टेढ़ो बहुरि,
प्रेम पंथ अनिवार।।''
—प्रेमवाटिका

कविवर रसखान ने कहा है कि हरि भी प्रेम के वश में हैं। अतः प्रेम उनसे भी ऊंचा है। हरि और प्रेम में कोई अंतर नहीं जैसे सूरज और धूप में—

''हरि प्रेम हरि को रूप है,
त्यों हरि प्रेम सरूप।
एक होई द्वै पौ लसै,
ज्यों सूरज और धूप।।''
—प्रेमवाटिका

वेद सब धर्मों का मूल है, सभी श्रुतियां और स्मृतियां बताती हैं, परंतु प्रेम धर्म से बड़ा है, अति अनिवार्य है—

''वेद मूल सब धर्म,
यह कहैं सबैं श्रुति सार।
परम धर्म है ताहुते,
प्रेम एक अनिवार।।''
—प्रेमवाटिका

कविवर रसखान की प्रेम अभिव्यंजना का मुख्यतः प्रतिपाद्य पक्ष है—प्रेम का गूढ़ अंतर्दशाओं का उद्घाटन, प्रेम की भावभूमियों एवं प्रेम जगत के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्षों का विविध परिचित्रण के लिए यह सवैया दृष्टव्य है—

''वंशी बजावत आनि कढ़यो,
सो गली में अली में कछु टोना सो डारै,
हेरि चितै, तिरछी करि दृष्टि,
चलौ गयो मोहन मूठी सो मारै।
ताही धरी सो परी धरी सेज पै,
प्यारी न बोलता प्रान हूं बारै,
राधिका जी हैं तो जी हैं सबै,
न तु पीहैं हलाहल नंद कै द्वारै।।''
—सुजान रसखान

उपरोक्त सवैया में कृष्ण के प्रेम से पीड़ित राधा के मनोदशा का वर्णन है। जब एक

समय राधा की गली से वंशी बजाते हुए वे निकल जाते हैं।

प्रेमियों की ऐसी प्रवृत्ति है कि जिससे वह प्रेम करते हैं, उससे संबंधित उसकी सारी वस्तुओं से भी वे प्रेम करने लग जाते हैं। फलतः कृष्ण के प्रेम में निमग्न स्वयं रसखान का मन करता है कि पुनर्जन्म में यदि मनुष्य बनूं तो ब्रज या गोकुल के गांवों में बसूं, यदि पशु बनूं तो नंद की धेनुओं के झुंड में चरूं, यदि पत्थर बनूं तो उसी पहाड़ का जिसको कृष्ण ने धारण किया और यदि पक्षी बनूं तो कालिंदी-कूल के कदंब की डालियों पर ही बसेरा बनाऊं—

''मानुष हौं तो वही रसखानि
बसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पशु हौं तो कहा बस मेरो,
चरैं नित नंद की धेनु मंझारन।
पाहन हों तो वही गिरि को जौ
धरयो कर छत्र पुरंदर-धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं,
मिलि कालिंदी-कूल कदंब की डारन।।''

ऐसी ही स्थिति राधा के प्रेम में निमग्न, कृष्ण की होती है। जब राधा से उनका वियोग होता है—

''नाम समेतं कृत सङ्केतं
वादयते मृदुवेणुम।
वहु मनुते तनुते तनु सङ्गत
पवन चलितमाप रेणुम।।
—श्रीगीतगोविंदम्

श्रीकृष्ण की मुरली राधा का नाम लेकर बज रही है और राधा के शरीर से स्पर्शित धूलि जो पवन द्वारा उड़कर उनके पास पहुंच रही है। उसके स्पर्श से अपने को धन्य समझ रहे हैं।

कहने का अर्थ है कि कविवर रसखान की धारणा है कि प्रेम न तो काम-क्रीड़ा है और न तो कोई परिपाटी का कलात्मक चित्रण। इनके प्रत्येक सांस और प्रत्येक धड़कन में प्रेम की मधुर टीस और असह्य वेदना समाहित रहती है। इनका प्रेम कृष्णभक्ति संपृक्त एक भक्ति पथ है, जिससे होकर गोपियां छछिया भर छाछ पै कृष्ण को नचाया करती थीं—

''सेस, गनेस, महेस, दिनेस,
सुरेसहु जाहि निरंतर गावै।
ताहि अहीर की छोहरिया,
छछिया भरि छाछ पर नाच नचावै।।''
—सुजान रसखान

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि स्वच्छंद काव्यधारा के प्रख्यात कवि रसखान ने रीतिकालीन कवियों का प्रवृत्तियों से विलग और लोक मर्यादा की सीमा को सुरक्षित करते हुए स्वच्छंद प्रेम की जो सलिला प्रवाहमान की वह इनके त्याग तपश्चर्यामूलक प्रेम संबंधी अवधारणाओं से संपृक्त एक नवीन नैतिक दृष्टि एवं उच्चादर्श प्रतिस्थापित करने में पूर्णतः निर्दोष एवं सफल है।

44, शिव विहार, फरीदी नगर,
लखनऊ-226015

(महावन स्थित रसखान की समाधि)

प्रकृति और कान्हा के सौंदर्य उपासक–रसखान

डॉ. भावना शुक्ल

दो पुस्तकों की लेखिका डॉ. भावना शुक्ल को कई पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। वर्तमान में श्यामाप्रसाद मुखर्जी कॉलेज दिल्ली में व्याख्याता।

रस की खान की संज्ञा से विभूषित कवि रसखान का जन्म हरदोई के निकट 'पिहानी' गांव में हुआ था। इनका मूल नाम सैयद इब्राहिम था और वे गोस्वामी विट्ठलनाथ से दीक्षा प्राप्त कर ब्रज भूमि में जा बसे। 'सुजान रसखान' और 'प्रेमवाटिका' इनकी उपलब्ध कृतियां हैं तथा रसखान रचनावली के नाम से इनकी रचनाओं का संग्रह मिलता है।

रसखान जाति से मुसलमान थे लेकिन इनकी अनुरक्ति केवल कृष्ण के प्रति ही नहीं बल्कि कृष्णभूमि के प्रति थी। इन्होंने अपने काव्य में कृष्ण की रूप-माधुरी, ब्रज-महिमा, राधाकृष्ण की प्रेम लीलाओं का मनोहारी चित्रण किया है। अपने काव्य में प्रेम की आसक्ति, भावविह्वलता, प्रेम की तन्मयता, हर्ष-उल्लास को स्पष्टतः प्रकट करने में वे जितने माहिर थे उतने ही ये भाषा मार्मिकता, शब्द-चयन तथा व्यंजक शैली में भी निपुण थे। इन्होंने अपने काव्य को ब्रजभाषा के सरस और मनोरम प्रयोग से सजाया है। इनके काव्य में कहीं पर भी शब्दाडंबर दृष्टिगत नहीं होता।

रसखान भक्त कवि थे। राधाकृष्ण के प्रति उनका अनन्य प्रेम था। वे प्रकृति में भी अपने प्रभु के दर्शन करते थे। हम कह सकते हैं कि रसखान प्रकृति के प्रेमी थे, उन्होंने प्रकृति का जीवंत चित्रण किया है। काव्य में प्रकृति चित्रण हर काल में मिलता है। वैदिक काव्य से लेकर प्रकृति के दर्शन आधुनिक काव्य तक होते हैं।

काव्य का रमणीयता से अटूट संबंध होता है। चाहे रूप प्रकृति का हो या प्रकृति द्वारा सृजित किसी लौकिक देह का। काव्य और सौंदर्य का परस्पर इतना घनिष्ठ संबंध है कि एक के बिना दूसरा अधूरा लगता है। इस कारण कवि अपने काव्य में रूप की अभिव्यक्ति करता है। मानव अपने हृदय में उस अभिव्यक्ति को अंकित कर खुशी से भर उठता है। रसखान ने अपने काव्य में वृंदावन की उन कुंज गली का वर्णन, कृष्ण-राधा तथा गोपियों का प्रकृति के आधार पर चित्रण किया है। चाहे वो कृष्ण गोपिका मिलन और विरह वर्णन हो, चाहे संयोग और वियोग दोनों पक्ष हों या अपने आराध्य के कोमल सौंदर्य पक्ष का निरूपण उन्होंने अलंकार रूप में प्रकृति को अपनाया है।

भारतीय काव्यशास्त्र में प्रकृति की मान्यता उद्दीपन विभाव के रूप में स्वीकार की गई है। प्रकृति और मानव का संबंध स्थायी होने के कारण व्यक्ति के मन की किसी भी दशा में प्रकृति उसे प्रभावित करती है। चाहे संयोग हो या वियोग दोनों ही पक्ष आश्रय के हृदय में जगे हुए भावों को तीव्रतर कर देते हैं। इसी कारण कवियों ने प्रकृति के उद्दीपन पक्ष को अधिक महत्व दिया है। रसखान का दृष्टिकोण प्रकृति के भिन्न-भिन्न स्वरूपों का चित्रण करना नहीं था। उन्होंने तो कृष्ण के प्रेम में मस्त होकर कृष्ण की लीलाओं का गान किया।

कृष्ण की लीलाएं प्रकृति के रमणीय क्षेत्र से ही पल्लवित हुईं। इसलिए स्वाभाविक रूप से ही कहीं-कहीं प्रकृति ने उद्दीपन का कार्य किया है। कृष्ण के रूप सौंदर्य का वर्णन प्रकृति के माध्यम से और भी ज्यादा प्रभावशाली प्रतीत होता है।

''कैसा मनोहर बानक मोहन
सोहन सुंदर काम ते आली।
जाहि बिलोकत लाज तजी
कुल छूटौ हि नैननि की चल चाली।
अधरा मुसकान तरंग लसै
रसखानि सुहरि महाछबि छाली।
कुंज गली मधि मोहन सोहन
देख्यो सखी वह रूप रसाली।''

यहां पर कुंज गली उद्दीपन विभाव के अंतर्गत है। कृष्ण के समीप होने के कारण जेठ की झुलसा देने वाली धूप भी सुखदाई प्रतीत होती है।

''जेठ की घाम भई सुखधाम
अनंद ही अंग ही समाही।''

कृष्ण से संबंध होने के कारण गोपियां कृष्ण को वन-बाग तड़ागनि कुंज गली के मध्य ही देखकर आनंदित होती हैं।

प्रिय की निकटता के कारण ज्वाला उगलती वस्तुएं भी शीतलता प्रदान करती हैं। कृष्ण का मिलन कृष्ण का संयोग मन को कितना आनंदित और सुखदाई प्रतीत होता है। बसंत ऋतु का सुंदर भाव है—

''चह चही चुहल चहुंकित अलीन की।
लहलही लोनी लता लपटी तमालन पै,
कहकही तापै कोकिला की काकलीन की।
तह तही करि रसखानि के मिलन हेत
बह बही बानि तजि मानस मलीन की।
महमही मंद-मंद मास्त मिलनि तैसी,
गहगही खिलनि गुलाब की कलीन की।''

विरह की अवस्था में प्रकृति के सभी उपकरण वियोगी गोपिका की ज्वाला को और ज्यादा बढ़ाने वाले हैं। फूलों के वन में फूलने से, भौरों के गुंजारने से, बसंत में कोकिल की किलकार सुनकर सबके प्रिय विदेश से भी लौट आते हैं, वे अपने प्रिय से आग्रह करती हैं कि तुम इतने निर्दयी क्यों हो गए हो कि मेरा दर्द मेरी पीड़ा का तनिक भी अनुभव नहीं है। कोयल की कूक सुनकर वियोग की अग्नि और ज्यादा दहकने लगती है। हृदय में हलचल होने लगती है।

''फूलत फूल सबै बन बागन बोलत
भौंर बसंत के आवत।
कोयल की किलकार सुनै
सब कैत विदेसन हो धावत।
हूक सी सालत है हिय में,
जब बैरिन कोयल कूक सुनावत।।''

रसखान की कृष्ण लीलाओं का वर्णन प्रकृति के रमणीय क्षेत्र में हुआ—

''वन बाग तड़ागनि कुंज गली
अंखियां सुख पाहहें देखि दई।
अब गोकुल मोहन विलोकि यैगी
वह गोप सभाग सुभाय रई।
मिलिहै हंसि गाह कबै रसखानि
कबै बालनि प्रेम मई।
वह नील निचोल के घूंघट की
छवि देखवी देखन लाज लई।।''

कवि ने प्रकृति का आलंकारिक रूप प्रस्तुत किया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, अलंकार के रूप में प्रकृति का रमणीय चित्रण किया है। शरीर की उपमा बाग से देते हुए यह भाव है—

''बागन काहे को जाओ पिया
घर बैठे ही बाग लगाय दिखाऊं।
एड़ी अनार सी मोरि रही,
बहियां दोऊ चंपे की डार नवाऊं।
छातिन में रस के निबुवा अरु
घूंघट खोलि कै दाख चखाऊं।
ढांगन के रस के चस के
रति फूलनि की रसखानि लुटाऊं।।''

रसखान ने दामिनी का रूप में प्रयोग कई स्थलों पर किया है। कृष्ण के रवि कुंडल दामिनी के समान दमकते हैं। यहां पीतांबर की तुलना दामिनी की दुति से दी है।

''रसखानि लखें तन पीत पटा
सत दामिनी की दुति लाजहि है।''

प्रकृति के आधार पर रसखान ने उपमेय की सुंदरता को प्रदर्शित कर व्यतिरेक की व्यंजना की है।

''आली लला घन सो अति सुंदर
तंसो लसं पियरो उपरना।।''

दानलीला वर्णन में गोपी के डरने तथा कांपने का वर्णन बड़ा ही चमत्कारपूर्ण और स्वाभाविक प्रतीत होता है। यहां पर रसखान ने बहुत ही बारीकी के साथ इसका निरीक्षण किया है।

''पहले दधि लै गई गोकुल में
चख चारि भय भटनागर पै।
रसखानि करी उनि मैनमई
कहैं दान दै दान खरे अर पै।
नख तै सिख नील निचोल लपेटे
सखी सम भांति कंपें डरपै।
मनौ दामिनी सावन के घन
मैं निकसै नहीं भीतर ही तरपै।।''

उत्प्रेक्षा का सुंदर चित्र—

''सागर को सलिला जिमि धावै
न रोकी रहै कुल को पुल टूट्यो।
मत्त भयौ मन संग फिरै,
रसखानि सरूप सुधारस घूट्यौ।।''

कवि ने अपनी नायिका राधाजी के नख-शिख के वर्णन को प्रधानता नहीं दी बल्कि यह दिखाने का प्रयास किया कि राधाजी के

रूप की सुंदरता इतनी अद्‌भुत, निराली है कि उनसे प्रकृति तक प्रभावित हो रही है। प्रकृति के कई अंग मृग, खंजन, मीन आदि राधा के रूप के समक्ष लजा रहे हैं। नायिका की कमर हार के बोझ से झुकी जा रही है—

''यह जाको लखै मुख चंद समान,
कमान सी भौंह गुमान हरै।
अति दीरध नैन सरोजहु ते मृग,
खंजन मीन की पांति दरै।
रसखानि उरोज निहारत ही मुनि
कौन समाधिन जाहि रहै।
कहनी के नवै कटिहार के कार,
तासों सो कहै सब काम करै।''

रसखान की नायिका कृष्ण के प्रेम में किसी निरीह पंछी की तरह फंसी हुई है। उन्होंने नायिका के सौंदर्य को प्रकट करने की बजाए अधिकतर उसके प्रेम और विरह का ही निरूपण किया है।

''काल्हि भट मुरली धुनि में
रसखानि लियो कहुं नाम हमारो।
ता छिन तैं भई वैरिनी सास
कितौ कियौ झांकत देतिन डारौ।
होत चबाव बलाइ सो आती री
जो भटि आखिन केरिये प्यारो।
बार परी अबहीं ठिठक्यें हियरे
भटक्यौ थियरे पटवारौ।।''

रसखान कृष्ण को रूप का सागर मानते हैं और उनका गोपी रूपी मन उस रूप के सागर में हिलोरें लेता है। कृष्ण रूप तो अनंत है, अपार है, लोकातीत है। कृष्ण के साथ-साथ राधा का रूप भी उन्हें प्रभावित करता है। यौवनालंकार के आधार पर इसका निरूपण करते हुए कहा है—

''आजु संवारति नेकुभटूतन
मंद करी रति की हुति लाजै।
देखत रीझी रहे रसखानिसु,
और कहा विधिना उपराजै।।
आए हैं न्यौतें तरैयन के मनो
संग-पतंग पतंग जुराजै।
ऐसे लसै मुकतागमन में तिल,
तेरे तरौना के तीर बिराजै।।''

राधा के रूप सौंदर्य की चर्चा करते हुए कहते हैं कि राधाजी आज स्वयं को खूब सजा रही हैं। वे अपनी छवि देखकर लजा रही हैं। उनके गालों का तिल ऐसे प्रतीत हो रहा है मानो काम का तीर हो।

रसखान की कल्पना अत्यंत सशक्त एवं संपन्न है। इसी कारण उनकी अभिव्यक्ति में हमें सौंदर्य-विधान की अधिकता चित्रों की अतिशय अनुरंजकता तथा रूपांकन की सहजता मिलती है।

रसखान ने अपने काव्य को प्रकृति के सौंदर्य से सजाया-संवारा है। इसमें आलंकारिक प्रयोग ने काव्य में चार चांद लगा दिए। कवि ने शृंगारिक पक्षों को संयोग और वियोग दोनों के माध्यम से बहुत सुंदरता के साथ प्रस्तुत किया है। इनके काव्य में व्यंजना प्रधान है। इन्होंने प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक पदार्थों का निरूपण किया है। रसखान वास्तव में गुणों की खान हैं।

संदर्भ–

1. रसखान व्यक्तित्व एवं कृतित्व—लेखक माजदा असद।
2. रसखान रचनावली।
3. रसखान रत्नावली।
4. बृहत निबंध साहित्य

डब्ल्यू जेड-21, हरिसिंह पार्क, मुल्तान नगर, पश्चिम विहार, दिल्ली-110063

रसखान : एक विलक्षण व्यक्तित्व

डॉ. शिखा रस्तौगी

मुरादनगर में डिग्री कॉलेज में प्राचार्या डॉ. शिखा रस्तौगी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेखन कार्य में संलग्न। लेखन के अलावा कई सामाजिक संगठनों में भी सक्रिय।

मध्यकालीन हिंदी काव्य रचनाकारों में रसखान का विशिष्ट स्थान है। जन्मजात मुसलमान होते हुए भी अपनी जाति, धर्म और संस्कारों के साथ सांसारिक वैभव त्याग कृष्ण निस्पृही भक्त होकर उन्होंने अनुपम काव्यधारा बहाई, जिससे संतप्त हृदयों को सरसता प्राप्त होती रही। हिंदी कृष्ण काव्यधारा में रसखान का योगदान गुणात्मक एवं विशिष्ट है। उनका कृष्ण प्रेम धर्म और संप्रदाय की सीमाओं से परे है। वे सच्चे अर्थो में भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि है। मुस्लिम कवि और अपने सांस्कृतिक परिवेश से भिन्न होते हुए भी हिंदी साहित्य की अद्वितीय सेवा करके इसके गौरव को बढ़ाया है। साहित्य के उत्थान में सूर, तुलसी, बिहारी, पंत, निराला इत्यादि अनेकों हिंदू कवियों का जितना योगदान है, उतना ही योगदान कबीर, जायसी, रहीम, रसखान आदि मुस्लिम कवियों का भी है। मुसलमान कवियों का योगदान गुणात्मक और विशिष्ट है और इस दृष्टि से रसखान का स्थान मूर्धन्य है।

मुस्लिम कवियों के हिंदी साहित्य के प्रति इतने स्नेह का कारण एक तो उस समय की परिस्थितियां थीं दूसरा हिंदू धर्म की सरल भक्ति भावना, जिसने उन्हें आकृष्ट किया। मध्यकाल में आक्रमक मुस्लिम शासकों द्वारा भारत की आध्यात्मिकता और अस्मिता को मिटाने का भरपूर प्रयास किया जा रहा था। वहीं दूसरी ओर अनेक मुस्लिम कवि भारत की भावनात्मक एकता को बनाए रखने में पूरे मन से जुटे हुए थे। आज भी जाति, धर्म और समुदाय के नाम पर विखंडित राष्ट्र को ऐसे प्रतिभावान साहित्यकारों की आवश्यकता है, जो भारतीय जनमानस में प्रेम और समन्वयवादी भाव भर सकें। रसखान इसके ज्वंलत उदाहरण है। कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम का परिचायक इनका यह पद्य (सवैया) बहुत प्रसिद्ध है—

''मानुष हो तो वही रसखानि
बसो ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पशु हौ तौ कहा बस मेरा
चरो नित नन्द को घेनु मँझारन।।

×××

''पाहन हौ तौ वही गिरि को
जो धरयो कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौ तो बसेरो करो मिलि
कालिंदी कूल कंदब की डारन।।''

×××

''या लकुटीह अरू कमरिया पर
राज तिहूं पुर को तजि डारो।
आठहुं सिद्धी नवों निधि को सुख
नन्द की गाइ चराइ विसारौ।।
रसखानि कबौ इन आंखिन सो
ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौ।
कोटिक से कल धौत के धाम
करील के कुंजन ऊपर वारौ।।''

कृष्ण के इस अनन्य भक्त ने कृष्ण की प्रेममयी मूर्ति को आधार मानकर ही उनके स्वरूप और लीलाओं का रसीला वर्णन विस्तार के साथ किया है। आनंदमय स्वरूप प्राप्त करके अनंत सौंदर्य और हास-विलास के समुद्र में गोते लगाए हुए हैं। कविता और रसखान इतने तन्मय और एकत्वमय हो गए हैं कि लोग भक्ति सवैया सुनाने की बात को कोई 'रसखान' सुनाने की बात कहते हैं। इनके द्वारा रचित फाग सवैये बहुत मनमोहक है—

''मिली खेलत फाग बढ़्यों अनुराग
सुराग सनी सुखकी रमकै।
कर कुंकुम लैकरि कंजमुखि
प्रिय के दृग लावन को घमकै।।''

×××

''फागुन लाग्यो जब तै तब तै
ब्रजमंडल में घूम मच्यौ है।
नारि नवेली बचै नहि एक बिसेख
यहै सबै प्रेम अच्यौ है।।

×××

ज्यों-ज्यों छबीली कहै पिचकारी
लै एक लड़ै यह दूसरी लीजै।
त्यों-त्यों छबीलों छके छवि छाक सों
हैरे हंसे न टेर खरो भीजै।।''

रसखान की सरसता सूर के अतिरिक्त अन्य कवियों में देखने को नहीं मिलती। इनके सुंदर, सजीव, प्रेमरस से युक्त मर्मस्पर्शी सवैये हिंदी प्रेमियों के गले के कंठहार है।

प्रेमपंथ के धीर पथिक मध्ययुगीन कृष्ण भक्त कवियों में अग्रगण्य सैयद इब्राहिम

रसखान का जीवन वृत्त अन्यान्य किंवदंतियों, जनश्रुतियों से आच्छादित है। यह दिल्ली के एक पठान सरदार थे। इन्होंने अपने काव्य ग्रंथ 'प्रेमवाटिका' में अपना परिचय देते हुए अपने आपको शाही खानदान का कहा है। हो सकता है कि पठान बादशाही से इनका संबंध रहा हो। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' ग्रंथ में रसखान को दिल्ली के शाही वंश का पठान सरदार और श्री विट्ठलनाथजी का शिष्य बताया है। रसखान का असली नाम 'सैयद इब्राहिम' था और 'रसखान' उनका उपनाम तथा 'खान' उनकी परंपरागत उपाधि। यह सैयद वंशीय थे। 'दौ सौ बावन वैष्णव की वार्ता' (इसमें गोसाई श्री विट्ठलनाथजी के शिष्यों तथा सेवकों का वर्णन है। इसमें जो वार्ताएं गोसाई गोकुलनाथजी के मुख से उच्चारित हुई थीं वो उसी समय लिपिबद्ध हो गई थीं) के अनुसार रसखान को दिल्ली का रहने वाला बताया गया, यह विट्ठलनाथजी के कृपापात्र शिष्य थे। वार्ता के अनुसार, ''यह एक बनिए के लड़के पर आसक्त थे। एक दिन दो वैष्णवों के आपस की बात सुनकर, 'कि अगर भगवान पर इतनी आसक्ति होती तो इसका उद्धार हो जाता।' इस बात से मर्माहत होकर श्री नाभाजी को ढूंढते-ढूंढते गोकुल आए और वहां गोसाई विट्ठलनाथजी से दीक्षा ली और उनके शिष्य हो गए।''

इनके बारे में एक आख्यायिका दूसरे रूप में भी प्रसिद्ध है कि—''जिस स्त्री पर यह आसक्त थे वह बहुत मानवती थी और इनका अनादर किया करती थी। एक दिन यह श्रीमद्भागवत का फारसी तर्जुमा पढ़ रहे थे तो उसमें गोपियों के अनन्य और अलौकिक प्रेम को पढ़कर इन्होंने सोचा, उसी में क्यों न ध्यान लगाया जाए, प्रेम किया जाए जिस पर इतनी गोपियां मरती हैं,'' यही सोचकर यह वृंदावन चले आए। इनके इस दोहे को इसी घटना का संकेत बताते हैं—

''तोरि मानिनी तें हियो कोरि मोहनी मान।
प्रेमदेव की छविही लखि भए मियां रसखान।।''

एक तथ्य और भी प्रचलित है कि कहीं श्रीमद्भागवत की कथा हो रही थी। वहीं इन्होंने भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति देखी उस पर मुग्ध होकर यह वृंदावन चले आए। निष्कर्षतः 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार रसखान दिल्ली में निवास करते थे और उनकी प्रीति साहूकार के पुत्र से थी उनकी यह आसक्ति वैष्णव भक्तों के प्रोत्साहन से कृष्ण भक्ति में परिवर्तित हो गई। वैष्णवों द्वारा दिए कृष्ण चित्रों को लिए यह दिल्ली से ब्रज प्रदेश पहुंचे। कृष्ण दर्शन की लालसा में अनेक मंदिरो की खाक छानी अंततः गोविंद कुंड में श्रीनाथजी के मंदिर में भक्तवत्सल भगवान श्रीकृष्ण ने इन्हें दर्शन दिए। तदुपरांत विट्ठलनाथजी ने अपने मंदिर में रसखान को बुलाया वहीं यह कृष्ण लीला गान करते हुए भक्ति में तल्लीन हुए।

इन प्रवादों से सिद्ध होता है कि यह प्रारंभ से ही प्रेमी जीव थे। इनके ह्रदयस्थल का गूढ़ प्रेम ही भगवत भक्ति में परिणित हुआ। प्रेम के इतने सुंदर उद्‌गार इनके पदों, दोहों, कविता, सवैयों के रूप में निकले कि जनसाधारण प्रेम या श्रृंगार संबंधी कवित्त-सवैयों को रसखान कहने लगे जैसे—'कोई रसखान सुनाओ।' इनके जीवन का सार प्रेम ही रहा है, वह चाहे लौकिक हो या अलौकिक। लौकिक प्रेम का ही परिष्कार और उदात्तीकरण होकर राधा-कृष्ण प्रेम में परिवर्तित हो गया। रसखान का उद्‌देश्य ग्रंथ रचना नहीं था यह तो स्फुट पद गाते रहे और प्रेमीजनों ने सरस पदों का संग्रह कर लिया। इस भावुक कवि ने प्रेम भक्ति के वशीभूत न जाने कितने पद रचे होगें? जितने उपलब्ध हैं, निश्चित उससे अधिक रचे होगें। लौकिक और कालांतर में अलौकिक प्रमोन्माद से उन्मंत कवि ने अपने भावावेश में, प्रेममय आवेग को ही अभिव्यक्ति दी है जैसे—

''जाते उपजत प्रेम सोई, बीज कहावत प्रेम।
जामें उपजत प्रेम सोई, क्षेत्र कहावत प्रेम।।
'रसमय स्वाभाविक, बिना स्वास्थ अचल महान।
सदा एक रस, शुद्ध सोई, प्रेम अहै रसखान।।''

पिहानी में जन्मे रसखान ने अपनी युवावस्था दिल्ली में बिताई। दिल्ली से ब्रज आने की अपनी कथा बताते हुए उन्होंने अपने ग्रंथ 'प्रेमवाटिका' में अपने विषय में बताते हुए चार दोहे लिखे हैं—

''देखि गदर हित साहिबी,
दिल्ली नगर मसान।
छिनहि बादसा वेस की,
ठसक छोरि रसखान।।

×××

प्रेम निकेतन श्री बनहि,
आइ गोबरधन धाम।
लह्यै सरन चित्त चाहि कै,
जुगल सरूप ललाम।।

×××

तोरि मानिनी ते हियों,
कोरि मोहिनी मान।
प्रेमदेव की छविहि लखि,
भये मियां रसखान।।
बिधु सागर रस इंदु सुभ,
बरस सरस रसखान।
प्रेमवाटिका रूचि रूचिर,
चिर हिय हरष बखान।।''

इससे संकेत मिलता है कि कोई बहुत बड़ी उचाट इनको हुई जिससे इन्हें लगा कि दिल्ली नगर श्मशान हो गया है, और बादशाही ठसक थोथी है इस कारण यह ब्रज की ओर मुड़ गए। लौकिक प्रेम के निस्सार लगने पर श्रीकृष्ण के प्रेम में पागल हो गए और ब्रज में ही बस गए। किसी ने कहा—'तुम्हारी रियासत छिन जाएगी।' तो उन्होंने उत्तर दिया—'कहा करै रसखान को को ऊचुगुल लबार, जैसे राखन हार है माखन चाखन हार।।'

उक्त दोहे से स्पष्ट है कि दिल्ली में राजसत्ता के लिए संघर्ष में हुए नरसंहार के कारण नगर श्मशान की भांति वीरान हो गया और इस युद्ध लिप्सा से विक्षुब्ध कवि ने शाही वंश की ठसक का परित्याग कर दिया अर्थात् शाहे वंश से संबंध तोड़कर वे ब्रजवासी हो गए। गोवर्धन की पर्वतीय सुषमा को अपना प्रेम

निकेतन बनाकर राधा-कृष्ण के युगल चरणों में शरण ली। उन्होंने उस मानवती नायिका के मान का भंजन करके उसके प्रेमपाश से अपने हृदय को मुक्त कर रसिकराज के चरणों में लगाया। इस तरह कृष्ण छवि का दर्शन कर मियां रसखान रसमय, रसरूप हो गए। प्रेयसी से प्रताड़ित रसखान भावावेश में नित्य ही श्रीकृष्ण के साथ गौएं चराने जाया करते थे और गोपियों की रासक्रीड़ा का दर्शन करते थे। जैसा देखते थे, वैसा ही काव्यगान करते थे।

रसखान ने हिंदी में काव्य रस की जो धारा प्रवाहित की वो काव्यत्व की दृष्टि से इतनी महत्त्वपूर्ण है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र ने इस अकेले कवि पर—''इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिक हिंदू वारियै।'' कोटि हिंदू कवियों को न्योछावर कर दिया है। सूर की तरह पद न लिखकर रसखान ने कवित्त और सवैयों में ब्रजभूमि प्रेम तथा कृष्ण की बाल छवि और यौवन छवि के मार्मिक चित्र उतारे हैं। इन्होंने भारतीय जीवन के लौकिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्रों की प्राचीन संस्कृति का लोक मंगलकारी रूप प्रस्तुत किया है।

मध्यकालीन भक्त कवियों के आराध्य देवता श्रीकृष्ण युगपुरुष व महापुरुष हैं, जो परमब्रह्म तथा विष्णु के अवतार हैं। इनकी बाललीला, किशोरावस्था का वर्णन इनका प्रतिपाद्य रहा है। इन्होंने तन्मय होकर प्रेम रस में डुबकी लगाई है तथा लगवाई है। प्रेम की वह लुनाई जो तरुणावास्था में सर्वसाधारण के हृदय में टीस बनकर उठा करती है, इनकी कविता में अन्य भक्त कवियों की अपेक्षा अधिक मिलती है। ब्रजभाषा पर जो इनका अधिकार है, वह हिंदू कृष्ण भक्त कवियों को भी नहीं है। इनके काव्य में ऐसे अनेक स्थल है जहां वे एक प्रेमतत्त्वदर्शी की भांति अपनी भावुकता का परिचय देते हैं।

''ब्रह्मा मैं ढूढयों पुरानन गानन
        बदरिचा सुन्यो चो गुनो चायन।
देख्यों सुन्यों न कहूं कबहू वह
        कैसे सरूप और कैसे सुभायन।।
टेरत हेरत हारि परयो,
        सखनि बतायों न लोग लुगामन।
देख्यो हुरयो वह कुंज कुटीर में,
        बैठयों पलोटत राधिका यामन।।''

रसखान भक्ति-भावना को लेकर काव्य क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। साहित्य सेवा उनका लक्ष्य नहीं था वह तो श्याम की मनोहर मूर्ति पर इतने मुग्ध हुए कि अपने तन की भी सुधि बिसार दी। भक्ति भावना से प्रेरित होकर वे मुक्तकंठ से गाते थे—

''प्रेम प्रेम सब कोउ कहत
        प्रेम न जानत कोई।
जो जन जानै प्रेम तो,
        मेरे जगत क्यों रोई।।

×××

हरि के सब आधीन पै,
        हरि प्रेम आधीन।
याही ते हरि आपु हीं,
        याहि बड़प्पन दीन।।
बिन गुन जोबन रूप धन,
        बिन स्वारथ हित जानि।
सुद्ध कामना ते रहित,
        प्रेम सकल रसखानि।''

रसखान भक्त तो थे ही साथ ही सुकवि भी। इनकी रचनाएं मुक्तक रूप में हैं। 'प्रेमवाटिका' छोटा सा 52 दोहों का पद्य निबंध है, स्फुट काव्य रूप विशेषतः सवैया, दोहे, सोरठे, धनाक्षरी कवित्त और गेय पद भी मिलते हैं। किंतु संख्या में कम है। एक 11 छंदों का छोटा सा 'दानलीला' नामक ग्रंथ है। 'सुजान रसखान' 214 पदों का संग्रह है। प्रेमवाटिका के मुक्तकों में कृष्ण प्रेम की सुंदर भावनाओं का शास्त्रीय रीति से विवेचन तथा भावपक्ष का मधुर संगीत है। मुक्तकों का रचनाकार—''जो खग हो तो बसेरों करो नित कालिंदी कूल कदंब की डारन'' कहता है तो वही कंठ 'प्रेमवाटिका' में गाता है—

''राधा माधव सखिन संग,
        विहरत कुंज कुटीर।
रसिक राज रसखान तहं,
        कूजत कोइल वीर।।''

रसखान का काव्य कहीं रुकता नहीं बस आंखें अटकती हैं। इनकी काव्य यात्रा में कोई पड़ाव नहीं है, कहीं विश्राम लेने का मन नहीं करता क्योंकि इस यात्रा में एक क्षण को भी विह्वलता कम नहीं होती रसखान उस 'अनिवार' प्रेमपंथ के यात्री हैं जो कमल तंतु से भी अधिक कोमल है और तलवार की धार से भी अधिक तेज, जितना सीधा है उतना ही टेढ़ा है—

''कमल तंतु सौ क्षीणतर कठिन खड्ग की धार।
अति सूधों टेढ़ो बहुर प्रेम पंथ अनिवार।।''

रसखान के संबंध में कुछ समीक्षकों ने भ्रमवश लिखा कि 'रसखान' ने धर्म परिवर्तन कर लिया था, उनकी लिखी इस पंक्ति ''प्रेम देव की छविहि लखि भये मियां रसखान'' ने लोगों को इस तथ्य को सत्य मानने को प्रेरित किया है—'मियां (मुसलमान) सैयद इब्राहीम खान प्रेमदेव (भगवान श्रीकृष्ण) छवि को देखकर रसखान (हिंदू-भक्त) हो गए। किंतु इस प्रकार की कल्पनाएं-उद्भावनाएं प्रमाणहीन व निराधार है। सत्यता यह है कि परम प्रेम (ईश्वर-प्रेम) अथवा चरम भक्ति की अनुभूति के कारण सांप्रदायिक धर्मों का उनके लिए कोई महत्त्व ही न रह गया था। उनका प्रभु-प्रेम धर्मातीत है, धर्म से परे है, धर्म की संज्ञा में उसे बांधा नहीं जा सकता। वह धर्म संप्रदाय के बंधनों से उन्मुक्त ऊर्ध्वगामी है, अतः यह न हिंदू है ना मुसलमान मात्र ईश्वर प्रेमी है, प्रभु भक्त है।

अन्य कृष्ण भक्त कवियों की अपेक्षा रसखान में कुछ अलग विशेषताएं दिखाई देती हैं जिसके कारण यह भक्त होते हुए भी कवि समुदाय में अधिक विख्यात हुए। अन्य भक्त कवियों का उद्देश्य कृष्णलीला वर्णन के अतिरिक्त कुछ अंश में सांप्रदायिक प्रचार भी था परंतु रसखान जाति, धर्म और संप्रदाय निरपेक्ष थे। रसखान में ना तो किसी संप्रदाय विशेष के प्रति कट्टरता पूर्ण आग्रह था ना किसी के साथ विरोध अथवा वैमनस्य। वे किसी दलगत सांप्रदायिक विचार या उपासना पद्धति से नहीं बंधे थे। उनकी कोई टोली या शिष्य मंडली भी नहीं थी। वह चिंता बाधा से

मुक्त कृष्णप्रेमोन्मत भक्त थे और इसी प्रकार का जीवन दर्शन उनके काव्य में झलकता है।

रसखान ने राज्य लिप्साजन्य उथल-पुथलपूर्ण अपने जीवन को नए सांचे में ढाला और श्रद्धा विश्वास युक्त साधना द्वारा श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त हो गए। काव्य रचना उनका साध्य नहीं था, किंतु कृष्णलीला संबंध, मधुर भावों को व्यक्त करने के लिए काव्य एक साधन मात्र था। प्रेम माधुर्य से परिपूर्ण उनकी वाणी यश-धन प्राप्ति हेतु तथा राजा-महाराजाओं के मनोरंजनार्थ नहीं थी। इन्होंने आत्मसंतुष्टि प्राप्त करने हेतु रस नायक श्रीकृष्ण की लीला संबंधी जब जैसा भाव मन में उठा उसे भाषा छंदो का रूप देकर साकार कर दिया। इन्होंने काव्य रसपान हेतु काव्य रचना की। उन्मुक्त उन्मत्त और निर्लिप्त होने के कारण रसखान को अपनी रचनाओं से मोह नहीं था। इसी से उनके काव्य की पूर्ण रक्षा और संग्रह भी न हो पाया। उनके अनमोल मुक्तक छंद जो इष्ट मित्रों के हाथ पड़ गए वही बचे रहे। रसिक कवियों ने अपनी रुचिनुसार गोपी-प्रेम से संबंधी छंदों का चयन किया।

रसखान ने गोपियों के माध्यम से ही अपनी अनुराग वृत्ति व्यक्त की है। इनका प्रेमोन्मत हृदय गोपी भावावेश में तन्मय होकर कृष्ण के रूप सौंदर्य, प्रेम माधुर्य तथा दिव्य लीलाओं में रम गया। कृष्ण की वीरता प्रकट करने वाली लीलाओं में इनकी रुचि नहीं थी, इन्होंने तो गोपी-कृष्ण संबंधित नित्यप्रति की घटनाओं का वर्णन, दैनिक कार्यकलापों का वर्णन किया है, वर्णन शैली इतनी स्पष्ट मधुर रोचक प्रभावपूर्ण है कि नेत्रों के सम्मुख चित्र उपस्थित हो जाता है। इसीलिए रसखान की कविता में आंखों देखा हाल पढ़ने को मिलता है।

कृष्ण-सौंदर्य, मधुर-हास्य, वंशीवादन, नटखट-व्यवहार, क्रीड़ाशील प्रवृत्ति, दिव्य रास , गोपियों की प्रेम विह्वलता आदि रसखान की रचना के वर्ण्य विषय हैं। इन्होंने अपनी प्रेम से पगी भावमय रचना द्वारा गोपियों के माध्यम से स्वयं अपनी कृष्ण प्रेमजन्य हृदय की भावनाएं ही व्यक्त की हैं। इनकी भक्ति आडंबरशून्य है।

अनूठे अलौकिक अद्भुत व्यक्तित्त्व के धनी रसखान ने जड़ चैतन्य सभी में 'रसो वैसः' के साकार रूप श्रीकृष्ण की प्रेममयी लीलाओं का रस माधुर्य स्वयं प्राप्त कर, उस रस का पूर्ण रसास्वादन कर जनसाधारण के कल्याण के लिए प्रसाद रूप में अपने काव्यरूपी अमृत का वितरण किया। जब यह देखा गया कि इन प्रेम अनुभूति से परिपूर्ण मुक्तकों का रचनाकार मुसलमान धर्म को फैलाने वाले युद्धरत बादशाहों के वंश का एक जन्मजात मुसलमान था तो सादर नतमस्तक होकर आवाक रह जाना पड़ता है। इन्होंने वैष्णवी लिबास धारण कर लिया था और कंठी-माला धारण कर ली थी। हिंदू ना होते हुए भी रसखान सगुणोपासक कृष्णभक्त होने के कारण हिंदुओं के श्रद्धास्पद महापुरुष और परम भक्त थे।

प्राचार्या, तेजपाल सिंह त्यागी कुशलपाल सिंह त्यागी मैमोरियल डिग्री कालेज, मुरादनगर, जनपद गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)

कृष्ण भक्त कवि—रसखान

सुरेश सक्सेना

विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं में लेखन के अलावा सुरेश सक्सेना कविता, कहानी के क्षेत्र में भी सक्रिय हैं। फिलहाल स्वतंत्र लेखन।

हिंदी साहित्य भक्तिकाल में तथा इससे पूर्व भी गुण और परिमाण की दृष्टि से पर्याप्त प्रतिष्ठित हो चुका था और इसे विरासत में संस्कृत काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की अक्षुण्ण परंपरा भी प्राप्त हो चुकी थी। परंतु काव्यांग निरूपण की प्रवृत्ति का इसमें आविर्भाव नहीं था। इसका कारण था तत्कालीन कवियों ने इस दिशा में न तो सोचने का प्रयत्न ही किया और न ही अवकाश मिला। वैष्णव धर्म के व्यापक प्रभाव और प्रसार के परिणामस्वरूप निर्गुण ब्रह्मवादियों द्वारा निरूपित जटिल दार्शानिक सिद्वांतों तथा कठोर साधना की अपेक्षा भक्ति की सरल पद्वति के प्रति लोग अधिक आकृष्ट हुए। भक्तिकाल के अंत तक कुछ ऐसे कवि भी हुए, जिन्होंने कृष्ण भक्ति काव्य के नए सोपान स्थापित किए।

मुस्लिम कृष्णभक्त कवियों में रसखान का नाम सर्वाधिक लोकप्रिय है। रसखान के जन्म संवत् को लेकर विद्वानों में मतभेद है। इनके जन्म, मृत्यु आदि के संबंध में कोई प्रामाणिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। उनकी कृति 'प्रेमवाटिका' के आधार पर उनका जन्म कुछ विद्वानों ने 1558 ई. अनुमानित किया। दिल्ली के श्मशान बन जाने के उल्लेख से सम्राट हुमायूं के समय पठान शासकों से अपना खोया हुआ शासनाधिकार प्राप्त करने हेतु भंयकर नर-संहार और विध्वंस हुआ था—

''देखी गदर हित साहबी,
        दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा-वंश की,

        ठसक छोरि रसखान।।''

माना जाता है कि गदर के इस तांडव को देख रसखान का हृदय विचलित हो गया था। उस समय उनकी उम्र बीस वर्ष अनुमानित की गई थी। रसखान का वास्तविक नाम 'इब्राहिम' था और वे शाही खानदान से संबंध रखते थे। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि उनका जन्म हरदोई के निकट, 'पिहानी' गांव में हुआ था।

इस काल के कृष्णभक्ति शाखा के कवियों ने कृष्ण की महिमा का वर्णन एवं कृष्ण को आध्यात्मिक व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। इन्होंने कृष्ण को एक कूटनीतिज्ञ एवं अत्यंत आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया है। इनके काव्य में श्रृंगार रस की प्रमुखता, संयोग-वियोग, व्यंग्य एवं वात्सल्य आदि का चित्रण हुआ है। ब्रजभाषा का सर्वश्रेष्ठ रूप, अलंकार का प्रयोग एवं करुणरस आदि का प्रयोग भी प्रखर रूप से हुआ है।

उनकी संसार विषयक विरक्ति और कृष्ण प्रेम के पीछे छिपे कारणों की भी चर्चा रही है। एक मत है कि वे किसी के व्यक्तिगत अतिशय मान के कारण, उससे विमुख होकर कृष्णभक्ति और प्रेम की और उन्मुख हुए और दूसरा मत है कि वे किसी पर आसक्त थे और फिर यही आसक्ति कृष्ण प्रेम में परिवर्तित हो गई। मुसलमान होने पर भी रसखान वैष्णव भक्तों जैसा पहनावा धारण करते थे। गले में बहुत सारी कंठिया पहना करते थे। तीन वर्ष तक यमुना तट पर 'रामचरितमानस' की कथा का आनंद लेने के उपरांत वे स्वामी विट्ठलनाथ से दीक्षा लेकर कृष्णभक्ति में लीन रहने लगे। रीतिकाल में रीतिमुक्त काव्य धारा के कवियों में रसखान का प्रमुख स्थान है।

रसखान द्वारा रचित कुल 334 पद उपलब्ध हैं। इन्हें 'सुजान रसखान', 'प्रेमवाटिका', 'दानलीला', और 'अष्टयाम' चार भागों में प्रकाशित किया गया। इसके अतिरिक्त, रसखान के संदिग्ध पदों का भी एक संकलन प्रस्तुत किया गया है। रसखान की कविता का विषय श्रीकृष्ण की अनन्य भक्ति है। उनका अपने आराध्य के प्रति इतना गंभीर लगाव है कि वे प्रत्येक स्थिति में उनका सानिध्य चाहते है। कृष्ण और उनकी क्रीड़ा भूमि के प्रति पूर्ण समर्पित भाव से रसखान का कथन है—

''मानस हैं तो वही रसखानि बसौं
        नित ब्रजगांव के गवारन मंझारन।
पाहन हो तो उहि गिरि को
        जो धरयो कर छत्र पुरंदर करन।।''

रसखान अपने आराध्य से विनती करते हैं कि वे उन्हें यमुना किनारे कदंब की डालों पर निवास करने दें जहां कृष्ण ने अनेकों लीलाए रची हैं—

''सिद्धि समृद्धि सबै रसखानि
लहौ ब्रज-रेनुका अंग संवारन।
खास निवास मिले जु पै तो नहीं
कालिंदी कूल कदंब की डारन।।''

रसखान वल्लभ संप्रदाय के अनुयायी थे। अतः उनकी भक्ति वैष्णव पद्धति की थी। लेकिन फिर भी वे किसी विशेष पद्धति से बंधे नहीं थे। 'सांवरे ग्वार' के मोह में मगन उसकी 'बकबिलोकनी' मुस्कान पर उन्होंने सबकुछ वार दिया उसकी 'लकुटि अरू कमरिया' पर तीनों लोकों का राज्य न्योछावर था। इस प्रकार रसखान की भक्ति नियमों पर आधारित न होकर भावाधारित है।

प्रेमपरक भक्ति होने के कारण रसखान के काव्य का प्रमुख रस श्रृंगार है। श्रृंगार के अंतर्गत राधा और कृष्ण के सौंदर्य, रूपप्रभाव, रासलीला, मिलन प्रसंगों और प्रेम क्रीड़ाओं को लेकर रसखान ने बहुत सरस, मधुर और सरल पदों की रचना की है—

''रस रास सहस रंगीली रसखानि आनि।
जानि ओर जुगुति बिलास कियौ जन मैं।।''

रंगीले कृष्ण ने वहां आकर रासलीला की और नृत्य संगीत से आनंद का वातावरण बना दिया। गोपी अपने हृदय की दशा का वर्णन करती है—

''भूमि गिरी रसखानि तब हरिनी
जिमी बान लगै गिर जाई।
टूट गयौ घर को सब बंधन
घुरिया अरज लाज बडाई।।''

कृष्ण ने प्रेम के बाण चलाए और गोपी अपनी सुध बुध खो बैठी। सारे कुल की लाज छोड़, कृष्ण को देखती रह गई—

रसखान ने फागलीला में भी कृष्ण और गोपियों के प्रेम की झांकिया प्रस्तुत की हैं—

''खेलत फाग लख्यै पिय प्यारी को
ता मुख की उपमा किहि दी जै।
देखति बनि आवै भलै रसखान
कहा है जौ बार न की जै।।''

एक गोपी कहती है, हे सखी मैंने कृष्ण और राधा को फाग खेलते हुए देखा है। उस समय की शोभा को कोई उपमा नहीं दी जा सकती। बाह्य सौंदर्य के साथ आतंरिक सौंदर्य के भी बहुत मनोरंजक चित्र रसखान ने प्रस्तुत किए है। श्रृंगार वर्णन में रसखान ने कोई हिचक नहीं दिखाई है। प्रिय के साथ रति सुख का उपभोग करते हुए रात भर जगाते रहने के कारण सवेरे के समय नायिका की स्थिति है—

''सोई हुति पिय की छविया लगि
बाल प्रवीन महामुदमानें।
केस खुले छहरे बहरे फहरे
छवि देखत मैन अमाने।।
नाद रस में रसखान पगी रति
रैन जगी अखियां अनुमारे।''

संयोग के अलावा वियोग के अंतर्गत उन्होंने पूर्वराग, मान और प्रवास के चित्रों को अधिक उभारा है।

कृष्ण की बाललीलाओं का भी रसखान ने सुंदर चित्रण किया है—

''धूरि भरै अति सोभित स्याम जु
तैसी बनी सिर सुंदर चोटी।
खेलत खात फिरै अंगना पग
पैंजनी बाजती पीरी कछौटी।।
वा छवि को रसखान विलोकत
वारत काम कला निज कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी हरि
हाथ सौं ले गयो माखन रोटी।।''

बालक श्यामजू का शरीर धूल से सना है और सिर पर सुंदर चोटी बंधी है। रोटी माखन खाते घूम रहे हैं। तभी एक कौआ आकर उनके हाथ से माखन रोटी ले उड़ता है। रसखान कौए के भाग्य पर अचंभित हैं कि उसे ईश्वर के हाथ से रोटी मिली।

रसखान की काव्यभाषा माधुर्य, संगीत, छंद योजना तथा अलंकार आदि कलात्मक तत्त्वों की दृष्टि से अत्यंत आकर्षक एवं मोहक है। सरल भाषा शब्दाडंबर रहित प्रवाहमयी ब्रजभाषा का प्रयोग उनके काव्य की प्रमुख विशेषता है। छोटे-छोटे सरल शब्दों में राधा कृष्ण की लीलाओं और मनोभावों के सजीव चित्र अत्यंत मोहक हैं।

अलंकारो की दृष्टि से भी रसखान की कविता अत्यंत समृद्ध परंतु अकृत्रिम है—

''ताहि अहीर की छोहरियां
छछिया भरी छाछ पे नाच नचावै।
तथा
रसखानि वह रसखानि जु है
रसखानि सौ रसखानि।।''

आदि पंक्तियों में अनुप्रास व यमक की अद्‌भुत छटा देखी जा सकती है। रसखान की उपमाएं व उत्प्रेक्षाएं भी बेजोड़ हैं।

छंद के प्रयोग में रसखान सवैया सम्राट कहे जाते हैं। दोहा और कवित्त का भी उन्होंने पर्याप्त प्रयोग किया है—

''प्रेम प्रेम सब कोई कहत
प्रेम न जानत कोई।
जो जन जान प्रेम तो
मेरे जगत क्यों रोई।।
कमल तंतु सो छीन अरू,
कठिन खड़ग की धार।
आति सूधों टढौ बाहुरि,
प्रेमपंथ अनिवार।।''

भाव, भाषा, वस्तु और शिल्प आदि सभी दृष्टियों से रसखान अपने युग के विशिष्ट कवि कहे जाते हैं। अपने युग में संपूर्ण कृष्ण भक्ति काव्य के गेय पदों मे रचे जाने की परंपरा होते हुए भी रसखान द्वारा कवित और सवैया छंद को अपनाना उनकी स्वच्छंद वृति का सूचक है। उनके काव्य में उनके स्वच्छंद मन के सहज उद्‌गार हैं। वे स्वच्छंद काव्य धारा के प्रवर्तक कवि माने जाते है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने इनके भक्ति काव्य माधुर्य से प्रभावित होकर लिखा है—

''इन मुसलमान हरिजनन पै
कोटिन हिंदु वारिये।।''

44, पंचशील पार्क, फायर स्टेशन के सामने,
जी.टी.रोड, साहिबाबाद-201005
गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)

जो पशु हो तो कहां वश मेरो...

डॉ. गोपाल कमल

सेवानिवृत्ति के पश्चात डॉ. गोपाल कमल फिलहाल विविध विषयों में लेखन कर रहे हैं।

रसखान के दोहे, सवैये, पद, गीत हम सबकी जुबान पर कैसे चढ़े? क्या खास है उनमें? कृष्ण प्रेम तो अन्य मध्यकालीन तथा पूर्व आधुनिक काल के कवियों-लेखकों की परंपरा रही है—वह भी अखिल भारतीय परंपरा। उत्तर से दक्षिण तक, सब ओर। पर जन्म-जन्मांतर तक, अन्य योनियों की कल्पनाओं में भी जो शाश्वत प्रेम की कल्पना रसखान ने की है थोड़े दुर्लभ किस्म की है, तभी इस वार्त्ता का आरंभ मैं उनके प्रसिद्धतम सवैयों में से एक चुन कर कर रहा हूं। ''मानुष हो तो वहै रसखान.....'' से शुरू होती हैं। खग-मृग योनियों में पुनर्जन्म की गलियों में बस वृंदावन के आस-पास होने की कामना कवि की है। कृष्ण के जीवन चरित के आस-पास के प्रसंगों में ही कवि पुनर्जन्म लेता रहे, ऐसी प्रभूत इच्छा से संपृक्त मन ही ऐसा गा सकता है।

पर 'रस' की 'खानि' को ये अनूठे भाव कैसे मिले होंगे? भागवत का फारसी अनुवाद करते-करते या दशम स्कंध के भाव में विभोर होते-होते? पुनर्जन्म तो होना ही है। पर योनियों का भी तो पता नहीं! जाने कौन सी मिले? पत्थर ही हो गए तो?

पत्थर होने पर तो उसी गोवर्द्धन पर्वत का अंश होने की इच्छा है! उसी पर्वत को जिसे स्वयं श्रीकृष्ण ने कानी अंगुली पर धारण किया था। और अगर पक्षी की योनि मिली तो कहां जाऊं? खग हुआ तो कालिंदी कूल, कदंब के डाल पर विराम पाऊं! पशु योनि मिली तो ग्वाल-बाल की धेनुओं में भटकूं और मनुष्य जन्म मिला तो क्या कहने। ग्वाल बाल चरवाहों के संग पशुचारण के अलावा और आनंद कहां।

ऐसा तो एक सवैया हुआ। ऐसे अनूठे पद के, सर्वथा गेय, कंठस्थ होने योग्य पंक्तियों में कृष्णभक्ति में आप झूम सकते हैं, रसखान के साथ। ब्रज की गलियों में घूम सकते हैं। मथुरा वृंदावन की धूलि, पत्थर, गोवंश, गोवर्द्धन, मंदिरों में भटक सकते हैं।

बाललीला का तो कहना ही क्या? ''काग के भाग कहा कहियो हरि हाथ सो ले गयो माखन रोटी।'' में सूर-सा बाल वर्णन मिल जाएगा या तुलसी का 'अवधेश के द्वारे सकारे गई, सुत गोद में भूपति लें निकसे' का आनंद मिल जाएगा। परंपरा तो भक्ति की ही है न! रसों का आविर्भाव सबको अपने-अपने ढंग से करना है।

आचार्य शुक्ल को उद्धृत करते हुए श्री कृष्णदत्त पालीवाल ने लिखा है—

''हिंदू और मुसलमानों के दिलों को आमने-सामने लाकर उनका अजनबीपन मिटाने वालों में इन्हीं कवियों का नाम लेना पड़ेगा। इन्होंने मुसलमान होकर हिंदुओं की कहानियां हिंदुओं की ही बोली में पूरी सहृद्यता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ उदार-हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया।'

जायसी ने राजा रतनसेन, रानी पद्मिनी तथा अलाउद्दीन खिलजी की लोककथा को चुना, जिसमें खलनायक अलाउद्दीन है और वेद-निंदक नीच राघव-चेतन। जायसी का मन इस देश की संस्कृति में ऐसा रमा हुआ है, कि उनके प्रति श्रद्धा से सिर झुक जाता है। अमीर खुसरो, कबीर, जायसी, मंझन, कुतुबन, रहीम, रसखान, आलम और घनानंद में सूफी-प्रेम की इसी संस्कृति का सौंदर्य है और इस सौंदर्य को पाकर भारतीय संस्कृति में निखार आया है। भारतीय सौंदर्य-बोध के निर्माण में सूफी काव्य-चिंतन का बड़ा हाथ है। जायसी ने 'पद्मावत', 'कन्हावत', 'अखरावट' तथा 'आखिरी कलाम' में क्या किया? सिद्धांत कथन करते रहे 'अखरावट' में और कयामत का वर्णन करते रहे 'आखिरी कलाम' में। जायसी की कीर्ति का आधार है 'पद्मावत', लोक-संस्कृति और लोकभाषा से निचोड़ी हुई काव्यात्मकता का कैलाश सौंदर्य। यही वह शक्ति है, जो भरोसा दिलाती है कि संत-काव्य-परंपरा में जायसी ज्यादा अर्थवान संदर्भ रखते हैं।

कबीर की डांट-फटकार ने हिंदुओं-मुसलमानों को 'चिढ़ाने वाला' सिद्ध किया। लेकिन मुल्ला दाऊद, कुतुबन, मंझन, जायसी आदि के प्रेमाकाव्यों ने हिंदू-मुसलमानों के टूटे हुए हृदयों को जोड़ने का कार्य किया। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष-सत्ता की एकता का आभास किया था। समाज में प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता थी। वह जायसी द्वारा पूरी हुई।'' (आचार्य शुक्ल, हि.सा. का इतिहास)। यह आवश्यकता इसीलिए पूरी हुई कि जायसी का मार्ग योग का नहीं, प्रेम का है। इसीलिए सूफी कवियों द्वारा लिखे गए प्रेमकाव्य और

अन्य कवियों द्वारा लिखे गए प्रेमकाव्यों में बगैर किसी मतभेद के प्रेम-सौंदर्य को लेकर तात्त्विक एकता है। अलौकिक प्रेम से ज्यादा वह लौकिक प्रेम के कवि हैं। इसीलिए आचार्य शुक्ल ने जायसी के लौकिक प्रेम की सराहना की। वे अलौकिकता पर नहीं रीझे। इस लौकिक प्रेम का आधार है—लोक संवेदना की भाव-भूमि। जायसी ने इसी लोक संवेदना का विस्तार किया। इस संवेदना के स्त्रोत भारतीय समाज में है—सीमा परंपराओं में नहीं। हर प्रकार की कट्टरता के विरोध में उन्होंने प्रेम-मार्ग को अपनाया, प्रेम को प्रतिमान बनाकर दम लिया।

दरअसल, साहित्य और कला के क्षेत्र में मुगल बादशाहों ने सांप्रदायिकता नहीं आने दी। अकबर के दरबार में, फैजी और हाजी इब्राहिम थे तो मधु सरस्वती, नारायण मिश्र, दामोदर भट्ट, रामतीर्थ और आदित्य भी उस समाज में प्रभाव बनाए हुए थे। रसखान, आलम, जमाल, रसलीन, मुबारक, रहीम ने हिंदी क्षेत्र में प्रेम भाव का विस्तार किया। तुलसीदास के मित्र रहीम हो सकते हैं—यह सूफी प्रेम-पीर के राग की सबसे बड़ी व्यंजना है। लेकिन तुलसीदास ने गोरखनाथ को फटकार लगाई है—'गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोक' भक्ति मार्ग ही भेदभाव मिटाने वाला सच्चा मार्ग है, जिसमें झूठा चमत्कारवाद नहीं है।

भागवत के रचयिता को महाभारत की स्मृति है, किंतु उसका मानस तृप्ति का अनुभव मधुर-लीलामृत में करता है। यही कारण है कि पूरा दशम स्कंध कृष्ण-रस से आप्लावित है, कृष्ण स्वयं भगवान हैं, अवतारी हैं, भक्तों के लिए उनकी यह लीला होती है। 'सूरसागर' में मिलने वाली ज्यादातर कथाओं का मूलस्त्रोत यही महापुराण है। इस महापुराण की सृष्टि में अखंड जीवन-प्रवाह की छवि है और यह छवि मनुष्य देह में ही सबसे ज्यादा निखर सकती है और यह निखरती है। भगवान द्वारा दिए जीवन के अखंड-प्रवाह का अनुभव करना ही मानव-जीवन की सार्थकता है। भागवत लोक-धर्म की ओर बढ़ता है पर रुकता नहीं। उसका चरम लक्ष्य तो कृष्ण-रस का साक्षात्कार ही है—नर-नारायण की अनुभूति का योग है। इसमें बैकुंठ जाने की ललक नहीं है, धरती पर जीने की लालसा है। सच है, आचार्यों ने भक्ति को पांचवां पुरुषार्थ माना है, तो उसकी पूरी मनोभूमिका को भागवत ने ही तैयार किया है। यही मनोभूमिका मध्ययुगीन भक्ति-आंदोलन का आधार बनी है, जिसमें सभी प्राणियों को मिलाने का भाव है—जाति-कुल

के आधार पर किसी की भी उपेक्षा करने का भाव नहीं हैं। जो भूखा है, पीड़ित है, दीन है, शापित-तापित है, वह आवाज लगाता है तो दीनानाथ प्रभु दौड़े चले आते हैं। भक्त और भगवान का यह संबंध सामंतवाद-विरोधी है, जातिवाद-विरोधी है। कट्टर धर्मवाद-तंत्रवाद विरोधी है। मानवतावाद की इसी व्यापक भावभूमि पर प्रवृत होकर भक्ति-आंदोलन ने योगमार्ग-तंत्रमार्ग, अलखवाद, शरीरवादी काम-कलावाद का निषेध किया। 'निषेध क्या, योगमार्ग तंत्रवाद का पूरा टाट ही पलट दिया। इसलिए जो विद्वान भक्तिवाद को कर्मवाद-ज्ञानमार्ग का विरोधी समझते-समझाते हैं—उनकी बुद्धि पर दया आती है। भक्ति में कर्म सौंदर्य की भरपूर स्वीकृति है।

भक्ति का 'तदीय' भाव समष्टिवाद की भूमि है। जो लोग कृष्ण की रासलीला, गोपी-चीरहरण लीला को भ्रष्ट भक्तों की कल्पना कहते-घूमते हैं, उन्हें विचार करना चाहिए कि रासलीला में चित्त-वृत्तियों के एकीकरण और 'चित्त' समाधि की वह भावभूमि है, जहां हम क्षुद्रताओं का अतिक्रमण करते हैं। हम सब कृष्ण के हो जाते हैं—यही पूर्णता है, यह गोपियों के द्वारा नैतिकता का अतिक्रमण नहीं है। यहां हमारा ध्यान 'गोपी-गीत' पर जाता है। यह गीत, भक्ति का सार सर्वस्व है—'कृष्णैक गम्यो वागर्थः।' गोपांगनाओं का यह वागर्थ केवल श्रीकृष्ण द्वारा ही गम्य है। आनंदकंद, परमानंद, ब्रजचंद्र, साक्षात् मन्मथ, श्रीकृष्ण उन ब्रज-वनिताओं का दुःख हरण करने के लिए उनके मध्य आविर्भूत होते हैं। इस ब्रजपति के ब्रजधाम में बैकुंठवासिनी इंदिरा निवास करती हैं और प्रतीक्षा करती हैं। ब्रज-वनिताएं अपने वियोगजन्य संताप से संतप्त हो, अपने निमित्त ही प्रायःजन्म धारण करती हैं। यही बात 'जयति ते अधिक जन्मना ब्रजः' की मूल ध्वनि है। ब्रजपति की उपासना में नाम, रूप, लीला एवं धाम चारों की अतुल महिमा है और लीला हेतु ही विष्णु का अवतरण होता है, बैकुंठधाम का अवतरण होता है। करपात्रीजी महाराज अवतरण के अर्थ पर जोर देकर कहते हैं कि अवतरण का अर्थ है—ऊंचे से नीचे उतरना। गोलोक धाम में जीवानुग्रहार्थ संसार में अवतरण होते हैं। ब्रजधाम ही साक्षात् ब्रज-तत्त्व है। इस ब्रजधाम में प्रवेश करते ही प्राणी सद्घन, चिद्घन, आनंदघन हो जाता है। जमुना-जल ही साक्षात् प्रेम-जल है। माधुर्य-भक्ति के प्रवाह में पड़ा हुआ जीव ही भक्त है। ब्रजधाम में भगवान के ऐश्वर्य भाव का तिरोधान है। माधुर्य-भाव की ही आलोक धारा है। श्रीकृष्ण के लिए ही गोप-कन्याएं कात्यायनी व्रत करती है। उनकी उत्कंठा के उद्रेक हेतु ही कृष्ण ने उनके वस्त्र चुराए। निरावरण होकर के ब्रह्म रूप हो गईं। तादात्म्य भाव-भक्ति का यह अद्भुत रूप है। वंशी बजते ही वृक्ष, लता, गुल्म सभी मग्न हो जाते हैं।

करीब-करीब इसी वक्त एक नई रसधारा फूटती है। मुगलों के प्रादुर्भाव एवं गौरव के काल में सारे भक्त कवि दक्षिण से उत्तर तक जोर-शोर से रस भाव फैलाते हैं, सगुण की धारा भी है और निर्गुण की भी। रसखान की जीवनी यहीं से शुरू होती हैं। काल विवेचन में तीन अनुमान हैं। पदों में रसखान है, पर विवरण इतिहास कुछ भी नहीं। रसखान-जायसी, कुतुबन, मंझन, उस्मान की परंपरा में रचे-बसे है।

रसखान सोलहवीं-सतरहवीं सदी के उत्तर तथा पूर्वार्द्ध में अवश्य ही रहे होंगे। भक्ति दक्षिण से प्रवेश पा चुकी है। अपभ्रंश, प्राकृत के काव्यों की विवेचना अनेक आचार्यों ने कर रखी है। रसों में शांत रस भी जोड़ा जा चुका है। कबीर की वाणी का प्रभाव बड़े क्षेत्र में फैला है, ऐसे में 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता' से रसखान के प्रसंग में कुछ बातें मिल जाती हैं। उनका नाम इब्राहिम खान है। उपनाम रसखान शायद स्वयं बिहारीलाल का सुझाया। मंदिर में दर्शन को उत्सुक भक्त को तत्कालीन ब्राह्मण समाज की अनुमति न मिलने से इब्राहिम बाहर ही रम जाते हैं। भूखे प्यासे कई दिनों तक। लीलाधारी वपु स्वयं प्रगट होते हैं। दर्शन भी देते हैं तथा रस की खान नाम से भी नवाज देते हैं।

यह बात वल्लभाचार्य की परंपरा में प्रवृत्त लोग बताते हैं। वृंदावन के अन्य संप्रदायों ने भी उन्हें अपनाने की बात कही है। वास्तव में लोक के मुख से उनके पद, दोहे कवित्त सब प्राप्त हैं। लोगों की जबान पर चढ़े हैं।

रस का स्त्रोत क्या है? रसखान के मन में क्या है? श्रीमद्भागवत माहात्म्य के प्रथम अध्याय में भक्ति एक युवती स्वरूप नारद को उनकी कथा सुनाती है—

''उत्पन्ना द्रविडे साहं वृद्धि कर्णाटके गता
क्वचित्कवचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता
तत्र घोरकलेर्योगात्पाडखंडैः खण्डितांगका
दुर्वलाहं चिरं याता पुत्रभ्या सह मंदताम्
वृंदावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरिपिणी
जाताहं युवती सम्यक्प्रेष्ठरुपा तु साम्प्रतम्।।''

द्रविड़ देश में उत्पन्न, कर्णाटक में बढ़ी, कहीं-कहीं महाराष्ट्र में सम्मानित कलियुग के पाखंड से त्रस्त मैं दुर्बल हो गई थी। ब्रज में पुनर्यौवना हुई हूं।

'ब्रजपति के ब्रज में ही रसखान रहना चाहते हैं, न उनका मन मथुरा जाना चाहता है, न द्वारका। सत्ता के केंद्रों में वे नहीं जाना चाहते—सत्ता-मद उन्हें फूटी आंखों नहीं सुहाता। ऐसा होता तो वे दिल्ली में ही रहते, वृंदावन क्यों जाते। बादशाह वंश की ठसक क्यों छोड़ते? रसखान के जीवन का क्रमबद्ध कच्चा-चिट्ठा तो कोई नहीं जानता। केवल इतना पता चलता है कि गांव पिहानी जिला हरदोई से बचपन में दिल्ली आए। सत्ताकामी राज में राजाओं-बादशाहों के युद्ध में दिल्ली श्मशान हुई। रसखान का मन उचट गया, वृंदावन चल पड़े और वहीं ब्रह्मलीन हुए। आज भी वहीं समाधि में सुख से पड़े हैं।

वास्तविकता यह है कि रसखान को देशव्यापी युद्ध, अराजकता, नरसंहार तथा भयंकर दुर्भिक्ष देखने पड़े। सत्ता-लोलुप भेड़ियों से उनका मन टूट गया। हर तरह की ठसक को ठोकर मारकर वे ब्रजपति के पास गए। इस घटना का पूरा संकेत रसखान ने 'प्रेमवाटिका' के अंत में दिया है—

''देखि गदर हित साहबी,
दिल्ली नगर मसान।
छिनहि बादशाह बंस की
ठसक छोरि रसखान।
प्रेम-निकेतन श्री बनहि
आइ गोवर्द्धन धाम।
लौ सरन चितचाहि के,
जुगल स्वरूप ललाम।।
तोरि मानिनी ते हियो
फोरि मोहिनी-मान।
प्रेमदेव की छबिहि लखि,
भए मियां रसखान।।''

ब्रजभूमि में जाकर रसखान को अपार सुख मिला। कहां तो राजनीति की हाय-हत्या, कहां कृष्ण-राधा का संग और रंग। इस रंग ने उनके मन को 'बाबरा' कर दिया। ''राधा माधव सखिन संग बिहरत कुंज कुटीर। रसिक राज रसखानि जहं कुजत कोइल कीर।'' रसखान का मन मणि-कुट्टिम महलों की महत्त्वाकांक्षा को धिक्कारता है और गांव, गाय-जमुना-वन-वैभव पर स्वच्छंद भाव से झूमता है। दरबारी-संस्कृति की झूठी दमक और शाही-वैभव को हिकारत की निगाह से देखने वाले इस लोक संवेदना के कवि ने कई छंदों में 'वैभव-विलास' पर भी लिखा है—जैसे ''कंचन मंदिर ऊंचे बनाइ के मानिक लाइ सदा झलकैयत। प्रात ही ते सगरी नगरी नगमोतिन की तलैयत। उद्यपि दीन प्रजान प्रजापति की प्रभुता मघवा ललचैयत। ऐसे भए तो कहा रसखानि जो सांवरे ग्वाल सों नेह न लैयत।'' दरबारी ठसक से सांवरे लाल का प्रेम बहुत बड़ा है। यही प्रेम-प्यास रसखान को ध्रुवदासजी के पास ले गई।

उन्होंने राधा-वल्लभीय प्रेम-तत्त्व को समझा और अपनी नई राह निकाली। देश भाषाओं का भक्तिकाव्य भक्ति के रास्ते पर ही जाग्रत हुआ, तमिलनाडु के प्राचीन कवि-संतों की रचनाओं में उत्पन्न हो कर, कन्नड़ के भक्र रचियताओं के कीर्त्तनों में बढ़ कर तथा मध्ययुगीन ब्रज के कवि गायकों के पदों में पुनः जीवित होकर। गायन नृत्यादि, रास तो

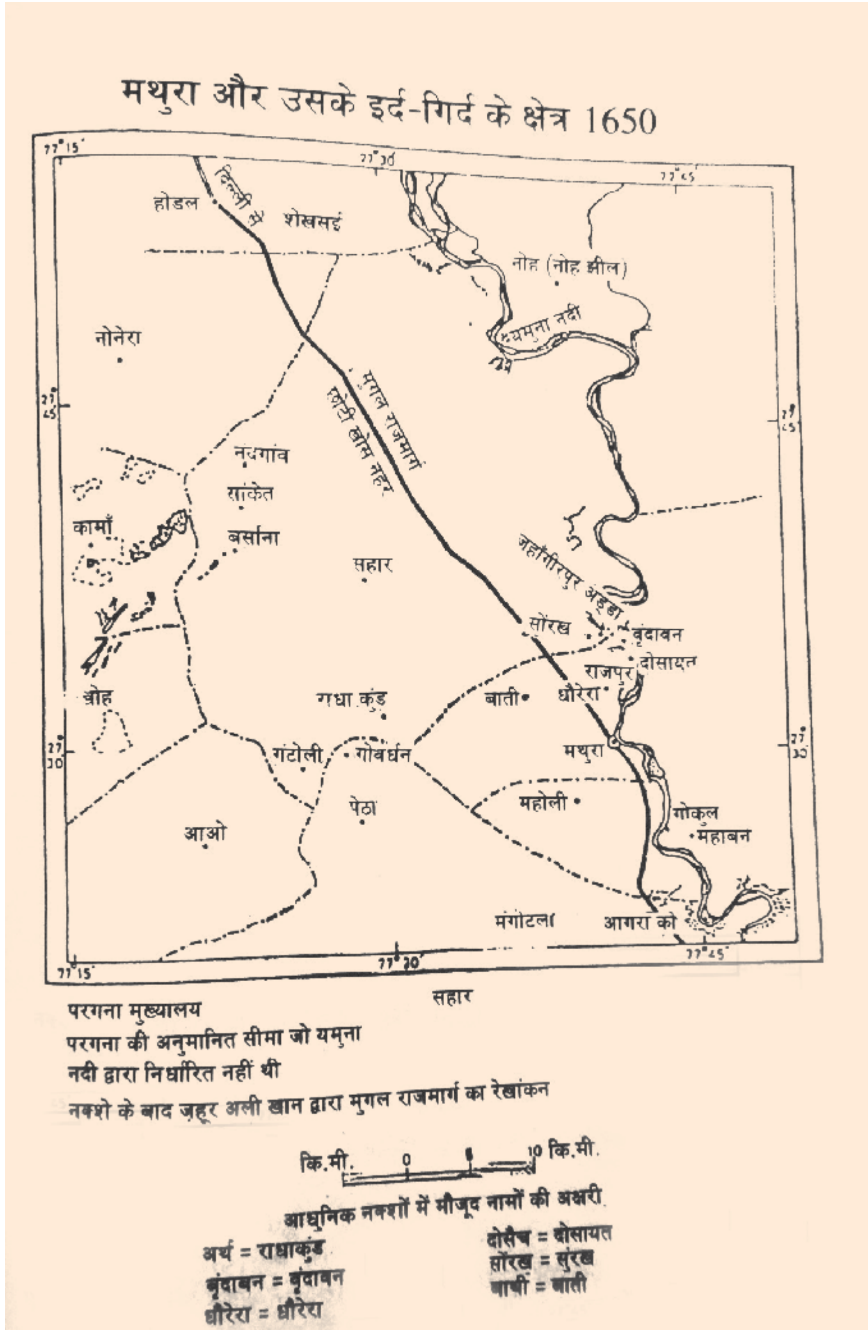

(ब्रज-वृंदावन के आस पास। स्त्रोत : इरफान हबीब)

शृंगार ही हैं, रसखान ने इन्हें कम थोड़े ही न गाया है।

रसखान के लिए ब्रज भूगोल-इतिहास नहीं है, पूरी रस-प्रक्रिया है, रस-निष्पत्ति है। ब्रजनायक कृष्ण की पूरी जीवन-यात्रा क्या है? ब्रज है—वे कभी कहीं रुके नहीं, जेल में जन्मे और चल निकले, पैरों चलने लगे तो गोकुल छान मारा, गोकुल से निकले तो वृंदावन में गाय चराने वंशी बजाने लग गए, वृंदावन से मथुरा गए। मथुरा से जी उचाट हुआ, तो द्वारिका चल पड़े। फिर द्वारिका को छोड़कर अकेले हो गए। पीपल के वृक्ष का आश्रय लिया। श्रीकृष्ण स्थिर नहीं रहते—निरंतर गति रखते हैं—व्रजन, परिव्रजन, प्रव्रजन, निव्रर्जन यही तो श्रीकृष्ण हैं। ब्रजभूमि कृष्ण को एक बार नहीं बार-बार जन्म देती है—'जयति तेधिकं जन्मना ब्रजः श्रूयत इंदिरा शश्वदत्रहि।' भागवतकार

व्यास को पता है, कि इस ब्रज में इंदिरा का स्थायी निवास रहता हैं। अनंत गोपियां कृष्ण को तलाशती रहती हैं और तलाश कभी अंत नहीं पाती। पंडितों ने खोजकर बता दिया है कि ब्रज का सबसे पुराना संदर्भ यजुर्वेद में मौजूद है। यहां अग्नि से प्रार्थना की गई है, कि हमें 'गोमन्तं ब्रजं' गऊओं वाले ब्रज में प्रवेश कराओ। अर्थात् ब्रज ही गोलोक है—गऊएं सूर्य की ऊर्ध्वगामी किरणें हैं, वही विष्णु का धाम है—वहां मधु का झरना प्रवाहित रहता है। गऊओं को इंद्रियां माना गया है और गोलोक ब्रज को इंद्रिय-गोचर जगत। जीवन का पूरा राग-रंग ब्रज है, क्योंकि यहां ब्रजपति लीला-रत होता है। वहीं पर नर-नारायण राधा-राधा पुकार रहा है और राधा के पैरों को पलोट रहा है—स्वयं रसखान ने इस दृश्य का साक्षात्कार किया है—'बैठो पलोटत राधिका पायन'। यह ब्रज कृष्ण की भांति ही नर-नारी को अपनी ओर खींचता है।

कृष्ण का व्युत्पत्तिलब्ध अर्थ है—आकृष्ट करना, अपनी ओर खींचना ही जिसका स्वभाव है, जो हरा-भरा श्यामल है—जीवंत, चित्ताकर्षक वही श्याम-सुंदर है। कृष्ण में कृष् का अर्थ है—जोतना, धरती में बीजवहन की क्षमता उत्पन्न करना। बंजरपन को तोड़ना और सृजन की गति का संचार करना। स्थिति और गति दोनों को खींचना। यही कृष्ण का मोहन-भाव है। यही मोहन-भाव रसखान की कविता में रचा-बसा है। यही मोहन यहां गोपियों की छाछ पर नाच रहा है—प्रेम-राग में बंधा आता है—

'गावै गुनी गनिका गंधर्व और
सारदा सेस सबै गुन गावत।
नाम अनंत गनंत गनेस ज्यौं
ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत।
जोगी जती तपस अरु सिद्ध
निरंतर ताहि समाधि लगावत।
ताहि अहीर की छोहरियां
छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत।।''

श्रीकृष्ण और ब्रजभाव में इस देश के सभी प्रदेश निमग्न रहे हैं। इस भाव ने सभी को खींचा है और खींचकर बांध दिया है। इस बंधने में ही सभी ने सच्चिदानंद घनश्याम को पाया है। हिंदू-मुसलमान सभी को ब्रज-भाव और ब्रजभाषा की मिठास ने एक किया है। जन-साधारण के कंठ में ब्रजभाषा के सवैये, घनाक्षरी, दोहे, सोरठे बसते थे। रसखान के सवैये तो जनता जीवन मूल्य और जीवनरस मानकर कंठस्थ करती रही और आज भी यह परंपरा जीवंत है। ब्रजभाषा का शायद ही कोई कवि, बाल-कंठों से इतना अधिक गाया हो, जितने कि रसखान गाए गए हैं।'

वेणु की ध्वनि मीठी है। गाएं मीठी है। गोरस मीठा है गोवर्द्धन के पास की गोचर भूमि में रसखान रचे बसे हैं वंशी की ध्वनि में, ब्रज की धूलि में, रास में रमे हैं रसखान। मुरली को चुराने का क्रम तो सूरदास से लेकर सारे भक्त कवियों ने गाया है। निरगुनिया कहां जाएंगे। आखिर भक्ति काव्य की एक धारा वह भी तो प्रवाहमान रही है आदिकाल से।

पूरी भक्तिकाव्य में वंशी की ध्वनि का संबंध अनहदनाद से है। योग-साधना वाले शरीर में ही समुद्र-गर्जन, मेघ-गर्जन, और भेरी-झर्झर आदि जैसी ध्वनि की खुलकर चर्चा करते हैं। वंशी, वीणा और भ्रमर की गुंजार-ध्वनि पर साधकों ने बड़ा ध्यान केंद्रित किया है। उलटवांसी शब्द की व्युत्पत्ति में ही उलट वंशी (बांसुरी) की खोज की गई है—'बाजत अनहद बांसुरी तिरवेनी के तीर'। कृष्ण भक्त कवियों ने बांसुरी' को कृष्ण की योगमाया शक्ति का प्रतीक माना है—रस रूप और रस शक्ति भी। रसानुभूति ने दैहिक अनुभवों की विस्मृति है। व्यक्तित्व का विगलन है। कृष्णरस की वर्षा बांसुरी से होती है। यही कृष्ण-भक्ति का रस-स्वभाव है, रस तत्त्व है, लीला-भाव की क्रीड़ा है—

''मदन मोहन बेनु बजावन
मोहन-नाद सुनत भई बावरी।
बंछरा खीर पीवत थन छाड्यो
दांतन तृन खंडित नहि गांवरी।
अचल भए सरिता मृग पंछी
खेवट चकित चलन नहिं नाव री।
कमल नयन घनस्याम मनोहर
सब विधि अकथ कथा है रावरी।
परमानंद स्वामी रति नाइक
यह मुरली रस-रूप सुभाव री।''

यह रसानुभूति एकांत-अनुभूति न होकर समाईमूलक, मंगलमूलक है। इसमें भी बाहरी वृत्तियां स्थगित रहती हैं।

नंददास का तो विश्वास है कि श्रीकृष्ण ही रस तत्त्व हैं। यही विश्व रस है। यही रस-सागर का आनंद ज्वार है। यह रस ही 'प्रेम-तत्त्व' का पर्याय है और गोपियां ही इसकी 'प्रेम-निपुणा' हैं। यही शुद्ध प्रेम-रस परम एकांत में निकुंज रस है—मधुर रस का शृंगारी रूप है। यह परम-रस, महारस या प्रेम-रस ही अनिर्वचनीय आनंद है—यही प्रेम घन-वर्षा का आनंद रस है। यह रस मोहक द्रावक एवं स्तंभक है। भक्ति-रस कैसे अमिय-रस-सागर है, यह अनुभूति नंददास की तरह रसखान के गोपी भाव में प्रबल है। रसखान में प्राणों की तड़प, आकुलता और तन्मयता का तत्त्व अष्टछाप के कवियों से ज्यादा है। कृष्ण की बांसुरी गोपियों को, ब्रज को तन्मय कर लेती है—

''मोहन की मुरली सुनि कै वह
बौरी ह्वै आनि अटा चढ़ि झांकी।
गोप बड़ेन की डीठि बचाइ कै
दीठि सौं दीठि मिली दुहु घांकी।
देखत मोल भयो अंखियान को
करै लाज कुटुंब पिता की।
कैसे छुटाई छुटैं अटकी
रसखानि दुहूं की बिलोकनि बाकी।''

रसखान के पूरे प्रेम का सौन्दर्यशास्त्र तन्मयता में है- जिसमें 'कुलकानि' टूट जाती है। क्यों टूटे 'कुलकानि' मोहन की मोहिनी तान की ताकत ही ऐसी है—

''ए सजनी वह नंद को सांवरो
या वन धेनु चराइ गयो है।
मोहिनी तानिन गोधन गाइ कै
बेनु बजाइ रिझाइ गयो है।
ताही घरी से कछु टोना सो कै
रसखानि हिए में समाइ गयो है।

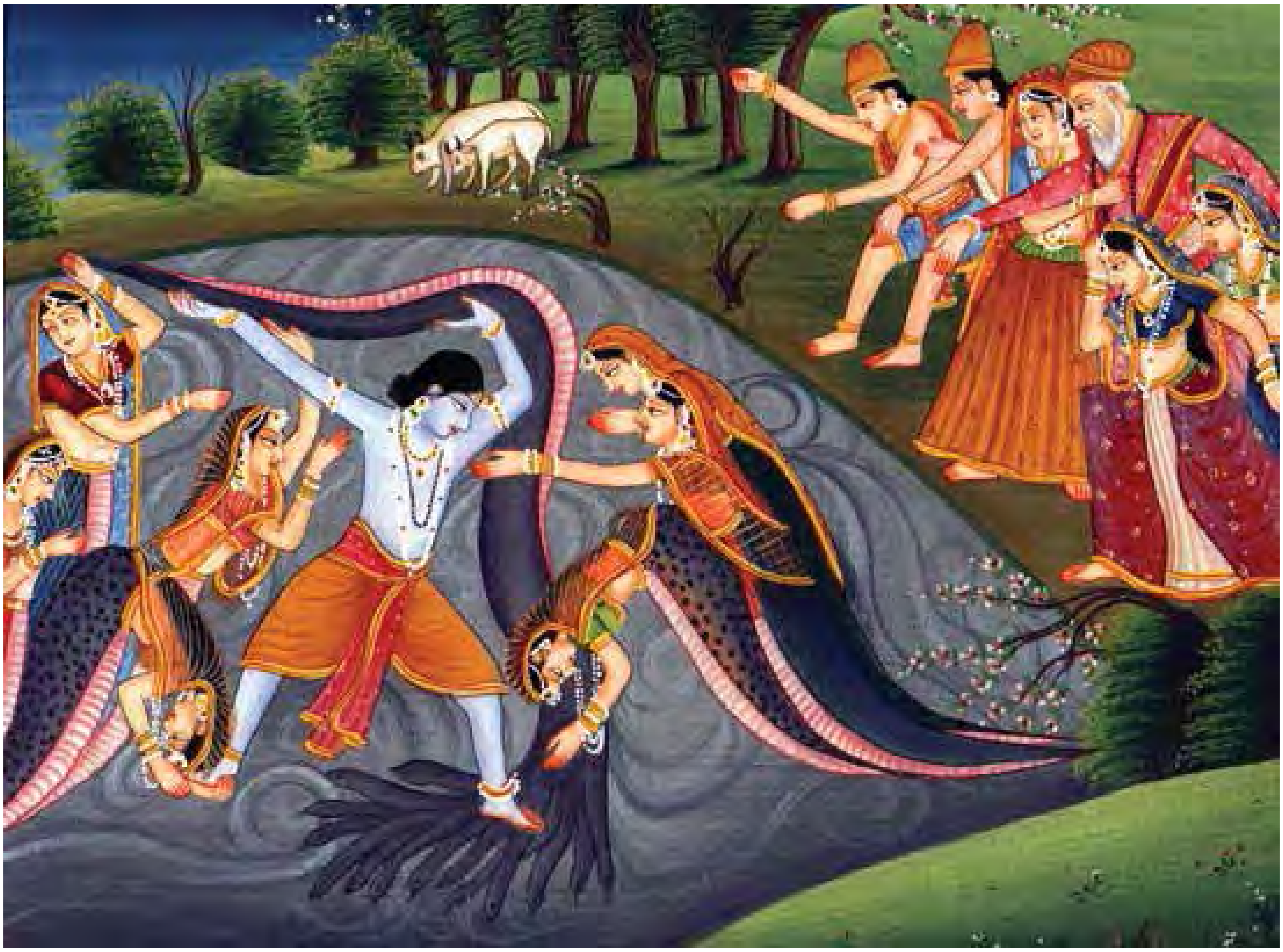

कोऊ न काहू की बात सुनै सिगरो
ब्रज वीर बिकाइ गयो है।''

संपूर्ण ब्रज-रस इस बांसुरी के रस में समाहित है। रसखान के चित्त में कृष्ण रस का लोक सौंदर्य उमड़ता-घुमड़ता है—

''गोरज बिराजै माल लहलही बनमाल
आगे गैया पाछे ग्वाल गावै मृदुतान री।
तैरी धुनि बांसुरी मधुर-मधुर तैरी
बंक चितवनि मंद-मंद मुसकानि री।
कदम विटप के निकट तटनी के आव
अटा चढ़ि चाहि पीत पट फहरानि री।
इस बरसाबै तन तपन बुझावै नैन
प्राननि रिझावै वह आवै रसखानि री।''

यह रूप इतना मदमस्त है कि नवेली दुल्हिनों को समझाया जाता है कि वे स्याम रंग की मुस्कान और तान से बचकर रहें—

''अरी अनोखी बाम, तूं आई गौने नई।
बाहर धरसिन पाम, है छलिया तुव ताक मैं।''

पर यह छलिया अपना जादू किए बिना रह नहीं पाता। रसखान एक पूरी प्रेम दीवानी गोपी रूप-गति की बिंब माला खड़ी कर देते हैं और ऐसा लगता है सब कुछ आंखें के सामने हो रहा है। 'दूध दुह्यो सीरो'' कर देते हैं—

''दूध दुह्यो सीरो परयो, तातो न जमायो
करयो जामन दयो सो धरयो-खटाइगो।
आने हाथ आन पाइ सबही।
के तबहीतें, जब हीते रसखानै तानन सुनाइगो।
ज्योंही नर त्योंही नारि तैसी तरुन बारी।
कहिए कहारी सब ब्रज बिललाइगो।
जानिए न आली यह छोहरा जसोमति को।''

बांसुरी की महिमा ने ब्रज को बैकुंठ से ऊपर कर दिया है।

बांसुरी का प्रभाव नाद ब्रह्म की लीला का महारस है—सभी को बंधनों से मुक्त कर स्वच्छंद करता है—गति एवं लय से भर देता है। एक नवेली ठीक कह रही है—

'कानन दै अंगुरी रहिबो जब ही
मुरली धुनि मन्द बजै है।
मोहिनी तानन सों रसखानि
अटा चढ़ि गोधन गैहैं तो गैहैं।
टेरि कहां सिगरे ब्रज लोगन
काल्हि कोड कितने समुझै है।
माइ री वा मुख की मुस्कानि
सम्हारि न जैहै न जैहे न जैहै।।''

आनंद रस का प्रवाह उमड़ा हो और बनवारी अपनी पर आमादा हो तो किसी का वश नहीं चल सकता—

''बजी है बजी रसखानि बजी सुनि

कैअब गोप कुमारि न जी है।
न जी है कोऊ जो कदाचित कामिनी
कानि मैं बाकी जू तन कू पी है।
कु पी है विदेश सैंदस न पावति
मेरी व देह को मैन सजी है।
सजी है तो मेरा कहा बस है
सु तौ बैरिनि बांसुरी फेरि बजी है।''

रसखान की पूरी मनोभूमिका में ब्रजपति का रस-रास छाया हुआ है। मधुर-रस का स्वाद ही जीवन का अमृत है—

'अधर लगाय रस प्याय बांसुरी बजायी
मेरा नाम गाय हाथ जादू कियो मन में।
नटवर नवल सुघर नंदनंदन ने,
करि कै अचेत चेत हरि है जतन में।
झट-पट हरि है जतन में।
झट-पट उलट-पुलट हट परिधान
जान लागों लालन पै सबै बान बन में।
रस रास सरस रंगीलो रसखनि आनि,
जानि जोरि जुगुति बिलास किये जन में।''

अपना मन अपना न रह जाए वह ब्रजपति का हो जाए—यही जीवन की गति है। इसे पुकारना ही जीवन का प्रेम छंद है—

''एहो बनवारी बलिहारी जाऊं तेरी आजु
मेरी कुंज आइ नेकु मीठी तान गाउ रे।
नंद के किसोर चित चोर मोरपंख वारे
बंसीवारे सांवरे पियारे इत आउ रे।''

कृष्ण के रस-रंग के आगे सभी ऐश्वर्य झूठा है, सारा राजपाट व्यर्थ है—इसीलिए रसखान 'ह्यां के गजमोती माल बारौं गजमालन पै' की धुन में मगन हैं। उन्हें सोने के महल नहीं चाहिए। ब्रज के रस-रंग चाहिए—वह चाहिए जो बनवारी की बांसुरी से मिलता है, चोरी से मिलता है। वह चाहिए जिसे सोकर जसोदा ने पा लिया है। जिसे योगी जागकर भी नहीं प्राप्त कर सकता है।

प्रेम से जो 'अरे हरि चेरी को चेरी भयो है।' कुबरी दासी का जो दास हो गया है, वह श्रीकृष्ण रसखान का प्राणपति है। उसी के लिए प्राण धड़कता है, तड़पता है और कहता है—'मेरे बनमाली को न काली तें छुड़ाव ही।' श्रीमद्भागवत की कथाओं का रस रसखान की कविता में निरंतर उफनता रहता है।

प्रेम 'रंग में प्रिया-प्रिय एक रूप हैं, एकाकार हैं। द्वैत ने अद्वैत पा लिया है। वर्षा आने वाली है। गोपी दही लेकर मटकती चलती है। नख से शिख तक प्रेम-वस्त्र (नीला-वस्त्र) पहन लिए हैं और अचानक मनमोहन मिल जाते हैं तो नीले वस्त्र में दीपित पूरा शरीर 'लली' का कांप उठता है—गोरी-गोल गुमान भरी कंचन काया थरथरा उठती है। आकाश में बादलों के बीच दामिनी दमकती है और धरती पर नीले वस्त्र पहने हुई प्रिया (राधा) कांप उठती है। जाने क्या होगा, जाने क्या होने वाला है, भीतर-ही-भीतर तड़प उठती है। मन के घिरे हुए बादलों में मानो बिजली कौंध जाती है। रसखान ने प्रेम का ऐसा अद्भुत बिंब प्रस्तुत किया है, जैसा कि कृष्ण काव्य-परंपरा में ही न केवल दुर्लभ है बल्कि एकदम रम्याद्भुत—

''पहिले दधि लै गई गोकुल में
चखचारि भए नट नागर पै।
रसखान करी उन चातुरता
कहैं दान दै दान, अरे अरपै।
नख सों सिख लौं पट नील लपेटे
लली सब भांति कंपे डरपै।
जनु दामिनी सावन के घन तैं,
निकसैं नहि भीतर ही तरपै।।'

रसखान के प्रेम-तत्त्व को समझने के लिए भागवत के प्रतिपाद्य को भाव-विभोर होकर ग्रहण करने वाली तपस्या चाहिए। यह तपस्या केवल नर-देह से ही संभव है। देह-धारी होने के कारण ही समस्त प्राणियों के साथ तादात्म्य का अनुभव करने में मानव सर्वाधिक समर्थ है। क्यों समर्थ है? क्योंकि उनमें ज्ञान-बोध अन्य प्राणियों से अधिक है। इस ज्ञान-बोध के भीतर ही भाव-प्रसार होता है और यह भाव-प्रसार शक्ति सभी को जोड़ती है। यह उसका स्व-भाव है। श्रीकृष्ण तो अखंड जीवन-प्रवाह को निरंतर प्रवाहित करने वाली शक्ति हैं। स्वयं प्रकृति उनके लिए ही फल है।' प्रेम एकाधिकार चाहता है—प्रेमिका-प्रेमी पर किसी की छाया तक बर्दाश्त नहीं कर सकती है, प्रेम-राग के एक रहस्य की जानकारी में रसखान बहुत आगे हैं। इतना प्यार-पराग पाकर भी निर्मोही मथुरा चला जाए, यह बर्दाश्त करने योग्य नहीं है—

'सांझ से भोर लौं भोर से सांझ
लौं गोपिन चातक यो रट लाई।
एरी भटू कहिए तो कहां कहूं
बैरी अहीर ने पीर न पाई।।'

माखन-सा मन चखकर भी माखनचोर का यह बर्ताव। 'त्रिभंगी' तोड़ना जानता है—'काज समाज सबै कुल लाज लला ब्रजराज के तोरत हैं।' पर करें क्या, लला की मुसकान आंखों की लाज तोड़ देती है, मटकी फोड़ देती हैं—गोरस छीनकर छक लेता है—

''रसखानि लखे मन खोय गयो
मग भूलि गई तन की सुधि सातो।
फूटि गायो दधि को सिर भाजन
टूटिगौ नैनन लाज को नातो।'

और 'खंजन नैन फंसे पिंजरा छवि' की गति यक हुई कि 'चित्र लिखी-सी भई सब देह न बैन कढ़ै मुख दीन्ह दुहाई।' कुछ भी हो प्रेम में हर जोखिम उठाना पड़ेगा। यह प्रेम-रंग ही होली है। इस होली के रंग में पता ही नहीं चलता है कि ब्रजबाला ज्यादा रंगी हुई है—या श्रीकृष्ण ज्यादा रंगे हुए हैं। 'होरी भई कै हरी भए लाल कै लाल के लागै पगी ब्रजबाला।'

यह लीला निरंतर होती रहती है, वह किसी देश और काल में न घटती है न बंधती है, बल्कि हर बार नई होती रहती है। सुहागभरी नवेलिन दुल्हनें या मनमोहिनियां निरंतर इसी प्रेम-रूप पति श्रीकृष्ण के साथ होली खेलती रहती हैं। उनकी रंगभरी पिचकारी हमेशा लाला के लिए तैयार रहती हैं। रतिनागर ही रति की लूट करते हैं—

'अंगनि अंग मिलाय दोउ,
रसखानि रहे लपटे तरु छांही।
संग निसंग अनंग को रंग
सुरंग सनी पिय दै गलबांही।।

बैन ज्यों सु ऐन सनेह को
लूटि रहे रति अन्तर जाहीं।
नीबी गहै कुच कंचन कुंभ
कहै वनिता पियनाही जू नाहीं।'

वनिता की 'ना' का अर्थ 'हां' से अधिक है— यह प्रेम-व्यंजना रति-नायक को ही समझ में आती है। ब्रज बालाओं का मन इसी 'मोहन-भाव' ने हर लिया है—यह भाव ही निर्वैयक्तिक परंपरा का सामूहिक चित्त है, बिंब है—

''बंक विलोकन है दुःख मोचन
दीरघ लोचन रंग भरे है।
घूमत बारुनी पान किये
जिमि झूमत आनन रंग ढरे है।''

यही बनवारी ब्रज-बालाओं की आंखों में झूमता रहता है। यही गोपवेश में विष्णु है, कामदेव का अवतार है, कमल नयनों का सूर्य है। यही वह प्रवाह है जिसे गोपियां भरती हैं, उलीचती हैं और फिर-फिर खाली होकर भरती हैं। रसखान की कविता 'मॉडर्न' भारतीय को प्रेम-भाव का धोखा दिखाई देती है। कारण, इस 'मॉडर्न' में इस काव्य को समझने का संस्कार ही नहीं है। शेष है तो भाव-विकृतियों का शरीरवाद-देहवाद। साहित्य शब्द का शुद्ध अर्थ ही यह 'मॉडर्न' भूल गया है—वह सोच ही नहीं सकता कि नर-नारी के 'नारायण' अद्वैत कैसे होते हैं। हित का भाव रखने के कारण ही साहित्य कैसे आत्म-विसर्जन की ओर ले जाता है। श्रीमद्भागवत की भाव-भूमि से उत्पन्न रसखान के काव्यास्वादन के लिए व्यक्ति को विकृतियों से छूटकर 'सहृदय-चक्रवर्ती' न सही, पर सच्चा भावक (परमहंस) तो बनना ही पड़ेगा। रसखान का काव्य ही वह मानसरोवर है—जहां प्यासे परमहंसों को तृप्ति मिल सकती है।

रस-भाव भरी लीला कृष्ण द्वैपायन व्यास की व्याकुलता दूर कर सकती है, उन व्यास की जिसने महाभारत रचकर, वेद को संहिताबद्ध करने पर भी खालीपन और बेचैनी का अनुभव किया था। नारद ने बेचैन-व्यग्र व्यास से पूछा—इतनी खिन्नता (अथापि शोचस्यात्मानमकृतार्थ इव प्रभो) क्यों? नारद ने ही यह भी कहा कि इस खिन्नता का कारण यह है कि आपने वासुदेव लीला का मधुरामृत पान नहीं किया, रस-नागर की लीला नहीं गाई। फिर श्रीकृष्ण भाव के बिना निरंजन ज्ञान भी व्यर्थ है—''नैष्कर्म्यमप्य-च्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरंजनम्।'' नारद ने अपने लीला-रस-पान का इतिहास सुनाया और व्यास ने 'ध्यान-समाधि' लगाकर श्रीमद्भागवत की रचना कर डाली। रचने के बाद अपार तृप्ति का अनुभव किया। पूरी भागवत कथा को 'सुत-शौनक संवाद, शुक-परीक्षित संवाद, मैत्रेय-विदुर संवाद और श्रीकृष्ण-उद्धव संवाद' में पूरा किया। पूरी कथा का मर्म कवि रसखान ने समझा और वही मर्म उनकी काव्यात्मकता का मूल सौंदर्य है। ''स्याम सघन घन घेरि कै, रस बरस्यो रसखानि। भई दिवानी पान करि, प्रेम मद्य मनमानि।'' घिरकर सघन घन श्याम रसखान पर बरसता है। उनका अंदर-बाहर

सब भीग जाता है। यही भावशक्ति पाठक भी इस कविता को पढ़ने से पाता है। वह भी भीतर तक भीग जाता है—

''ब्याही अनब्याही ब्रजमाही सब चाही तासों
दूनी सकुचाई दीठि परै न जुन्हैया की।
नेकु मुसकानि रसखानि की विलोकत ही,
चेरी होत एक बार कुंजनि दिखैया की।
मेरो कह्यो मानि अन्त मेरी गुन मानि हैरी,
प्रात खात-जात ना सकात सौंह भैया की।
माइ की अंटक जौलौं सासु की हटक तौलों
देखी ना लटक मेरे दूलह कन्हैया की।''

ब्रज की लीला में अनेक आचार्यों ने भक्तिरस की स्थापना की। वल्लभाचार्य, रूपगोस्वामी, मधुसूदन सरस्वती ने भक्ति रस को शास्त्रीय ढंग से समझा। भक्ति-रसायन, श्री हरिभक्तिरसामृतसिंध, रासपंचाध्यायी, वेणुगीत प्रसंग (भवत की सुबोधिनी टीका) में दुहराया गया है—

''विभावैघ्रनुभावैश्च सात्त्विके व्यभिचारिणः।
एषा कृष्णारति : स्थायीभावो भक्तिरसो भवेत्।।''

आगे के युगों की आहट, रीतिकाल (डा. राम कुमार वर्मा का 'कला काल') का पुट रसखान में भी खोज सकते हैं। केशव, बिहारी, देव, मतिराम, पद्माकर की बराबरी के सवैयों के उदाहरणों में बराबर रसखान के भी अनेकानेक छंद हैं। उक्त रीतिकालीन कवियों के सवैये आज भी विद्वानों को कंठस्थ है।

भागवतकार की तरह रसखान ने नारी-देह, नारी-मन और नारी-चित्त को जो विस्तार एवं गहराई दी है—वह अमित और अनंत है। प्रेम के क्षणों में लला की 'झटका झटकी में फटो पटुका हरकी अंगिया मुकता झरिकै' से संयोग की शोभा बढ़ जाती है। गोपी के मन में यह पछतावा रह जाता है कि सास-ननद-जिठानी सभी के ताने सहती हूं—'कलंक लग्यो पर अंक न लागी।' कलंक लग ही गया है—तो मन-भर मिलते क्यों नहीं—'बावरी जो पै कलंक लग्यो तौ निसंक ह्वै क्यों नहीं अंक लगावत।' प्रेम-वियोग की आग दीपशिखा है—भभक-भभककर जलती है—'मोहन जू के वियोग की ताप मलीन महा द्युति देह तिया की। पंकज सों मुख गो मुरझाय लगैं लपटैं बिरहागि हिया की। ऐसे में आवत कान्ह सुने रसखान सु तनी तरकी अंगिया की। यों जग जोति उठी तम की उकसाय दई मानो बाती दिया की।'' प्रेम की प्यास में बांसुरी खून पीती है।

हिंदी के आदिकाल में हिंदू राज्याश्रय के अंतर्गत संगीत, नृत्य, वाद्य, चित्र एवं कवियों को प्रोत्साहन मिला। कोटा, बूंदी, बीकानेर, अजमेर, जयपुर, जोधपुर राज्यों में कलाओं को समृद्धि मिली, मुगल शासन में भी इसका प्रभाव पड़ा।

इस काल में साहित्य की नायक-नायिका भेद की भांति 'राग-रागिनी' समन्वय की या उनके मिलाय की रचनाएं की गई। प्रत्येक राग की रागिनियों का निर्धारण तीव्रता एवं आरोह के आधार पर हुआ। केशव की 'रसिक प्रिया', बिहारी के सनस के दोहों पर चित्रकारी हुई। कृष्णभक्ति में नाथद्वारा की पिछवाई भी प्रसिद्ध है। कवियों के भक्तिपद गाए-बजाए-नचाए-दिखाए गए। संगीत नृत्य, काव्य, कौशल, चित्र सबकी उन्नति तत्कालीन समाज में हुई। समन्वय समाज में स्पष्ट था।

भाव में मथुरा भूमि, ब्रज मंडल हो गई थी। भक्त कवियों ने, गोस्वामी, चैतन्य, जयदेव ने रस का ऐसा महिमा-मंडित रास रचा दिया था, कि 'अरिथ' को 'राधाकुंड' नाम मिल गया। जीव गोस्वामी, रूप गोस्वामी ने दार्शनिक पृष्ठभूमि भी तैयार कर दी थी। भागवत के नए ब्रजभाषा पैरोकारों में अनेकानेक गणमान्य नाम हैं। सगुण भक्ति की काव्यधारा सूफी, प्रेम-पदावली, सूर, तुलसी सब में बही थी। निर्गुण का भी अपना छंद विस्तार था। अवधी तथा ब्रज की लोकभाषाओं में संस्कृत के दर्शन का, वेद अध्यात्म का निचोड़ ''नाना पुराण निगमागम सम्मत'' हो चला था।

पर समाज क्या था? भक्ति ने कितना मरहम और समन्वय का काम किया—इसे कैसे देखेंगे? इतिहासकार की नजर से, समाज वैज्ञानिक की नजर से, रसिक की नजर से, नृत्य संगीत में प्रवीण की नजर से, सबुज श्याम नक्शों तथा फरमानों-दस्तावेजों की नजर से। नजरिये अनेक हो सकते हैं।

इरफान हबीब, तारापद मुखर्जी, शीरीं मुसवी ने मंदिरों के दस्तावेजों की छानबीन की है। तत्कालीन समाज के बदलते संबंधों पर रोशनी भी डाली है। द्रष्टव्य मुगलकालीन भारत से संबंधित पुस्तिकाएं—मध्यकालीन भारत भाग 4 पृ. 132-161, जिसमें से एक चित्र तत्कालीन नक्शे को लेख में दे रहा हूं। अरिथ से राधाकुंड का नाम पड़ जाना दस्तावेजों में दर्ज है। (देखें इंडियन हिस्टारिकिल रिव्यु का 2010 का अंक नं. 38 पृ. सं. 211-224).

दर्शन, मंदिर, वृंदावन पर चैतन्य महाप्रभु तथा संप्रदाय के लोग जीव गोस्वामी, रूप गोस्वामी आदि के अधिकार, क्षेत्र, मंदिर भूमि, गोचर क्षेत्र आदि का विवरण ग्रंथों (सौंदर्य शास्त्र के भी), तत्कालीन संप्रदायों के विवरणों, वैष्णवों की वार्ता में मिलेगा। आज के इस्कॉन में प्रभुपाद एवं श्रीलपाद के भक्तों-अनुयायियों की टोली को समझने के लिए रसखान के युग को, छंद को, शैली को, लोकरंजन की शक्ति को समझना जरूरी होगा। उत्तर प्रदेश के खानकाहों के अनेकानेक संरक्षक तथा उनके परिवारों ने कृष्णभक्ति की परंपरा को बदस्तूर कायम रखा है। उर्दू एवं हिंदी के गीतों में, गायन की परंपरा में, बंदिशों में रसखान जिंदा है। रासलीलाओं, ब्रज की होली, विदेशों में नए मंदिरों के स्थापना से नृत्य-गायन की परंपरा में रस-छंद में, दोहों सवैयों में रसखान की अमरता स्वयं सिद्ध है।

ब्रज की भूमि क्यों? क्या रूप गोस्वामी, जीव गोस्वामी, वल्लभाचार्य, चैतन्य संप्रदाय, इस्कॉन के लिए प्रसिद्ध है? या रसखान को जन्म-जन्मांतर के लिए रिझा कर रखने के लिए? कहां है ब्रज का अमरत्व? चैतन्य के बंगाल में तो रासमंडल नृत्य के चित्रों से, शिल्पों से, मूर्तियों से तथा मंदिर के स्थापत्य तक भर जाते हैं। विशेषरूप से बंगाल के मंदिरों में जैसे—देखें पीक घोष का चित्र

(जानीन मोंजीला की कलाकृति बनारस की चिड़ियां)

उसके पास बनारस की चिड़ियां आयीं / वह कभी बनारस नहीं गई थी / बनारस की चिड़ियां उन्हीं के पास आती है
जो कभी बनारस नहीं गए होते हैं / सिर्फ चिड़ियां आईं, बनारस नहीं....''

एवं आलेख—कृष्ण'ज डांस एंड डिवोशन इन द टेंपल्स ऑफ सेवेंटींथ सेंचुरी बंगाल (एक्सप्लोरिंग मेडिवियल इंडिया भाग-1, मीना भार्गव द्वारा संपादित)। वृंदावन में मन रमता क्यूं है? सबके उत्तर अलग हो सकते हैं। अपना उत्तर आप स्वयं है। अप्प दीपो भव। रस तो बरसेगा ही। 'प्रेमवाटिका' में भ्रमिए या 'दानलीला' में, 'सुजान-रसखान' से दूर जाना संभव नहीं।

तो अंत में क्या ब्रज की चिड़ियों से पूछूं कि कहां हैं? बनारस की चिड़ियां तो श्रीमती एस.एच. रजा के पेरिस के निवास तक यूं पहुंच जाती हैं। रसखान को भी शायद यह अच्छी लगे। ब्रज के करील कुंजो के पास की खुशबू बिखेरती हुई.... ''जो खग हौं तो बसेरो करौं...।''

बी-901, एक्जोटिका ईस्ट एक्वायर,
इंदिरापुरम, अहिंसा खंड-2,
गाजियाबाद-201010 (उत्तर प्रदेश)

रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रवर्तक – कवि रसखान

डॉ. सुनीति एस. आचार्य

कई पुरस्कारों से सम्मानित डॉ. सुनीति एस. आचार्य की आठ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। समीक्षा, कहानी एवं उपन्यास लेखन के अलावा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित।

सरसता के साकार सुमधुर कवि रसखान हिंदी काव्य में अपनी अलग पहचान बनाए हुए हैं। भावुकता में रसखान किसी से कम नहीं हैं। भक्तिकाल में वे जन्मे अवश्य पर उनमें बहुतेरी प्रवृत्तियां रीतिकालिक घनानंद जैसी परिलक्षित होती हैं। श्रीकृष्ण पर वे अपना सर्वस्व न्योछावर करते दिखाई देते हैं। अपने काव्य के मूल प्रतिपाद्य के कारण वे रीति-स्वच्छंद कवियों के अधिक समीप प्रतीत होते हैं। इनकी सर्वस्व समर्पणशीलता भक्ति के साथ प्रेम के क्षेत्र की है। प्रेम पयोनिधि में सतत डूबे रहने वाले रसखान की कविता में तन्मयासक्ति, सूर आदि श्रीकृष्ण भक्त कवियों जैसी है। पर वस्तुतः उन्हें भक्त के साथ प्रेमी कवि भी स्वीकारना चाहिए।

रीतिबद्ध ढांचे को जैसे रीति-स्वच्छंद कवियों ने अस्वीकृत किया और अपने प्रेम-पंथ पर उन्मुक्त होकर चले थे, वैसी ही प्रवृत्ति रसखान की काव्य रचना में निहित है। रीति-परंपरा का त्याग और प्रेमोन्मत्ता में काव्य-सृजन करना रसखान की विशेषता है। काल-क्रम की दृष्टि से रसखान भले ही भक्तिकाल की सीमा-रेखा में आते हैं, परंतु काव्य-व्यक्तित्व इन्हें घनानंद, बोधा जैसे रीति-रागी कवियों का सहधर्मी सिद्ध करता है। विद्वानों की खोज ने यह प्रामाणित कर दिया है कि सूर आदि के समकालिक अनेक कवियों ने रीति-कविता जैसे लक्षण-प्रतिपादन के छंद और ग्रंथ रचे थे। सूर कृत 'सारावली' और 'साहित्य-लहरी' में रीति-कविता के प्रभाव को लक्षित किया जा सकता है। अतः तुलसीदास के समकालिक रसखान में यह प्रवृत्तियां रीतिकालिक रीतिबद्धता की न होकर रीतिमुक्त काव्य धारा की हैं। इस प्रकार रसखान, आलम, घनानंद से भी पहले के स्वच्छंदतावादी कवि सिद्ध होते हैं। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी यही मत व्यक्त किया है–''ये प्रमोमंग के कवि गायक थे। अतः हिंदी की स्वच्छंद काव्यधारा के सबसे प्राचीन कवि रसखान ही ठहरते हैं। जिस प्रकार ये रीति से अपने को स्वच्छंद रखते थे, उसी प्रकार भक्तों की सांप्रदायिक नीति से भी। अतः ये भक्तिमार्गी कृष्णभक्तों, प्रेममार्गी सूफियों, रीतिमार्गी कवियों सबसे पृथक स्वच्छंदमार्गी प्रमोन्मत्त गायक थे।''[1] (पृ. 11)

स्वच्छंदतावादी सरस कवि रसखान की मूल संवेदना प्रेम की है। उनकी आंतरिक अनुभूति ही उनकी मूलाधार है। सूफी प्रेम संवेदना से इसका सादृश्य दृष्टिगत होता है परंतु बहुत अंशों में उससे भिन्न भी है। भारतीय प्रेम संवेदना में रहस्यात्मकता के दर्शन नहीं होते। सगुणोपासना ही इसका मूल कारण रही है। रसखान में अपने साहित्य के निखार की अपेक्षा प्रणय संवेदना ही प्रधान रही और इसी की अभिव्यक्ति उनके काव्य में हुई है।

रसखान का प्रधान उद्देश्य अपनी मनोगत भावनाओं की अभिव्यक्ति था। भावाभिव्यक्ति के लिए प्रबंध रचना की अपेक्षा मुक्तक रचना और विशेषकर गीत अधिक सबल साधन माने जाते हैं, किंतु रसखान ने गीत न लिख कर पुरानी काव्य परंपरा जो क्षीण प्रायः हो चली थी, अपनाकर एक बार पुनः अपनी स्वच्छंद मनोवृत्ति का परिचय दिया और साथ ही कवित्त तथा सवैया छंद में अपनी मधुर रचना कर उन छंदों को अमरत्व प्रदान किया। उन्होंने प्रेम विषयक दोहे भी लिखे हैं, जिनमें प्रेम का सैद्धांतिक विवेचन मिलता है। उनके प्रेम विषयक 52 दोहे 'प्रेमवाटिका' नामक पुस्तक में संग्रहीत हैं–

''बिधु, सागर, रस, इंदु, सुम,
बरस, सरस 'रसखानि'।
'प्रेम-वाटिका' रुचि-रुचिर,
चिर हिय हरखि बखानि।।''

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'प्रेमवाटिका' के अतिरिक्त रसखान का एक और ग्रंथ माना है, जिसका नाम है–'सुजान सागर'। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसके अतिरिक्त इनके दो ग्रंथ और माने हैं–'रसखान-शतक' और 'पदावली'। कुछ विद्वान 'अष्टयाम' नामक ग्रंथ भी इन्हीं का रचित मानते हैं।[2] (पृ. 13)

रसखान की कविता के मूल स्वर में कहीं भी अश्लील शृंगार की भावना दृष्टिगोचर नहीं होती। वे तो शुद्ध प्रेम के गायक और सच्चे प्रेमी थे। रसखान के काव्य का विषय वही है जो सूर का वर्ण्य विषय है। सूर जहां कृष्ण के बाल-स्वरूप की ओर अधिक आकर्षित रहे, वहीं रसखान भगवान कृष्ण के युवा रूप पर ही अधिक मोहित रहे हैं। कृष्ण-राधा, यमुनातट, मुरली, प्रेमलीला, करील-कुंज, गोचारण, चीरहरण तथा एकांत मिलन पर ही कवि की दृष्टि केंद्रित रही है, जिसमें अश्लीलता का समावेश नहीं है। इसका एक कारण यह भी है कि रसखान अपनी युवावस्था से ही प्रेमी जीव रह चुके थे और उनके गंभीर प्रेम की धारा का बहाव लौकिक से अलौकिक के प्रति मुड़ा था। उनके जीवन का लौकिक प्रेम जब श्रीकृष्ण की ओर मुड़ा तो अलौकिक प्रेम का माधुर्य, विरह की ठेस खाकर उनकी वाणी में मुखरित हो उठा। इनके प्रत्येक पद में प्रेममयी भक्ति का ही अनोखा रंग दिखाई देता है।

रसखान ने अपने समसामयिक अन्य भक्तों की भांति न तो अपने इष्टदेव की लंबी-चौड़ी प्रशंसा की इच्छा दिखाई और न ही मुक्ति और बैकुंठ की आशा रखी। ये तो साधारण अहीर के घर क्रीड़ा करने तथा वृंदावन में गायें चराने वाले कान्हा और उसकी लीलाओं के

गान में ही सब कुछ पाते हैं। इस प्रकार वे प्रेम राज्य में विचरण करने में ही आह्लादित होते हैं। उनका ब्रज और कृष्ण के प्रति अगाध प्रेम उनके काव्य में निहित है—

1. ''मानुष हौं तौ वही रसखान
  बसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
 जो पशु हों तो कहा बसु मेरो
  चरौं नित नंद की धेनु मंझारन।
 पाहन हौं तो वही गिरि को,
  जो धरयो कर छत्र पुरंदर धारन।
 जो खग हौं तो बसेरो करौं
  मिलि कालिंदी कूल कदंब के डारन।''

2. ''या लकुटी और कामरिया पर
  राज तिहूं पुर कौं तजि एरौं।
 आठहुं सिद्धि नवौ निधि कौ सुख
  नंद की गाय चराई बिसारौं।
 कोटिक हौं कलघौंत के धाम
  करील की कुंजन ऊपर वारौं।।''

वल्लभ संप्रदाय के उपास्य बाल-गोपाल हैं पर रसखान ने इसी संप्रदाय में दीक्षा प्राप्त कर भी भगवान कृष्ण के बाल स्वरूप की अपेक्षा उनके गोपिकारमण, कुंजबिहारी रूप को ही अपनाया।

स्वच्छंद मार्ग की विशेष पहचान काव्य में भावों की वैयक्तिकता भी है। इस धारा का कवि अपने भाव आप ही उत्तम पुरुष द्वारा व्यक्त करता है। उसमें शास्त्रीय मर्यादा की रोक नहीं आने देता। सीधी अभिव्यक्ति की ही प्रधानता रहती है। रसखान के अनेक छंद ऐसे हैं, जिनमें कवि ने अपना प्रेमाभिलाषा को स्वयं व्यक्त किया है, जिसके कारण उनके काव्य में निश्छल एवं स्पष्ट अभिव्यक्ति की शक्ति आ गई है, और सीधी सरल रचना होने पर भी वह अपना अनूठापन बनाए रखने में समर्थ रही है। यही कारण है कि श्रोता और पाठक रसखान की रचना के रंग में रंग जाते हैं और उसे अपनी ही आत्मा की अभिव्यक्ति मान रस-विभोर हो उठते हैं। डॉ. परशुराम चतुर्वेदी ने 'हिंदी काव्य धारा में प्रेम-प्रवाह' में लिखा है—''मीरा के अनन्तर, किंतु भक्तिकाल के ही अंतर्गत, श्रीकृष्ण के एक मुस्लिम भक्त ने भी प्रेमलक्षणा भक्ति का सुंदर परिचय दिया है और उसे अधिकतर व्यक्तिगत उद्‌गारों द्वारा ही प्रकट करने की चेष्टा की है।''[3] रसखान के काव्य में अधिक मात्रा ऐसे छंदों की है, जिनमें गोपियों के बहाने अभिलाषा, प्रेम, कलह, माधुरी, मोहन आदि का वर्णन हुआ है। गोपियों के इस कवि ने अपना ही हृदय खोल कर रख दिया है—

1. ''आज गई हुती भोर ही हौं,
 'रसखानि' रई कहि नंद के भौनहि,
 वागी जिगो जगलाख करोर,
 जसोमति को सुख जात कहयो नहिं।
 तेल लगाइ, लगाई कें अंजन,
 भौंह बनाइ, बनाइ डिठोनहिं,
 डारि हमेल निहारति आनन,
 वारित ज्यों चुचकारति छौं नहिं।''

2. ''सोहत है चंदवा सिर मौर के
 जैसिये सुंदर पाग कसी है,
 तैसियै गोरज भाल बिराजति
 जैसी हिये बनमाल लसी है।
 रसखान बिलोकत बौरी भई
 दृग मूंदि कै ग्वाल पुकारि हंसी है।
 खोलि री नैननि खोलौं कहा
 वह मूरति नैननि मांझ बसी है।''

रसखान ने प्रेमाभक्ति को अपनाया था और वैष्णव आचार्यो ने इसे रस माना है। भाव-प्रधान काव्य धारा में रस की धारा अबाध रूप से प्रवाहित रहती है और रसखान की कविता भावप्रधान कविता है। उनकी भक्ति के आलंबन कृष्ण, गोपियां, यमुना-तट, वंशीवट, बांसुरी, निकुंज आदि रहे हैं। रसखान की प्रवृत्ति आत्मसमर्पण की ओर अधिक रही है ये तन-मन से कृष्ण के हो गए थे। उन्होंने प्रेम को ही संसार का सार माना है और शेष सारी विभूति को तुच्छ माना है। उनकी दृष्टि में—

''कंचन मंदिर ऊंचे बनाय कै
  मानकि लाय सदा झमकावै।
प्रातहि ते सगरी नगरी गज-
  मोतिन ही की तुलानि तुलावै।
पालै प्रजानि प्रजापति सों बन
  संपत सो मधवाहि लजावै।
ऐसो भयो तो कहा रसखानि जु
  सांवरे ग्वाल सों नेह न लाबै।।''

रसखान सौंदर्यप्रेमी जीव थे और उनका कृष्ण के प्रति प्रेम श्रीकृष्ण के सौंदर्य पर ही निर्भर था। उनके राधाकृष्ण, गोपियां सांसारिक प्राणी नहीं लगते। गोपियों के प्रेम की पीर निर्मल, सरल और शुद्ध ही रही है। उनका प्रेम लौकिक शृंगार की संकीर्णता से बहुत ऊपर उठा हुआ है। प्रेम शृंगार रस का स्थायी भाव है और रसखान के काव्य में प्रेम की प्रधानता होने के कारण उनके काव्य को शृंगार रस प्रधान एवं उन्हें प्रेमी कवि कहना ही अधिक समीचीन है। डॉ. श्यामसुंदर दास के अनुसार—''कृष्ण भक्त कवियों में सच्चे प्रेममग्न कवि रसखान का नाम भगवान कृष्ण की सगुणोपासना में विशेष ऊंचा है।''

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में इन्हें बड़ा भारी कृष्णभक्त के रूप में उल्लिखित करते हुए कहा है कि—''इनका प्रेम ही भगवद् भक्ति में परिणित हुआ।'' डॉ. रामकुमार वर्मा के मतानुसार—''रसखान श्रीकृष्ण प्रेम और तन्मयता के लिए प्रसिद्ध हैं।''

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के कथनानुसार—''परमाकर्षक कृष्ण भक्ति के मुस्लिम सहृदयों में रसखान एक प्रमुख कवि हैं।'' आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने 'रसखान ग्रंथावली' में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है—''रसखान भक्तिमार्गी कृष्णभक्तों, प्रेममार्गी सूफियों, रीतिमार्गी कवियों इन से ही से पृथक स्वच्छंदमार्गी प्रेमोन्मत्त गायक थे।'' प्रेममार्गी मानते हुए भी आचार्य मिश्र रसखान को कहीं न कहीं भक्त रूप में भी स्वीकार करते हैं। रसखान ने स्वयं प्रेम को साध्य कहा है—

''जेहि पाएं बैकुंठ अरु
  हरिहूं की नहिं चाहि,
सोई अलौकिक सुद्ध सुभ
  सरस सप्रेम कहाहि।।''

श्रीवल्लभाचार्य के अनुसार—''भगवद्‌भक्ति या अलौकिक प्रेम ही साध्य हो सकता है, उसे ही एकांकी, निर्हेतुक, एकरस होना चाहिए।'' पर रसखान लौकिक प्रेम में भी इसे स्वीकार करते हैं। इसी से रसखान को उन्मत्त प्रेमोन्मत्त कवि कहा जाता है—

1. ''आनंद अनुभव होत नहिं,
 बिना प्रेम जग जान।
 कै वह विषयानंद कै,
 ब्रह्मानंद बरवान।।''

2. ''इक अंगी बिनु कारनहिं,

इकरस सदा समान।
गनै प्रियहि सर्वस्व जो,
सो प्रेम प्रमान।।''

रसखान के लिए प्रेम परमात्मा से पृथक नहीं है, वरन उसी का प्रीतिकर और सजीव रूप है। प्रेमवाटिका में उनकी मान्यता इस प्रकार मुखरित हुई है—

''प्रेम हरि का रूप है, त्यों हरि प्रेम स्वरूप।
एक हो इद्वै यों लसैं, ज्यौं सूरज अस धूप।।''

उनके लिए प्रेम हरि का ही रूप और हरि स्वयं प्रेमस्वरूप हैं। हरि और प्रेम दोनों इसी प्रकार अभिन्न हैं जैसे सूर्य और धूप। राधा और कृष्ण दोनों प्रेम के आलंबन हैं। कृष्ण एक ऐसी अज्ञेय सत्ता हैं जिन्हें न देवता जान पाते हैं और न ऋषि-मुनि—

''ब्रह्म में ढूढ़यो पुरानन-गानन,
वेद रिचा सुनि चोगुने चायन।
देख्यौ सुनो कबहू न कितू
वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन।
टेरत हेरत हारि पर्यो
रसखान बतायो न लोग लुलायन।
देखो दुरो वह कुंज कुटीर में
बैठो पलोटत राधिका पायन।।''

प्रेम भगवान की भांति सर्वव्यापक और सर्वप्रभावी है, जैसे भक्ति में भगवान और भक्त द्वैत नहीं रहता, वैसे ही प्रेम में द्वैत भावना लुप्त हो जाती है। प्रेम में भक्ति जैसी ही अलौकिक आनंद की अनुभूति होती है। शुद्ध प्रेम स्वयं ही बीज स्वयं ही अंकुर है। स्वयं ही सिंचन और स्वयं ही पत्र-पुष्प और फल है। वह स्वयं ही कारण और कार्य है।

रसखान के अनुसार ऐसा प्रेम अलौकिक और आनंदस्वरूप है और उसका स्वरूप उसी प्रकार विविधतापूर्ण है, जिस प्रकार ईश्वर नाना रूपधारी है और उसके नाना नाम हैं। संसार की अन्य वस्तुओं को देखा जा सकता है पर भगवान और प्रेम यह दो तत्त्व ऐसे हैं जिन्हें देखा नहीं जा सकता और न ही वर्णन किया जा सकता है। यह दोनों तत्त्व अनुभूतियां हैं। सच्चा प्रेम किसी भी कारण की अपेक्षा नहीं रखता, वह सदैव समान रहता है और प्रिय की हित-कामनाओं से परिपूर्ण होता है प्रेम तत्त्व और प्रभु-प्राप्ति दोनों एक रूप हैं—

''हरि के सब आधीन हैं, पै हरि प्रेम आधीन।
याही ते प्रभु आप ही, याहि बड़प्पन दीन।।''

रसखान की प्रेम भावना में सूर काव्य के दर्शन होते हैं। सूर में गोपियां हैं, राधा है जो कृष्ण से प्रेम करती है और उनसे मिलने के लिए निशिदिन नैन भी बरसाती रहती है। सूर एवं रसखान की प्रेमाभक्ति लोक की होकर भी लोक से परे की है।

रसखान रससिद्ध कवि थे। भावुकता में पगे रसखान की सरसता का सबसे बड़ा आधार उनकी ब्रजभाषा है। उनके संपूर्ण काव्य का कथ्य ब्रज में ही निहित है। उनके काव्य में जहां ब्रजभाषा की सुपरिचित सुमधुरता, सुकुमारता, सरलता एवं सहजता का सर्वत्र साक्षात्कार मिलता है, वहीं चंचल कालिंदी जैसी चपलता और चारुता के दर्शन भी अनायास हो जाते हैं। शुक्लजी ने इसीलिए इनकी प्रशंसा में लिखा था—''शुद्ध ब्रजभाषा का जो चलतापन और सफाई इनकी और घनानंद की रचनाओं में है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।''

अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए रसखान ने कहीं भी कृत्रिमता को नहीं अपनाया है। किसी भी कोने के शब्दों को अपनाने में कोई परहेज नहीं किया। ''मानुस हों तो वही रसखान बसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन'' वाले छंद में ये सभी गुण परिलक्षित होते हैं।

रसखान की भाषा में ब्रजभाषा के परंपरागत शब्दों के साथ अवधी, अपभ्रंश, राजस्थानी, अरबी-फारसी के शब्दों का भी सहज प्रयोग मिलता है—''प्रेम रूप दर्शन अहो रचे अजूबो खेल।''

''अकथ कहानी प्रेम की जानत लैला खूब।
दो तनहुं जहें एक में, मन मिलाइ महबूब।।''

अरबी-फारसी शब्दों के प्रयोग की तरह कवि ने अवधी भाषा के शब्दों का भी खुलकर प्रयोग किया है—

''ता दिन तें यहि बैरी बिसासनि,
झांकन देत नहीं है दुवारो।
होत चबाव बचाओं सुक्यों करि,
क्यों अलि भेटिये प्रान पियारो।।''

ब्रजभाषा में 'द्वारों' और 'प्यारो' शब्दों को कवि ने अवधी रूप में दुवारो और पियारो के रूप में प्रस्तुत किया है। रसखान के काव्य में अपभ्रंश, प्राकृत, राजस्थानी आदि के विरल प्रयोग भी, उनके काव्य की भाषा ब्रजभाषा की लुनाई और माधुर्य को नहीं छोड़ पाती। मुहावरों और कहावतों के प्रयोग से भाषा में प्रवाह और सजीवता रसखान के काव्य की विशेषता है—

मुहावरे—

''या तो कहूं सिख मान भटू
यह हेरनि ही पैंड परैगी।।''

'पैंड परैगी' का पीछे पड़ने के रूप में प्रयोग हुआ है।

''यह रसखानि दिना द्वै बात फैलि जैहें।''

''कहां लौं सयानी चंदा हाथन छिपाइबो।''

''आंख सौ आंख लड़ी जबहीं,
तबसे ये रहे असुवां रंग भीनी।।''

''नेम कहा जब प्रेम कियो,
अब नाचिए सोई जो नाच नचावे।।''

लोकोक्ति—

''तान सुनी जिनहीं तिनहीं
तबहीं तिन लाज बिदा करि दीनी''

लाज को विदा करना लाक्षणिक प्रयोग है।

''जो कोई चाहौ भलो अपनो
तो सनेह न काहू सों कीजिए।''

रसखान का प्रिय अलंकार मानवीकरण है, सवैया मत्तगयंद तथा कवित्त मनहरण रहे हैं।

जहां जायसी निर्गुण काव्य धारा के प्रेमोन्मत्त कवि थे, वहीं रसखान सगुण काव्यधारा के प्रेमी कवि एवं स्वच्छंद रचयिता कहे जा सकते हैं।

हिंदी विभागाध्यक्ष,
14, व्यंकटेशनगर, शहादा रोड मांडल,
तहसील-शिरपुर, जिला-धुलिया-425405 (महाराष्ट्र)

कृष्ण काव्य में सूरदास और रसखान का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. संगीता त्यागी

सत्यवती कॉलेज में असिस्टेंट प्रोफेसर और युवा लेखिका डॉ. संगीता त्यागी कई पुरस्कारों से सम्मानित हो चुकी हैं। आलेख लेखन के अलावा कविता, कहानी के क्षेत्र में भी सक्रिय।

भगवान श्रीकृष्ण के परम भक्त सूरदास और रसखान हिंदी साहित्यानन के दो विमल नेत्र हैं, जो कमलवत् सुंदर तथा सुशोभित तो हैं ही, साथ ही जिनमें दृष्टि की दिव्यता भी है। किन्हीं दो समर्थ साहित्य-स्रष्टाओं की तुलना का अर्थ यह नहीं है कि एक को बड़ा और दूसरे को छोटा बताया जाए। महात्मा सूरदास, वल्लभाचार्य की शिष्य परंपरा में, उनके पुत्र विट्ठलनाथ द्वारा प्रतिष्ठित 'अष्टछाप' के कवियों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। उन्होंने बड़े सरस और भावपूर्ण पदों में कृष्णलीला का गान किया है, जिसमें कवित्व के साथ-साथ उनके भक्त हृदय की बड़ी तन्मयतापूर्ण अनुभूति देखने को मिलती है। वहीं कृष्णप्रेमी रसखान का हृदय भी प्रियतम (श्रीकृष्ण) के लिए नवीन-नवीन भाव विलासों से स्पंदित होता है। उनकी इस एकांतिक प्रेममयी उमंग ने उनके काव्य को सचमुच रस की खान बना दिया है। बादशाह वंश के जन्मजात मुसलमान रसखान ने स्वयं को राज्यलिप्सा से मुक्त कर जिस श्रद्धा, प्रेम और भक्तिमय रस सागर में निमज्जित किया वह है कृष्णप्रेम।

रसखान भावुक कवि हैं। उनका भाव पक्ष सबल है। मुख्यतः शृंगार रस के निरूपण में उनकी प्रवृत्ति रमी है। उनके काव्य में अंतर्वृत्ति का निरूपण भी किसी कवि से कम प्रतीत नहीं होता। गोपियों की दशा का चित्रण किसी भी तरह भक्त-शिरोमणि सूरदास से कम नहीं है। यद्यपि रसखान ने वात्सल्य संबंधी केवल दो पदों की रचना की है, किंतु मर्मस्पर्शिता के कारण उन्हें सूर के अनेक पदों की तुलना में रखा जा सकता है, वहीं सूरदास समूचे हिंदी साहित्य में वात्सल्य के अप्रतिम चितेरे माने जाते हैं। वात्सल्य सम्राट सूरदास के काव्य में बाल मनोदशाओं और बाल क्रीड़ाओं का सुंदर चित्रण है। सूरदास के कृष्ण के जन्म पर ब्रज की नर-नारियां अपनी दिनचर्या छोड़कर यशोदा-पुत्र को देखने पहुंच गई। सारा ब्रज उत्सव मनाता है–

''शोभा सिंधु न अंत लही री।
नंद भवन भरि पूरी उमगि चली
ब्रज की वीथिनी फिरती बही री।।''

सूरकाव्य में कृष्ण का बालरूप अनंत अलौकिक सौंदर्य की खान है, जिस पर नर-मुनि, देव, किन्नर, यक्ष, गोप-ग्वालिनें, पशु-पक्षी सभी समान रूप से मुग्ध हैं। सौंदर्य की अविर्वचनीयता के वर्णन-क्षण में वे यशोदा के मुख से कहलवाते हैं–

''कहां लौ बरनौं सुंदरताई।
खेलत कुंवर कनक आंगन में
नैन निरखि छवि पाई।''

उधर रसखान ने कृष्ण के बाललीला संबंधी कुछ ही पदों की रचना की। किंतु उनके ये पद भक्तजनों के कंठहार बने हुए हैं। उन्होंने कहा है–

''काग के भाग बड़े सजनी
हरि हाथ सौं लै गयो माखन रोटी।''

यद्यपि रसखान को कृष्ण के मानवीय स्वरूप ने अधिक आकर्षित किया किंतु यहां वे उनके ब्रह्मत्व को नहीं भुला सके। कौवे के भाग्य की सराहना में कृष्ण के ब्रह्मत्व की ओर संकेत किया गया है। सूरदास के–''जाकौ दूरि दरस देवनि कौं, सो बांध्यौ जसोमति ऊखल धरि।'' की सी ध्वनि रसखान के उपर्युक्त पद में मिलती है। रसखान ने कृष्ण को एक शिशु के रूप में दिखाया है। उसके लिए 'छौने' शब्द का प्रयोग बड़ा व्यंजक है। इस पद में नारी मनोभाव की ओर भी पूर्ण संकेत मिलता है–

''आजु गई हुती भोर ही हों,
रसखानि रई वहि नंद के भौं नहि।

×××

डालि हमेलनि हार निहारत
करत ज्यों चुचकारत छौनहिं।''

सूरदास का काव्य बाल-चेष्टाओं का विश्वकोश है। सूर के कृष्ण कुछ बड़े होकर आस-पास की वस्तुओं तथा प्रकृति के साथ संबंध स्थापित करने का प्रयास करते हैं। मां यशोदा उन्हें चंद्रमा दिखाती हैं। किंतु वे हठ करते हैं कि उन्हें 'चंद्र-खिलौना' ही चाहिए। कृष्ण चंद्रमा को हाथ में लेकर खाना चाहते हैं–

''लगी भूख चंद में खैहौ,
देहु लेहु रिस करि बिरुझावत।
जसुमति कहत कहा मैं कीनो
रोवत मोहन दुख पावत।।''

उधर कृष्ण की लीलाओं में रसखान की सहज आसक्ति है और वे कहते हैं कि–''मानुष हौं

तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वालन।'' कृष्ण की रूप माधुरी को रसखान सदैव अपने सामने पाते हैं। वे कृष्ण के बाल रूप पर मुग्ध हैं–''वा छवि को रसखानि बिलोकत बारत काम कला निज कोटी।।''

तत्कालीन परिस्थितियों में सगुणोपासना ही सर्वसाधारण के लिए उपयुक्त थी। निवृत्ति मार्ग में संसार को मिथ्या मानकर परिस्थितियों से तटस्थ तथा मन को मारना पड़ता था। इससे जीवन में उदासीनता और निराशा की छाया दिखाई देने लगी थी। इन दोनों ने इसका अनुभव किया और उपाय-स्वरूप कृष्ण के रूप में एक लीलाधारी संबल को केंद्र मानकर जनता को प्रवृत्ति मार्ग की ओर मोड़ा। लोगों के मन में आशा, विश्वास तथा समरसता का संचार हुआ। सूर ने अपने प्रभु का चित्रण इस प्रकार किया–

''चरण कमल बंदौ हरिराई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै
अंधे कौं सब कुछ दरसाई।।''

इसी सत्य को रसखान ने इस प्रकार व्यक्त किया–

''काहू न चौ जुग जागत पायो,
सो राति जसोमति सोवत पायौ।।''

सच्चे सगुणोपासक की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वह अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इन चारों से दूर रहता है। सूर के कृष्ण बड़े होने पर मां से गाय चराने जाने की अनुमति मांगते हैं। मां के इनकार करने पर वे जिद करते हैं और नंद बाबा से भी कहते हैं–

''आजु मैं गाय चरावन जैहों।
वृंदावन के भांति-भांति फल
अपने कर में खैहों।।''

मां को अनुमति देनी पड़ती है, लेकिन जब उन्हें पता चलता है कि ग्वाल-बाल अपनी गाय भी कृष्ण से ही धिरवाते हैं तो उन्हें दया आ जाती है–

''मैं पठवति अपने लरिका कौ,
आवै मन बहराइ।
सूर स्याम मेरो अति बालक,
मारत ताह रिंगाई।।''

दूसरी तरफ रसखान के कृष्ण गाय चराने वन में जाने लगे हैं। कृष्ण की हर अदा पर दीवानी गोपियां उनके गौचारण से प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकती थी। रसखान ने गौ-लीला का बहुत सुंदर ढंग से वर्णन किया है–

''गाइ दुहाई न या पै कहूं, न कहूं

यह मेरी गरी निकरयौ है।
धीर समीर कालिंदी के तीर खरयो रहै
आजु की डीठि परयौ है।
जा रसखानि विलोकत ही सहस ढरि
रांग सो आंग ढरयो है।
गाइन धेरत हेरत सो पट फेरत
टेरत आनि अरयौ है।।''

सूरदास मातृ हृदय के सबसे बड़े पारखी हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में–''यशोदा के बहाने सूरदास ने मातृ हृदय का ऐसा स्वाभाविक, सरल और हृदयग्राही चित्र खींचा है कि आश्चर्य होता है। 'माता' संसार का ऐसा पवित्र रहस्य है, जिसे कवि के अतिरिक्त किसी को व्याख्या करने का अधिकार नहीं है। सूरदास जहां पुत्रवती जननी के प्रेम पल्लवित हृदय को छूने में समर्थ हुए हैं, वहीं वियोगिनी माता के करुणा-विगलित हृदय को भी उसी सतर्कता से छू सके। यशोदा के अत्यंत कोमल और क्षणिक कठोर हृदय का सूर ने पूर्ण स्वाभाविक वर्णन किया है''–

''सुत मुख देखी यशोदा फूली,
हरखति देखि दूध की दंतियां
प्रेम मगन तनु की सुधि भूलि।।''

कृष्ण सौंदर्य के सागर हैं। गोपिकाएं बुद्धि और विवेक के बल पर उस रूप-लावण्य को देखकर हैरान हैं। वे इस शोभा से पार न पा सकीं। उसी में फंसकर रह गई हैं। रसखान ने गोपियों की स्थिति को मनोरम ढंग से प्रस्तुत किया है। यह अनुपम रूप उनकी आंखों में बस गया है–

''देख्यौ रूप अपार मोहन
स्याम सुंदर को
वह ब्रज राजकुमार हिय
जिय नैननि में बस्यो।।''

सूरदास की गोपियां भी कृष्ण के सौंदर्य से इतनी प्रभावित होती हैं कि उसका वर्णन करना भी कठिन है–

''सोभा सिंध अंग अंगनि प्रति
बरनत नाहिन ओर री
×××
लाल गोपाल बाल-छबि बरनत,
कपि कुल करिहैं हास री।।''

सूरदास के रूप वर्णन और रसखान के रूप वर्णन में एक अंतर यह भी है कि सूरदास की दृष्टि कृष्ण के बाल सौंदर्य पर अधिक गई है। गोपियां उसी से इतनी प्रभावित होती हैं कि उनका अपने घर तक से नाता समाप्त हो जाता है–

''जब तैं आंगन खैलत देख्यौ,
मैं जसुदा को पूत री,
जब ते गृह से नाता टूट्यौ,
जैसो कांचौ सूत री।।''

एक बालक को घर के आंगन में खेलते देखकर घर से संबंध-विच्छेद कर देना अस्वाभाविक प्रतीत होता है। रसखान के कृष्ण के युवा रूप पर मोहित होकर गोपियां लोक-लाज तक त्याग देती हैं–

''रसखानि महावत रूप सलोने को,
मारग ते मन मोरत है।
ग्रह काज समाज सबै कुल लाज
लला ब्रजराज को तोरत है।''

सूरदास की भांति रसखान के काव्य में रसाभास नहीं मिलता। उनकी गोपियां कृष्ण के बालरूप पर मुग्ध होकर गृह त्याग नहीं करतीं। रसखान प्रेम और श्रृंगार के रसवेत्ता कवि हैं। श्रृंगार रस के परिपाक के लिए विभाव, अनुभाव, उद्दीपन तथा संचारी आदि सभी भावों को उन्होंने अपने काव्य में उच्चकोटि की सृष्टि की है। यदि रसानुभूति की कसौटी पर रसखान के कृष्ण काव्य को परखा जाए तो सर्वांगपूर्ण श्रृंगार का काव्य प्रतीत होगा। रसखान की कविता में सौंदर्य-चित्रण के कई प्रसंग हैं परंतु उन सब में कृष्ण भक्ति, कृष्ण प्रेम और कृष्ण के रूप, गुण, शील की ही प्रधानता है।

सूरदास की गोपियां बिना किसी वाग्जाल के बिना किसी बौद्धिक उलझाव के, सहज रूप से अपने हृदय की सच्चाई व्यक्त करने में सफल हुई हैं। भ्रमरगीत सगुण भक्ति का प्रामाणिक दस्तावेज है। गोपियों के कृष्ण-प्रेम का अद्वितीय आलेख है। सूरदास कृष्ण काव्य के सर्वोच्च कवि हैं, तो रसखान मुस्लिम कवि होते हुए भी कृष्णभक्ति में लीन रहकर उन्होंने ब्रज-संस्कृति के दर्शन करवाए हैं। इस संस्कृति के प्रति उन्हें विशेष लगाव है। रसखान के काव्य की एक बड़ी विशेषता स्वच्छंद काव्यधारा को जन्म देना भी है। भक्तिकाल में जन्म लेकर उससे प्रेरणा लेकर एक नई काव्यधारा को जन्म देना उनकी असाधारण प्रतिभा की देन है। वहीं सूरदास कृष्ण काव्य के सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। सूरदास ने अपने काव्य में वात्सल्य, श्रृंगार और भक्ति तीनों परंपराओं को एक कर डाला है, जबकि विद्यापति में श्रृंगार है तो मीरा और रसखान में भक्ति है। सूर वात्सल्य है और वात्सल्य सूर है। अतः तीनों रसों का सहज स्फुरण और स्वाभाविक अभिव्यक्ति केवल सूर के काव्य में ही मिलती है। मुस्लिम होते हुए भी रसखान का कृष्ण काव्य में विशेष महत्व है। कृष्ण कवि के रूप में दोनों का योगदान अविस्मरणीय है। दोनों ही महान हैं, दोनों ही धन्य हैं।

संदर्भ–

1. सूर काव्य : विविध आयाम–डॉ. अशोक भाटिया
2. कृष्ण काव्य और सूरसागर–सुरती।
3. रसखान : व्यक्तित्व और कृतित्व–माजदा असद।
4. वृहत साहित्य निबंध–डॉ. रामसागर त्रिपाठी, डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त।
5. सूरसागर।
6. रसखान रचनावली।
7. कृष्ण काव्य और सूर–प्रेमशंकर।

ए-64, इंद्रपुरी, लोनी, दिल्ली-201102

रस की खान 'रसखान'

डॉ. प्रीति

वरिष्ठ पत्रकार डॉ. प्रीति की विविध विषयों पर बीस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कई पुरस्कारों से सम्मानित लेखिका ने देश-विदेश के मंचों पर काव्य पाठ किया।

हमारा देश भारत सदैव अपनी सांस्कृतिक चेतना एवं एकीकरण के कारण विश्व में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

समय-समय पर हमारी रचनात्मक विभूतियों ने इस संपदा को और मूल्यवान बनाया। हमारे मानवीय मूल्यों, प्रेम, दया, संवेदना, भक्ति, सौहार्द्र और सकारात्मक चिंतन ने देश की संस्कृति को और अधिक ऊर्जावान भी बनाया।

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल का युग, स्वर्ण युग के साथ-साथ विविध रूपों से हमारी सांस्कृतिक सद्भावना को और अधिक समृद्ध करता रहा।

इस काल में अनेक समाज सुधारक, बुद्धिजीवी एवं भक्त कवियों ने अपनी रचनात्मक प्रक्रिया द्वारा देश के तत्कालीन समय और समाज को भी कई तरह से अनुप्राणित किया।

इस काल में जहां निर्गुण और सगुण भक्ति की धाराएं प्रवाहित हो रही थी, वही इस धारा के कवियों ने अपनी रचनाधर्मिता को अपने अपने विचार और अंदाज से लबरेज करके बहुमूल्य काव्य-कला का संचरण भी किया।

निर्गुण भक्ति धारा के कवियों में जहां कबीर और अन्य कवियों की रचनाएं समाज के मानवीय मूल्यों को दिशा-ज्ञान दे रही थीं, वहीं भक्तिकाल की सगुण धारा प्रेम, दया, भक्ति जैसे मानवीय मूल्यों पर सारगर्भित काव्य-कला द्वारा जनमानस में भक्ति और प्रेम के मंत्र और प्राणवायु का संचार कर रही थी।

कृष्णमार्गी कवियों की भूमिका जहां सूरदास की कृष्ण-भक्ति की बेमिसाल कृतियों से समृद्ध थी, वहीं एकता और धार्मिक सहिष्णुता के सबल और मजबूत मानवीय मूल्य 'प्रेम' के उपासक रसखान की रचनाएं भी 'कृष्ण प्रेम' से सराबोर और प्रेममय भक्ति की समृद्ध काव्य कला थीं।

रसखान कृष्ण के अनन्य भक्त रहे हैं। हम जानते हैं कि रसखान का जन्म एक अल्प संख्यक अर्थात मुस्लिम परिवार में हुआ था। माना जाता है कि सन् 1533 ई. में उत्तर प्रदेश के जिला हरदोई के पिहानी ग्राम में हुआ था। इनका नाम सैयद इब्राहिम था।

कुछ विचारकों का मत है कि रसखान दिल्ली के पठान सरदार थे। यह विचार साहित्यिक पंडितों द्वारा मान्य नहीं हुआ।

इनका बाल्यकाल सुखद व्यतीत हुआ। दिल्ली आगमन को लेकर यह विचार सामने आया है, रसखान दिल्ली आए। वह राजतंत्र से भी जुड़ गए।

विद्वान विचारक मानते हैं कि, राजनीतिक उठापटक और राज-विद्रोह, विघटन से क्षुब्ध होकर रसखान दिल्ली से ब्रजधाम पधार गए। ब्रज की कृष्णमय भूमि में रसखान रसबस गए। वह 'कृष्ण प्रेम' में सराबोर हो गए। कहा जाता है, कि 'रसखान' किसी सुंदरी से अथाह प्रेम करने लगे थे। यह लौकिक प्रेम धीरे-धीरे अलौकिक प्रेम रंग में आकंठ डूब गया।

कृष्ण उनके इष्ट थे, उनकी आत्मा थे। उनका अनन्य प्रेम थे और उनकी काव्य-कला के नायक भी। रसखान को सारा संसार कृष्णमय लगता था। उनकी भक्ति, और प्रेम सब सिमट कर 'कृष्ण' तक आ गए थे। उनकी रचनाएं जहां 'कृष्ण' के लिए ही हैं, मात्र कृष्णप्रेम के कारण हैं।

रसखान ने अपना शेष जीवन एकमात्र कृष्ण भक्ति, भजन और संकीर्तन में तल्लीन होकर ही व्यतीत किया। रसखान ने धर्म, जाति, सांसारिकता से बहुत अलग दूर और केवल मानवीय एकता और प्रेम के संबल बन कर समाज के समक्ष एक महत्त्वपूर्ण मिसाल प्रस्तुत की। धर्म और जाति को तो हमने बनाया है, श्री कृष्ण ने तो केवल हमें मानव के रूप में इस संसार में भेजा है। हमारे शरीर, रत्न सब एक हैं तो फिर जन-जन में जाति धर्म का बंटवारा कैसा? रसखान की यही धार्मिक और जातिगत एकता उन्हें अन्य कवियों से अलग बेमिसाल और अद्भुत बनाती है।

वह मानवीय एकता के प्रतीक थे, रसखान थे, अर्थात रस की खान थे। रसखान के दोहे, सोरठे, छंद और सवैये सब कृष्ण प्रेम रस में रसे बसे हैं। इसीलिए तो वो रस की खान हैं। यही है उनका अत्यंत लोकप्रिय नाम 'रसखान'।

'रसखान' की भाषा ब्रज रही है। इनकी मूलतः दो मौलिक रचनाएं प्राप्त हैं।

(1) प्रेमवाटिका—इसमें दोहों की संख्या बहुत नहीं है केवल 52 दोहों का संकलन है।

(2) सुजान रसखान–इसमें सोरठा, कवित्त और सवैया छंदों के माध्यम से कृष्णलीला का अद्‌भुत, मनोहारी, प्रेम भक्ति से सराबोर चित्रण है। रसखान की रचनाओं में भावपक्ष, तथा कलापक्ष दोनों का ही उच्चकोटि का समागम है। उनके तन-मन और मस्तिष्क में केवल कृष्णवास ही था, इसीलिए रसखान की कृतियों में पाठक भी कृष्ण प्रेम में आकंठ डूबता जाता है। रसखान की यही खासियत उन्हें अन्य कवियों से अलग स्थान प्रदान करवाती है।

रसखान जहां सौंदर्य, प्रेम और माधुर्य युक्त रचनाएं करते रहे हैं, वहीं विरह का भी मर्म स्पर्शी चित्रण उनके काव्य में मिलता है। 'रसखान' को ब्रजधाम से तो प्रेम था ही, उनकी रचनाओं में बांसुरी, वेशभूषा, यमुना का तट, वृंदावन, पशु-पक्षी, पर्वत, एवं वृक्ष का भी मनोहारी चित्रण मिलता है।

उनकी काव्य कला में शृंगार और शांत रसों का भी परिपूर्ण वर्णन है। जहां रसखान ने छंदों पर अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया, वहीं मुक्तक छंदों को भी कवित्त में स्थान दिया। अलंकारों की दिशा में, उन्हें अनुप्रास और यमक अलंकार ही अधिक भाए। रसखान अपने सवैया छंदों के आधार पर साहित्य में विशेष स्थान रखते हैं।

इनकी रचना की नाभि कृष्ण-प्रेम और भक्ति है, इस कारण पाठकों के हृदय में सीधे उतर कर उन्हें भी प्रेममय बना देते हैं। रसखान ने प्रकृति चित्रण को भी कैनवास जैसा अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। गोधूलि के समय का चित्रण बहुत सच्चाई और एक चित्रात्मक शैली में किया है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने रसखान की कृष्णभक्ति से सराबोर रचनाओं को पढ़ कर अभीभूत होते हुए कहा–''इन मुसलमान कवि जनन पै, कोटिक हिंदू वारिए''। यह कठोर सत्य वचन भारतेंदुजी ने कहें, इसलिए आज के संक्रमण काल में भी 'रसखान' एकता की मिसाल के मशाल जैसे हैं।

रसखान की भाषा का लालित्य ब्रजभाषा के मधुर शब्दावली के कारण तो था ही, किंतु उनकी सरलता से प्रस्तुति भी उन्हें लोकप्रिय बनाती है–

''देखि गदर हित साहिबी
        दिल्ली नगर मसान।
छिनहि बादसा वंस की,
        ठसक छोरि रसखान।।
प्रेम निकेतन श्री तनहिं,
        आइ गोर्वधन धाम।
लह्यो सरन चित चाहि के
        जुगल सरूप ललाम।।''

उपरोक्त कथन रसखान ने दिल्ली में अकाल और युद्ध के कारण दुःखी होकर लिखा था।

रसखान के सवैए उनके भक्त कवि हृदय और उनके कृष्ण-भक्ति एवं प्रेम के परिचायक हैं।

कुछ दृष्टांत प्रस्तुत हैं जिनमें रसखान ने कृष्ण के अलौकिक रूप-भक्ति वत्सलता, ब्रज के प्रति प्रेम का अद्‌भुत वर्णन है–

''काननि दे अंगुरी रहिवौ
        जब ही मुरली धुनि मंद बजैहों।
मोहनि ताननि सों रसखानि,
        अटा चढ़ि गोधन गैहें तो गैहें।।

टेरि कहौ सिगरे ब्रज लागनि
        काल्हि कोउ सु कितौ समुझै हैं।
माइ री वा मुख की मुस्कानि,
        सम्हारि न अैहें न जैहें।

काहि को सोचि केरे रसखानि
        कहा करि है रविनंद विचारो।
ताखन जाखन राखिए माखन
        चाखन हारो सो राखन हारो।।''

उनकी एक अत्यंत लोकप्रिय रचना है–

''मानुष हो तो वही रसखानि,
        बसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पशु हौं तो वही गिरि को
        जो धरयौ कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तो बसेर करौं मिल
        कालिंदी कूल कदंब की डारन।।''

उपर्युक्त रचना में रसखान के काव्य लालित्य एव माधुर्य का भरपूर संयोग मिलता है।

रसखान मात्र कवि ही नहीं वह निर्मल भक्ति भावना, प्रेम, मधुरता और शाश्वत मानवता के प्रगाढ़ प्रेमी एवं मधुर कृष्णभक्ति के अथाह सागर में निरंतर तन्मय होकर काव्य कला की कृति में संलग्न रहे। रसखान अपने आराध्य कृष्ण की भक्ति करते-करते अंत में सदैव के लिए श्रीकृष्ण में लीन हो गए। ऐसे रसखान की समाधि महावन में आज भी विद्यमान है। रसखान की अनन्य कृष्ण भक्ति को नमन।

4/151, विशाल खंड, गोमती नगर,
लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

नागार्जुन के उपन्यासों में आंचलिकता

डॉ. श्रुति रंजना मिश्र

स्वतंत्र लेखन में सक्रिय युवा लेखिका डॉ. श्रुति रंजना मिश्र की तीन कृतियां 'नागार्जुन के उपन्यासों में आंचलिकता', 'वर्तमान परिवेश में जनसंख्या शिक्षा का महत्त्व' तथा 'राष्ट्रीय चेतना और हिंदी' प्रकाशित हो चुकी हैं। लेखन के साथ-साथ पत्रकारिता में भी सक्रिय।

यदि किसी एक साहित्यकार में युग के सत्य को स्वीकार करने का नैतिक साहस, गहरी संवेदना, सच्ची ईमानदारी देखनी हो, मानव जीवन के यथार्थ रूप और उसके संघर्षों से प्रेरणा लेकर उनके जीवन को अपने में आत्मसात कर उसे और अधिक निखारना हो, आत्मचिंतन, आत्मस्वीकृति और आत्मविश्लेषण की सधी मानसिकता होते हुए भी खरी-खरी और बेबाक बात करने का साहस देखना हो, तो आधुनिक हिंदी साहित्यकारों में एक ही नाम पर दृष्टि जाएगी और वह नाम होगा—'नागार्जुन'।

उस समय जब परंपरावादी साहित्यकार किसी शासक, नेता या अन्य अभिजात्य वर्ग के नायक का अपने शब्द सुमनों से उसके जीवन का शृंगार कर रहे थे, तब जो कतिपय साहित्यकार गांवों के उपेक्षित, शोषित, श्रमशील वर्ग को अपनी अभिव्यक्ति के लिए उपादान के रूप में ग्रहण कर उसकी पीड़ा को लोकपीड़ा का स्वरूप प्रदान करने का क्रांतिकारी साहसिक कार्य करने के लिए अग्रसर हुए, उनमें नागार्जुन का नाम अग्रगणनीय है। उन्होंने ग्राम्यांचल के उस वर्ग को वाणी दी जो मूक था। उनके समाजवादी विचारों की गूंज उन कानों में टकराई जो बधिर हो जाने के लिए विवश कर दिए गए थे।

नागार्जुन एक प्रगतिशील आंचलिक उपन्यासकार हैं। 'अंचल' शब्द विशिष्ट भू-भाग का बोध करवाता है—एक ऐसा भू-भाग जो अपनी स्थानीय और प्राकृतिक विशेषताओं के कारण दूसरे क्षेत्र से अपनी पृथक पहचान बनाए रखता है। उसकी जलवायु, प्राकृतिक संरचना, लोगों का रहन-सहन, आचार-विचार, बोलचाल की भाषा, वेशभूषा यहां तक कि उनका संपूर्ण जनजीवन अपने आप में इकाई बन जाता है। नागार्जुन हिंदी के सुप्रतिष्ठित आंचलिक उपन्यासकार हैं, वह प्रथम ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने विचारों में प्रगतिवाद को पूर्ण निष्ठा से स्वीकार किया है। उनकी आंचलिकता भी प्रगतिवाद की वैचारिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। उन्होंने जनता के संघर्ष को अपने देश की माटी से जोड़ने की कोशिश की और अन्य सामान्य लोगों के दुःख-दर्द को उनकी अनुभूतियों पर खुद को आरोपित किए बिना सीधी-सरल लेकिन प्रभावशाली भाषा में व्यक्त किया। उनके उपन्यास आंचलिक होते हुए भी समाजवादी आधुनिकता बोध से ग्रस्त हैं।

नागार्जुन के उपन्यास व्यष्टि के माध्यम से समष्टि का चित्र प्रस्तुत करते हैं। भले ही वह समष्टि किसी अंचल विशेष ही क्यों न हो, पर उस अंचल के सामाजिक जीवन के मूल में प्रवाहमान अव्यक्त वेदना अंचल की सीमाओं में ही आबद्ध नहीं रह जाती। वह सार्वजनिक और सार्वदेशिक रूप ले लेती है। इसलिए उनके उपन्यासों में कोई व्यक्ति नायक के रूप में स्थापित नहीं होता। अपितु संपूर्ण समाज ही नायक जैसा आभासित होने लगता

है। रतिनाथ की चाची, बलचनमा, मोहन, खुरखुन, बाबा बटेश्वरनाथ और दुःखमोचन जैसे पात्र संबंधित रचनाओं के केंद्र बिंदु होते हुए भी नायक नहीं हैं, भले ही वे अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। इसलिए जब वे पाठक के समक्ष आते हैं, तो प्रतीत होता है कि व्यक्ति नहीं एक संपूर्ण समाज उपस्थित है।

नागार्जुन के उपन्यासों की कथावस्तु प्रायः ग्राम्यांचल से संबंधित होने के कारण उसके भौगोलिक परिवेश का महत्व बढ़ जाता है। उनके उपन्यासों में प्रायः मिथिला के ग्राम्य जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है, जिसमें कृषक समस्या, वर्ण-जाति की समस्या, नारी समस्या, राजनीतिक संगठन, जमींदारों, साहूकारों के अत्याचार आदि को वास्तविक रूप में प्रस्तुत किया गया है, लेकिन पात्रों और घटनाओं का चुनाव अंचल के संदर्भ में करके भी वे उसे अपनी रचनात्मकता का उद्देश्य नहीं बनाते, वरन आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़े पात्रों का चयन कर अपना कथातंतु तैयार करते हैं। उनके कथासूत्र अंचल विशेष से लिए गए होते हैं, पर अंचल के लिए नहीं

होते। इसीलिए अंचल के पात्रों की कहानी पूरे वर्ग की कहानी बन जाती है। इन पात्रों में उनकी साम्यवादी विचारधारा एक नारे के रूप में नहीं एक जीवन दर्शन के रूप में विकसित होती दिखाई देती है।

नागार्जुन मूलतः साम्यवादी विचारधारा के पोषक रहे हैं। कार्ल मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद ने उन्हें अत्याधिक प्रभावित किया था। हिंदी साहित्य में यह विचारधारा प्रगतिवाद के नाम से जानी गई। लेखक की रचनाओं में यह विचारधारा सर्वत्र मुखर है, भले ही उनके इस आग्रह ने कभी-कभी रसानुभूति को बाधित किया हो। तभी तो 'रतिनाथ' की चाची को अपने निरंतर क्षीण होते स्वास्थ्य और प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली मृत्यु के मध्य भी रूस पर जर्मनी के आक्रमण और रूस की विजय की चिंता है। 'बलचनमा' का किसान संघर्ष, 'वरुण के बेटे' का मछुआरा संघर्ष, 'बाबा बटेश्वरनाथ' का किसान-जमींदार संघर्ष जैसे चित्रण आंचलिकता की परिधि को तोड़कर शोषक-शोषित का वर्ग-संघर्ष तथा सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जागरूकता के प्रतीक बनकर मुखर हुए हैं। नागार्जुन कार्ल मार्क्स की अवधारणा पर चलकर वर्ग-संघर्ष के मूल में आर्थिक कारण मानते हैं। हीरक जयंती, इमरतिया, उग्रतारा जैसे उपन्यास सामाजिक तथा समाजवादी यथार्थ से युक्त भारतीय समाज की विसंगतियों और अमानवीय नग्नता को उद्घाटित करते हैं।

नागार्जुन के आंचलिक उपन्यासों की रचनाभूमि ग्राम जीवन है और इस जमीन की कोई बात उनसे छूटने नहीं पाई है। वे सभी प्रकार की परतंत्रता के विरुद्ध संघर्ष का पक्ष दृढ़ता से रखते हैं। सामंती और पूंजीवादी वर्ग के विरुद्ध संघर्ष में किसान, मजदूर और छोटी-छोटी जातियों को आमने-सामने खड़ा कर देते हैं। मिथिलांचल की वर्ण जटिलता और वर्ण संस्कारों की कठोरता का पता इनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है। टूटते-बिखरते रिश्ते, महाजनी सभ्यता का भार ढोता गरीब किसान, मजदूर और गांवों में जन्म लेती वर्ण, धर्म, जाति, बिरादरी की राजनीति, आजादी का आंदोलन, प्राप्त हुई आजादी का चरित्र, स्वराज्य के दावेदारों की वास्तविकता और उसके विरुद्ध संघर्ष, क्या कुछ नहीं है नागार्जुन के उपन्यासों में।

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में बिहार के ग्राम्यांचलों में स्त्रियों की स्थिति का वर्णन किया है। परिवार में वे दासी जैसा जीवन व्यतीत करने को बाध्य थी। लेखक ने वर्ण और जाति संबंधी मान्यताओं के मध्य अवसर पाकर उच्चवर्गीय दंभ पर चोट की है। नई पौध में धनाभाव के कारण लड़कियों को बेचना, असमय वैधव्य, घर से भागकर गर्हित जीवन जीने के लिए विवश होना, अनमेल विवाह आदि कुप्रथाएं जोरों पर थी। स्त्रियों को केवल उपभोग की दृष्टि से देखा जाता था।

वस्तुतः नागार्जुन के आंचलिक उपन्यासों में अंचल विशेष की समस्त जीवन स्थितियां परस्पर इस प्रकार संबद्ध हैं, कि इनमें से किसी एक में परिवर्तन होने से अन्य दूसरों में उसका प्रभाव पड़ना आवश्यक है। कुछ ऐसा अंतःसंबंध है, कि व्यक्ति की चेतना झंकृत होने पर समूचा समाज हिलने लगता है। बाढ़ आती है, आग लगती है, गढ़-पोखर पर जमींदारों की दृष्टि पड़ती है, तो समूचा समाज प्रभावित होता है और इसके विरुद्ध समाज का एक-एक प्रगतिगामी व्यक्ति अपनी-अपनी सीमाओं में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। इस प्रकार एक ऐसा अंचल बनता है, जिसके प्रत्येक अंश का एक-दूसरे से गहरा जुड़ाव है। किसी एक के बिना चित्र अधूरा ही रह जाता है। इसलिए नागार्जुन के उपन्यास आंचलिक हैं। इनकी आंचलिकता जटिलतर जीवन स्थितियों को सामने लाने और समझाने की सामर्थ्य प्रदान करती है।

इसके अतिरिक्त नागार्जुन ने आंचलिक स्वरूप देने के लिए अपने उपन्यासों में मिथिला क्षेत्र के देशज शब्दों का प्रयोग भी किया है। ढिबरी, मलिकाइन, भुच्च, हांड़ी, टिक्कड़, छोकरा जैसे शब्द स्थानीय समाज की उपज हैं। इस तरह से लेखक प्रयुक्त भाषा, शब्दावली, आंचलिक मुहावरों और संवादों द्वारा उस क्षेत्र विशेष को पहचान दिलाने के प्रयास में भी पूर्ण सफल रहा है। भाषा संरचना के क्षेत्र में नागार्जुन का प्रयोग क्रांतिकारी तथा सार्थक है। वस्तुतः भाषा की यही नवीनता आंचलिकता की आत्मा है, जिसे नागार्जुन आंतरिक अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक मानते हैं।

और अंत में जब सारा समाज सुख की निद्रा में डूबा रहता है, तब नागार्जुन जाग रहे होते हैं। कबीर का कहना है कि जागने वाले की नियति दुखी होने और रोते रहने की है। नागार्जुन भी दुखी होते और रोते हैं। निर्धन किसानों के लिए, विपन्न श्रमिकों के लिए जो वर्तमान सामाजिक व्यवस्था से पीड़ित हैं, प्रताड़ित हैं और तब उनके पात्रों की पीड़ा उनकी पीड़ा बन जाती है, उनके पात्रों का आक्रोश उनका आक्रोश बन जाता है। उनके पात्रों का एक-एक अश्रुकण नागार्जुन के नेत्रों से प्रवाहित होने लगता है। इस अश्रु प्रवाह में से यदि रतिनाथ की चाची, बलचनमा, वरुण के बेटे, बाबा बटेश्वरनाथ, दुःखमोचन, उग्रतारा जैसे मणिमुक्ता हिंदी को उपलब्ध हो जाएं, तो यह हिंदी साहित्य का सौभाग्य ही कहा जाएगा।

21, सविता विहार, दिल्ली-110092

हिंदी की लघु पत्रिकाएं वर्तमान परिदृश्य में

कृष्णवीर सिंह सिकरवार

प्रेमचंद साहित्य में विशेष रुचि होने के कारण कृष्णवीर सिंह सिकरवार के देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रेमचंद संबंधी लेख एवं पुस्तक समीक्षाएं प्रकाशित।

आज हिंदी में देश से कई छोटी-बड़ी साहित्यिक पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं एवं इन पत्रिकाओं का पाठक वर्ग भी बहुतायत में है, जो इनको खरीदता व पढ़ता है। इस दृष्टि से इनकी स्थिति सुदृढ़ कही जा सकती है। इन पत्रिकाओं की लोकप्रियता का कारण यह भी है, कि कम कीमत में यह पाठकों तक पहुंच जाती हैं और इनके पाठकों को खरीदकर पढ़ने में कोई गुरेज नहीं होता है। इनकी बिक्री भी दिनों-दिन संतोषजनक होती जा रही है। यह पत्रिकाएं आज व्यापक रूप से प्रकाशित हो रही हैं और इनका क्षेत्र फैलता जा रहा है। पाठक को इन पत्रिकाओं के माध्यम से साहित्यिक क्षेत्र में हो रही घटनाओं की जानकारी व हिंदी के प्रतिष्ठित रचनाकारों के लेखन की जानकारी प्राप्त होती रहती है। देश में कई पुरानी पत्रिकाएं बेहतर प्रचार-प्रसार तथा पाठकों के अभाव होने के कारण बंद भी हो रही हैं फिर भी हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं का एक अपना बाजार है, जो इनको जिंदा बनाए रखे हुए है।

इस संबंध में स्व. राजेंद्र यादव के अंतिम भाषण के रूप में दृश्यांतर मासिक पत्रिका में दर्ज लघु पत्रिकाओं के संबंध में उनके विचारों को जानना जरूरी है। वे कहते हैं कि—''... आप विश्वास कीजिए साप्ताहिक, मासिक, त्रैमासिक सब मिलाकर पांच-सात पत्रिकाएं तो रोज मेरे पास आती हैं। ये वो हैं जो आती हैं, ना जाने कितनी और हैं जो नहीं आती। हिंदी में आज करीब दो से ढाई हजार पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं और उनको पलटना तक मुश्किल है। इसलिए ये कहना कि हिंदी में पत्रिकाएं नहीं हैं गलत है... मुझे लगता है कि पत्रिका में जो चीज विशिष्ट होती है वह है रचनाएं। कई पत्रिकाओं में हम एक ही तरह की चीजें पाते हैं, कोई भी विषय लें जैसे उपन्यास पर केंद्रित पत्रिका 'उपन्यास' नाम से ही निकलती थी। जैसे आलोचना पर केंद्रित पत्रिका है और कविताओं पर तो खैर जरूरत ही नहीं कुछ कहने की। मेरा खयाल है कि 50 पत्रिकाएं ऐसी हैं जो सिर्फ कविताओं से भरी रहती हैं, जिन्हें कोई पढ़ता है या नहीं मालूम नहीं। हर अच्छी पत्रिका में संपादक को एक लीक पर चलना होता है, कि उसने 20-25 पन्ने कविता के डाले और जान छूट गई और कुछ सोचने की जरूरत ही नहीं।''[1]

पत्र-पत्रिकाओं पर चर्चा करने से पहले हिंदी पुस्तकों के प्रकाशन व उनके प्रचार-प्रसार पर कुछ रोचक तथ्यों से पाठकों को अवगत कराना जरूरी है। हिंदी में प्रकाशित पुस्तकों के प्रकाशकों का कहना है, कि पुस्तकों की बिक्री संतोषजनक नहीं है व इनके प्रकाशन में जितनी लागत आती है, उतना मुनाफा इनकी बिक्री से नहीं हो पाता है व हर बार नुकसान ही उठाना पड़ता है। इस संबंध में प्रख्यात कथाकार ममता कालिया अपने एक साक्षात्कार में कहती हैं कि—''किताबें इतनी महंगी होती हैं कि सभी के लिए इसे खरीदना संभव नहीं हो पाता। खुद मेरी किताबें इतनी महंगी हैं, कि मैं उन्हें खरीद नहीं पाती... आप सोचिए, साहित्य की रफ्तार पत्रिकाएं हैं।''[2] यहां पर ममता जी के किताबों के महंगी होने के संबंध में स्पष्टतः विचार परिलक्षित होते हैं।

''...आज प्रकाशक सपाट रूप से कहते हैं कि 'कोई पुस्तकें खरीदता नहीं' 'अधिकतर पुस्तकें तो पांच सौ प्रतियों के प्रिंट आर्डर से छपती हैं। वह भी रखी रहती हैं' आदि।''[3] कुछ हद तक यह बात सही भी हो सकती है, परंतु देश में हर वर्ष आयोजित होने वाले पुस्तक मेले कुछ और ही नजारा बयां करते हैं। यह पुस्तक मेले देश में हर वर्ष आयोजित किए जाते हैं, जिनमें देश भर के विभिन्न प्रकाशनों के साथ-साथ विदेशों के प्रकाशक भी अपनी पुस्तकों को बिक्री के लिए भाग लेते हैं व पुस्तक प्रेमी भी बड़ी संख्या में भाग लेते हैं और अपनी पसंद की पुस्तकों को खरीदते व साहित्यिक मित्रों को भेंट स्वरूप प्रदान करते हैं। इन मेलों में लाखों करोड़ों की पुस्तकों की बिक्री इस बात को पुष्ट करती है, कि आज भी देश में अच्छी पुस्तकों को खरीदने वाले पाठकों की कमी नहीं है बशर्ते उन्हें सही जगह व पुस्तकों का बेहतर प्रचार-प्रसार मिले तो पाठक मिल ही जाएंगे।

आज पाठकों की साहित्यिक उदासीनता का प्रकाशकों द्वारा रोना रोया जाता है, तो यह पुस्तक मेले देश भर में आयोजित नहीं किए जाते। जिसका सबसे बड़ा उदाहरण दिल्ली में प्रतिवर्ष फरवरी माह में आयोजित होने

वाला विश्व पुस्तक मेले का लिया जा सकता है, जो आज भी रिकार्ड पुस्तकों की बिक्री के लिए जाना जाता है और पाठकों के द्वारा इसका प्रतिवर्ष इंतजार किया जाता है। ''देश भर के रेलवे स्टेशनों के बुक स्टॉल गवाह हैं कि न केवल सस्ते उपन्यास, बल्कि हिंदी में उपलब्ध सर्वोत्तम स्तरीय साहित्य भी लोगों द्वारा निरंतर खरीदा जा रहा है। वह भी बिना विज्ञापन के। उसे साधारण पाठक खरीदते हैं। शरत्चंद्र, बंकिमचंद्र, रवींद्रनाथ, प्रेमचंद, बच्चन, दिनकर, अज्ञेय, वृंदावनलाल वर्मा, अमृतलाल नागर, नरेंद्र कोहली, टॉलस्टाय, चेखव, जेन ऑस्टिन, शेक्सपियर, डिकेंस, आर्वेल आदि अनेक लेखकों के जितने भी संस्करण, जितने तरह के प्रकाशकों द्वारा छापे जाते हैं, सब बिक जाते हैं।''[4] हां आज बेहतर प्रचार-प्रसार के अभाव में पुस्तकों की जानकारी पाठकों तक पहुंच नहीं पाती है, इस कारण अच्छी से अच्छी पुस्तकें पाठकों के इंतजार में दम तोड़ देती हैं। आज यह आवश्यक हो गया है कि पुस्तकों का बेहतर तरीके से प्रचार प्रसार किया जाए, तो देश में पुस्तकों को खरीदने वाले पाठकों की कमी नहीं है। सरकार को भी ऐसे तरीके खोजने होंगे, जिनके माध्यम से पुस्तकों की जानकारी आम पाठकों तक बेहतर तरीके से पहुंच सके तभी इनकी बिक्री को संतोषजनक बनाया जा सकता है।

इन पुस्तकों की बिक्री बड़ी हुई कीमत के कारण भी प्रभावित होती है। आज कोई भी पुस्तक उठाकर देख लो कीमत उनकी ज्यादा ही मिलेगी। अब अगर 50 पृष्ठ की पुस्तक की कीमत 200-250 रुपए के बीच होगी, तो क्योंकर पाठक उसको खरीदेगा। अब पाठक अपनी पसंद की पुस्तक को पढ़ना चाहता है मगर ज्यादा कीमत होने के कारण खरीद नहीं पाता है। इसलिए भी पुस्तकों की बिक्री प्रभावित होती है इसके लिए निजी प्रकाशक व शासन को भी इस दिशा में ठोस कदम उठाने होंगे, तभी पुस्तकों की बिक्री संतोषजनक बनाई जा सकती है। पुस्तकों की कीमत कम रखी जाए व ज्यादा से ज्यादा पुस्तकों को पेपरबैक में छापा जाना चाहिए, जिससे पुस्तकों को आम पाठक नसीब हो सके।

हममें से बहुतों को वह जमाना याद होगा, जब हिंद पॉकेट बुक्स ने पुस्तक व्यवसाय में क्रांति ला दी थी... जिसके कारण क्लासिक और अन्य अच्छी किताबें हर पुस्तक प्रेमी के हाथ में दिखाई देने लगी थी। हिंद पॉकेट बुक्स ने भी लाखों किताबें बेची होंगी, जिनमें से अधिकतर की कीमत एक रुपया थी। इसे हम पुस्तक संस्कृति और व्यावसायिकता का मधुर मिलन कह सकते हैं... वास्तव में, प्रकाशक लेखक और पाठक के बीच एक संवेदनशील पुल है। यह पुल ऐसा होना चाहिए जिस पर दोनों ओर से यात्रियों का तांता लगा रहे।''[5]

इस लिहाज से हिंदी में प्रकाशित होने वाली साहित्यिक लघु पत्रिकाओं की स्थिति बेहतर कही जा सकती है, क्योंकि एक तो इनकी कीमत कम होती है व आसानी से यह पत्रिकाएं पाठकों को रेलवे स्टेशन, बस स्टैंड एवं देश के प्रत्येक शहरों में खुले पुस्तकों व पत्र-पत्रिकाओं के स्टॉल पर प्राप्त हो जाती हैं। अतः इन पत्रिकाओं की स्थिति पुस्तकों की अपेक्षा बेहतर ही कही जा सकती है। प्रस्तुत आलेख में हिंदी में प्रकाशित हो रही छोटी बड़ी पत्रिकाएं, जिनमें मासिक, द्वैमासिक, त्रैमासिक, छमाही एवं वार्षिक पत्रिकाओं की स्थिति व उनके बेहतर प्रचार-प्रसार के संबंध में विचार किया गया है।

आज की महंगाई में कुछ पत्रिकाओं की बड़ी हुई कीमत से भी इनकार नहीं किया जा सकता है फिर भी यह एक अपवाद ही माना जाएगा। आज महंगी पत्रिकाओं में उज्जैन से प्रकाशित मासिक साहित्यिक पत्रिका 'समावर्तन' का नाम लिया जा सकता है। इस मासिक पत्रिका की कीमत 150 रुपए मासिक व वार्षिक 1500 रुपए है, जो किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है क्योंकि इतनी कीमत में एक अच्छी पुस्तक पाठक को मिल सकती है तो वह पत्रिका क्यों खरीदना चाहेगा। लगता है इस पत्रिका का प्रकाशन अमीर पाठकों के लिए किया जा रहा है, आम पाठकों को इसे पढ़ने के लिए सोचना बंद करना पड़ेगा। इसके उलट देश में सस्ती पत्रिका भी निकल रही है, जिसकी कीमत बहुत ही कम रखी गई है। इस संदर्भ में हिमाचल प्रदेश शिमला से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'हिमप्रस्थ' का नाम लिया जा सकता है। इस पत्रिका की मासिक कीमत मात्र 5 रुपए व 50 रुपए वार्षिक रखी गई है। यह एक संपूर्ण साहित्यिक पत्रिका है जिसमें सभी विचारों को समाहित किया गया है, जो आम पाठक के लिए पठनीय है। 50 पृष्ठ की यह साहित्यिक पत्रिका पाठकों का भरपूर ज्ञानवर्धन कम कीमत में करती है जो स्वागत योग्य है। अतः ऐसी पत्रिकाओं का बेहतर प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए व पाठकों तक ऐसी पत्रिकाओं की जानकारी पहुंचाई जानी चाहिए।

वर्तमान में लघु पत्रिकाओं के प्रकाशन को दो भागों में बांटा जा सकता है, एक शासकीय प्रकाशन और दूसरा गैर शासकीय प्रकाशन। आज देश में बहुतायत में शासकीय पत्रिकाएं नियमित रूप से निकल रही हैं, जिनमें से कई पत्रिकाओं को सरकार द्वारा निःशुल्क वितरण हेतु रखा गया है। ऐसी पत्रिकाओं का उद्देश्य पाठकों के बीच हिंदी भाषा का व साहित्य का बेहतर प्रचार व प्रसार करना है। इन पत्रिकाओं को पाठकों का भी भरपूर प्यार व स्नेह मिल रहा है। इन पत्रिकाओं का संपादन का भार वयोवृद्ध वरिष्ठ साहित्यकार संभाल रहे हैं, जिन्होंने तमाम जिंदगी पत्रकारिता व साहित्यिक क्षेत्र में गुजारी है। पत्रकारिता का संपूर्ण अनुभव इन पत्रिकाओं में मिलता है। पत्रिका को निरंतर गतिमान बनाए रखने के लिए सरकारी आर्थिक मदद भी प्राप्त होती है, जिसके कारण ये पत्रिकाएं पाठकों के बीच निरंतर अपनी उपस्थिति दर्ज कराने में

सहायक सिद्ध हो रही हैं। आज इन पत्रिकाओं की पाठक संख्या हजारों में नहीं लाखों में है, जो इनके प्रकाशित होने का हर माह इंतजार करते हैं।

ऐसी पत्रिकाओं में कुछ बेहतरीन पत्रिकाओं के नाम लिए जा सकते हैं, जो पाठकों पर अपनी पकड़ बनाए हुए हैं। हिंदी की डाइजेस्ट मासिक साहित्यिक पत्रिका 'नवनीत', जिसका प्रकाशन भारतीय विद्या भवन, क.मा. मुंशी मार्ग मुंबई से हर माह होता है। इस पत्रिका के संपादक विश्वनाथ सचदेव हैं।

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्व-विद्यालय वर्धा महाराष्ट्र तीन पत्रिकाओं का प्रकाशन करता है, जिसमें पहली है— 'बहुवचन' अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिक हिंदी पत्रिका। इस पत्रिका के संपादक अशोक मिश्र हैं। पत्रिका में कहानियां, कविताएं, संस्मरण, यात्रा वृतांत एवं आलोचना आदि से संबंधित सामग्री इसकी पहचान होती है। दूसरी पत्रिका है—'पुस्तक-वार्ता', द्वैमासिक समीक्षा पत्रिका, इस पत्रिका के द्वारा विभिन्न पुस्तकों की समीक्षा के साथ-साथ आलोचना, कविता, कहानी, साक्षात्कार, कला संस्कृति, हस्तक्षेप, हिंदी विमर्श, संस्मरण आदि के तहत पठनीय सामग्री प्रकाशित की जाती है एवं तीसरी पत्रिका है—'हिंदी लैंग्वेज डिस्कोर्स राइटिंग' यह त्रैमासिक अंग्रेजी की पत्रिका है। इस अंग्रेजी पत्रिका की संपादिका विद्वान लेखिका ममता कालिया हैं। इस पत्रिका में वैश्विक रचनाकारों की शॉर्ट स्टोरी, बुक रिव्यू, डिस्कोर्स, लैंग्वेज आदि के तहत स्तरीय सामग्री प्रस्तुत की जाती है, जो अंग्रेजी में पढ़ने वाले पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार 'संस्कृति' नामक सांस्कृतिक विचारों की प्रतिनिधि अर्द्धवार्षिक पत्रिका का प्रकाशन करता है। जो पाठकों को भारत की विभिन्न संस्कृतियों से परिचय करवाती है। इस पत्रिका के संपादक भारतेश कुमार मिश्र हैं, जो संयुक्त निदेशक संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार के पद पर पदस्थ हैं। यह पत्रिका पहले त्रैमासिक प्रकाशित की जाती थी और भारत सरकार द्वारा इसकी केवल 400 प्रतियां मुद्रित करवाई जाती थी। बीच में यह पत्रिका कुछ समय के लिए बंद कर देनी पड़ी थी। इसके बाद अक्टूबर सन् 2000 से इस पत्रिका का पुनः प्रकाशन किया गया। इस बार पत्रिका को छमाही कर दिया गया। अब इस पत्रिका की 3000 प्रतियां मुद्रित करवाई जाती हैं, जो देश के लगभग समस्त विश्वविद्यालयों, पुस्तकालयों, लेखकों, देश-विदेश के सुविख्यात विद्वानों को निःशुल्क उपलब्ध करवाई जाती है। इस पत्रिका की विभिन्न विशेषताओं के साथ-साथ यह भी एक विशेषता है कि यह पत्रिका पूर्णतः निःशुल्क है।

उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान हजरतगंज लखनऊ द्वारा पत्रिका प्रकाशन योजना व बाल साहित्य संवर्धन योजना के अंतर्गत साहित्य भारती त्रैमासिक पत्रिका तथा बच्चों की प्रिय पत्रिका बालवाणी द्वैमासिक का प्रकाशन किया जाता है। साहित्य भारती त्रैमासिक पत्रिका की संपादक डॉ. अमिता दुबे हैं। पत्रिका में साहित्य की लगभग सभी विधाओं की रचनाओं को प्रमुखता के साथ प्रकाशित किया जाता है। साहित्य भारती त्रैमासिक पत्रिका के प्रतिवर्ष चार अंक प्रकाशित किए जाते हैं। इसी संस्थान द्वारा बच्चों की प्रिय पत्रिका बालवाणी द्वैमासिक का प्रकाशन किया जाता है जिसका स्वागत बाल पाठकों एवं सुधी समीक्षकों द्वारा निरंतर किया जाता है। इस पत्रिका के वर्ष में छह अंक प्रकाशित किए जाते हैं।

राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'मधुमती' के प्रबंध संपादक डॉ. प्रमोद भट्ट हैं। पत्रिका में विभिन्न विषयों आलेखों के साथ-साथ साक्षात्कार, परिचर्चा, कहानियां एवं अनुवाद से संबंधित सामग्री को प्रस्तुत किया जाता है जो पठनीय है। साहित्य और संस्कृति की मासिक पत्रिका 'वागार्थ', कोलकाता से प्रकाशित होती है, जिसके संपादक एकांत श्रीवास्तव व कुसुम खेमानी हैं। पत्रिका में साहित्य की विभिन्न विधाओं जैसे—कहानी, कविता, गीत, गजल आदि के साथ कथा साहित्य के तहत विचारोत्तेजक सामग्री प्रस्तुत की जाती है जो पठनीय है।

राष्ट्रभाषा हिंदी एवं साहित्य के मूल्यों को समाज तक पहुंचाने के उद्देश्य से वर्ष 1927 में पत्रिका 'वीणा' का प्रकाशन प्रारंभ किया था, तब से यह पत्रिका निरंतर प्रकाशित हो रही है। इस पत्रिका को आरंभ से देश के कालजयी रचनाकारों की लेखनी का सहयोग प्राप्त हो रहा है। पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल विहारी वाजपेयी जी भी युवावस्था में 'वीणा' के लेखक रहे हैं। 'वीणा' के शोधपरक लेख छात्रों के लिए काफी उपयोगी साबित होते हैं। अभी तक 'वीणा' का संपादन सोलह महान विभूतियों द्वारा किया गया है। वर्तमान में इसके संपादक डॉ. विनायक पांडेय हैं। इस पत्रिका के अब तक विभिन्न अवसरों पर 30 विशेषांक प्रकाशित हो चुके हैं। वर्तमान में यह पत्रिका मध्यप्रदेश के इंदौर जिले से प्रकाशित हो रही है। इस मासिक पत्रिका में साहित्य की अमूल्य धरोहरों को समाहित किया जाता है, जो पढ़ने योग्य होती है।

हिमाचल प्रदेश शिमला से दो बेहतरीन पत्रिकाओं को प्रकाशन किया जाता है। इसमें सर्वप्रथम मासिक पत्रिका 'हिमप्रस्थ' का नाम लिया जा सकता है। इस पत्रिका के संपादक श्री वेदप्रकाश जी हैं। पत्रिका में साहित्य की लगभग समस्त विधाओं की रचनाओं को प्रमुखता के साथ छापा जाता है। इस पत्रिका की सबसे बड़ी विशेषता इसकी कम कीमत होना भी है। वर्तमान में यह पत्रिका 5 रुपए मासिक एवं 50 रुपए वार्षिक शुल्क के साथ प्रकाशित हो रही है। कम कीमत में यह पत्रिका

पाठकों का भरपूर ज्ञानवर्धन करती है। इस संस्था से दूसरी पत्रिका हिमाचल की प्रगति व संस्कृति के दर्पण की तरह साप्ताहिक रूप में 'गिरीराज' नाम से प्रकाशित होती है। इस पत्र के संपादक विनोद भारद्वाज हैं। यह एक साप्ताहिक पत्र है, जो प्रत्येक बुधवार को प्रकाशित होता है। इस पत्र में वर्तमान समसामयिक घटनाओं की जानकारी के साथ-साथ साहित्य को भी प्रमुखता के साथ छापा जाता है। यह पत्र पिछले 37 वर्षों से निरंतर प्रकाशित हो रहा है।

हिंदुस्तानी प्रचार सभा द्वारा 'हिंदुस्तानी जबान' नामक एक द्विभाषी पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है। यह पत्रिका हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं का रूप सामने रखती है। इस पत्रिका के अभी तक 'सूरदास विशेषांक', 'अमीर खुसरो विशेषांक', 'गांधी विशेषांक' और 'गालिब विशेषांक' विशेष उल्लेखनीय हैं। पत्रिका की प्रधान संपादक डॉ. सुशीला गुप्ता हैं, एवं पत्रिका मुंबई से प्रकाशित हो रही है। पत्रिका में साहित्य की लगभग सभी विधाओं की सामग्री को भरपूर स्थान मिलता है, जो पठनीय होती है।

मुगलसराय चंदौली से प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका 'रेलमुक्ता' एक निःशुल्क पत्रिका है। पत्रिका के संपादक दिनेशचंद हैं। प्रकाशन विभाग नई दिल्ली द्वारा साहित्य व संस्कृति की मासिक पत्रिका 'आजकल' का प्रकाशन वर्ष 1945 से निरंतर किया जा रहा है। अभी हाल ही में इस पत्रिका ने अपने प्रकाशन के 70 वर्ष पूर्ण कर लिए हैं। वर्तमान में पत्रिका की संपादिका फरहत परवीन हैं। पत्रिका में साहित्य व संस्कृति की बेहतरीन रचनाओं को शामिल किया जाता है, जो ज्ञानवर्धक होती हैं। आज इस पत्रिका के देश में हजारों नहीं, बल्कि लाखों पाठक इस पत्रिका को खरीदते हैं। पत्रिका अपने प्रकाशन समय से ही पाठकों के बीच एक सेतु बनाने में सहायक सिद्ध हुई है।

मध्यप्रदेश हिंदी प्रचार सभा भोपाल से साहित्य की द्वैमासिक पत्रिका 'अक्षरा' प्रकाशित हो रही है। पत्रिका के प्रधान संपादक डॉ. कैलाशचंद्र पंत हैं एवं पत्रिका की संपादिका डॉ. सुनीता खत्री हैं। यह पत्रिका भी अपनी विचारोत्तेजक सामग्री से पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने में एक मुख्य भूमिका निभा रही है। भारत भवन भोपाल से साहित्य की आलोचनात्मक त्रैमासिक पत्रिका 'पूर्वग्रह' प्रकाशित की जा रही है। पत्रिका के प्रधान संपादक रामेश्वर मिश्र 'पंकज' हैं। पत्रिका का प्रकाशन श्यामला हिल्स भोपाल से किया जाता है। पत्रिका में आलोचनात्मक लेखों को वरीयता दी जाती है। दूरदर्शन की मीडिया, साहित्य, संस्कृति और विचार की साहित्यिक मासिक पत्रिका 'दृश्यांतर' का प्रकाशन नई दिल्ली से किया जा रहा है। पत्रिका के संपादक श्री अजीत राय हैं। इस पत्रिका ने कम समय में ही पाठकों के बीच अपनी जगह बना ली है।

राजभाषा विभाग गृह मंत्रालय भारत सरकार नई दिल्ली से 'राजभाषा भारती' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। इस पत्रिका के संपादक हरिंद्र कुमार हैं। सहायक संपादक राकेश शर्मा 'निषीथ' हैं। पत्रिका में हिंदी भाषा के विकास, प्रचार-प्रसार से संबंधित सामग्री को वरीयता के साथ प्रकाशित किया जाता है। यह पत्रिका पूर्णतः निःशुल्क है। कोई भी पाठक इस पत्रिका को आसानी से मंगा सकता है। पत्रिका का कलेवर व सामग्री उच्च स्तरीय है, जो पाठकों पर अपनी छाप छोड़ने में सहायक सिद्ध हो रही है। हिमाचल प्रदेश शिमला से प्रकाशित द्वैमासिक पत्रिका 'विपाशा' एक शुद्ध साहित्यिक पत्रिका है। पत्रिका के मुख्य संपादक अरुण कुमार शर्मा एवं उप संपादक अजय शर्मा हैं। हिंदी अकादमी से त्रैमासिक पत्रिका 'इंद्रप्रस्थ भारती' प्रकाशित होती है, जिसका प्रकाशन नई दिल्ली से किया जा रहा है तथा पत्रिका का संपादन डॉ. हरिसुमन बिष्ट संभाल रहे हैं। साहित्य अकादमी नई दिल्ली से एक द्वैमासिक पत्रिका 'समकालीन भारतीय साहित्य' का प्रकाशन किया जा रहा है।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय की पत्रिका 'भाषा' है, जो अगस्त 1960 से नियमित रूप से प्रकाशित की जा रही है। यह पत्रिका दिसंबर 1991 तक त्रैमासिक थी। वर्ष 1992 के आरंभ से इसका प्रकाशन निरंतर द्वैमासिक पत्रिका के रूप में हो रहा है। भाषा में भाषाविज्ञान, व्याकरण, तुलनात्मक भारतीय साहित्य और साहित्य की विभिन्न विधाओं पर आलोचनात्मक लेख तथा सामयिक विषयों पर वैचारिक लेख प्रकाशित किए जाते हैं। इसके साथ ही संविधान स्वीकृत अन्य भारतीय भाषाओं की हिंदी में अनूदित कहानियां व कविताएं तथा हिंदी में अद्यतन प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षाएं भी प्रकाशित की जाती हैं। पत्रिका का प्रकाशन नई दिल्ली से किया जा रहा है।

यह वह शासकीय पत्रिकाएं हैं, जो अपनी सामग्री व कलेवर की वजह से पाठकों के बीच अपनी उपस्थिति दर्ज कराने में पूर्णतः सिद्ध हो रही हैं। मेरी जानकारी के अनुसार प्रसिद्ध मुख्य-मुख्य शासकीय लघु पत्रिकाओं का परिचय ऊपर दिया जा चुका है। इन पत्रिकाओं के अलावा अन्य शासकीय पत्रिकाओं के प्रकाशन से इनकार नहीं किया जा सकता है। नीचे गैर-शासकीय मुख्य पत्रिकाओं के विषय में भी पाठकों को जानना जरूरी है, जो अपनी उच्च साहित्यिक सुरुचिपूर्ण सामग्री के कारण पाठकों के बीच अपनी जगह बनाए रखने में सफल सिद्ध हो रही हैं।

प्रमुख पत्रिकाओं के नाम इस प्रकार हैं— 'प्रेरणा', त्रैमासिक पत्रिका, 'परीकथा', द्वैमासिक पत्रिका, 'वर्तमान साहित्य' मासिक पत्रिका, 'पाखी' मासिक पत्रिका, 'कथाक्रम' त्रैमासिक पत्रिका, 'व्यंग्य यात्रा' त्रैमासिक पत्रिका, 'अभिनव इमरोज' मासिक पत्रिका, 'समीक्षा' त्रैमासिक पत्रिका, 'शोधदिशा' त्रैमासिक पत्रिका, 'सरस्वती सुमन' त्रैमासिक

पत्रिका, 'दूसरी परंपरा' त्रैमासिक पत्रिका, 'कथादेश' मासिक पत्रिका, 'लहक' मासिक पत्रिका, 'संप्रेषण' त्रैमासिक पत्रिका, 'चिंतन दिशा' त्रैमासिक पत्रिका, 'परिंदे' द्वैमासिक पत्रिका आदि। चूंकि देश से आज हजारों की संख्या में पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं, सभी का वर्णन यहां स्थानाभाव के कारण करना संभव नहीं है। आलेख में लोकप्रिय मुख्य-मुख्य पत्रिकाओं की एक छोटी सी जानकारी पाठकों के समक्ष रखी गई है।

आज कंप्यूटर व इंटरनेट के युग में कुछ पत्रिकाएं वेबजाल पर प्रकाशित की जा रही हैं। यह भी एक सराहनीय क्रांतिकारी कदम है, क्योंकि वेबजाल पर प्रकाशित होने से यह पत्रिकाएं देश में ही नहीं बल्कि विदेशों में बैठे प्रवासी भारतीय पाठक भी आसानी से इन पत्रिकाओं को पढ़ सकते हैं। इस तरह से इन पत्रिकाओं के प्रकाशकों द्वारा इन्हें विदेश में भेजने का डाक खर्च भी बच जाता है, जो कि काफी ज्यादा होता है और पत्रिका भी काफी समय बाद पाठकों तक पहुंचती थी। अब पाठकों को वेबजाल पर प्रकाशित होने से काफी सुविधा हो गई है तथा आराम से इन पत्रिकाओं को पढ़ा जा सकता है। इस लिहाज से वेबजाल पर पत्रिकाओं का प्रकाशन पाठकों के दृष्टिकोण से लाभप्रद ही माना जाएगा।

समग्रतः यह आसानी से कहा जा सकता है कि भारतवर्ष शुरू से ही आध्यात्मिक व साहित्यिक विधा का गढ़ रहा है, जहां पर प्राचीनकाल से ही भारतवर्ष के निवासी रामायण, महाभारत, श्रीमद्भगवदगीता, वेद, पुराण आदि ग्रंथों का अवलोकन करते चले आ रहे हैं और यह सिलसिला आज भी बदस्तूर चालू है। साहित्यिक विधा हमेशा से ही पाठकों के बीच लोकप्रिय रही है। आज भी पाठकों के बीच कई हजार छोटी-बड़ी साहित्यिक पत्रिकाएं हमारे देश से प्रकाशित हो रही हैं, जो पाठकों के बीच लगातार अपनी उपस्थिति बनाए हुए हैं। जरूरत केवल इन पत्रिकाओं के बेहतर प्रचार व प्रसार की है, ताकि जनमानस तक इन पत्रिकाओं को सीधे पहुंचाया जा सके। सरकार को भी इस दिशा में कुछ निर्णय लेने होंगे ताकि साहित्य की यह परंपरा हमेशा कायम रह सके।

संदर्भ–

1. राजेंद्र यादव का अंतिम भाषण, दृश्यांतर, मासिक पत्रिका, सितंबर, 2013, दूरदर्शन नई दिल्ली, पृष्ठ 71
2. साक्षात्कार, आजकल मासिक पत्रिका, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, जनवरी 2008, पृष्ठ 33
3. पाठक से दूरी का सच, श्री शंकरशरण, जनसत्ता दैनिक पत्र, नई दिल्ली दिनांक 26 अक्तूबर 2014
4. पाठक से दूसरी का सच, श्री शंकरशरण, जनसत्ता, दैनिक पत्र, नई दिल्ली, दिनांक 26 अक्तूबर, 2014
5. मगर हिंदी के प्रकाशक हैं कितने, श्री राजकिशोर, जनसत्ता दैनिक पत्र, नई दिल्ली, दिनांक 2 नवंबर, 2014

आवास क्रमांक एच-3,
राजीव गांधी प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
एयरपोर्ट बायपास रोड, गांधीनगर,
भोपाल-462033 (मध्य प्रदेश)

कदंब का फूल

डॉ. सोनवणे राजेंद्र 'अक्षत'

कई पुरस्कारों से सम्मानित डॉ. सोनवाणे राजेंद्र 'अक्षत' की दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कई शोध आलेख, कई काव्य संकलनों में कविताएं प्रकाशित तथा कई राष्ट्रीय गोष्ठियों में हिस्सेदारी। अहिंदीभाषी महाराष्ट्र से चौदह साल से हिंदी साहित्य और शोध की पत्रिका 'लोकयज्ञ' का संपादन और प्रकाशन।

हमारा प्यारा भारतवर्ष विश्व संस्कृति में एकमात्र ऐसा देश है, जो 'नदी', 'वृक्ष' और 'पशु' को देवता मानकर उसका पूजन-अर्चन करता है। नदी, वृक्ष और पशुओं से हमारी धार्मिक आस्था जुड़ी हुई है। इसी कारण गंगा और गाय को हम माता मानते हैं। बरगद, पीपल, शमी, अशोक, शिरिष जैसे वृक्ष हमारे लिए आदर और सम्मान के प्रतीक हैं। आम और चंदन वृक्ष तो हमारे लिए सबसे पवित्र और मांगलिक वृक्ष हैं। खैर! ऐसा ही प्राचीन और पवित्र वृक्ष है 'कदंब'। कदंब से मेरा सर्वप्रथम परिचय छात्र अवस्था में हुआ मैथिली कोकिल विद्यापति का पद—

''नंदक नंदन कदंबक तरू तर
धिरे धिरे मुरली बजाए
समय संकेत निकेतन बइसल
बेरि बेरि बोलि पढाव।।''

पढ़ते समय मैंने प्रोफेसर से पूछा था कि 'कदंब वृक्ष कैसा होता है?'' उन्होंने उनको जैसा ज्ञात था वैसे 'कदंब' वृक्ष मेरे सामने खड़ा किया, मगर मेरा समाधान नहीं हुआ। तब से 'कदंब' वृक्ष के प्रति मैं आकर्षित रहा। जब कभी यत्र-तत्र वृक्षराज कदंब के संबंध में कुछ पढ़ने को मिलता मैं उसे पढ़ता जाता था।

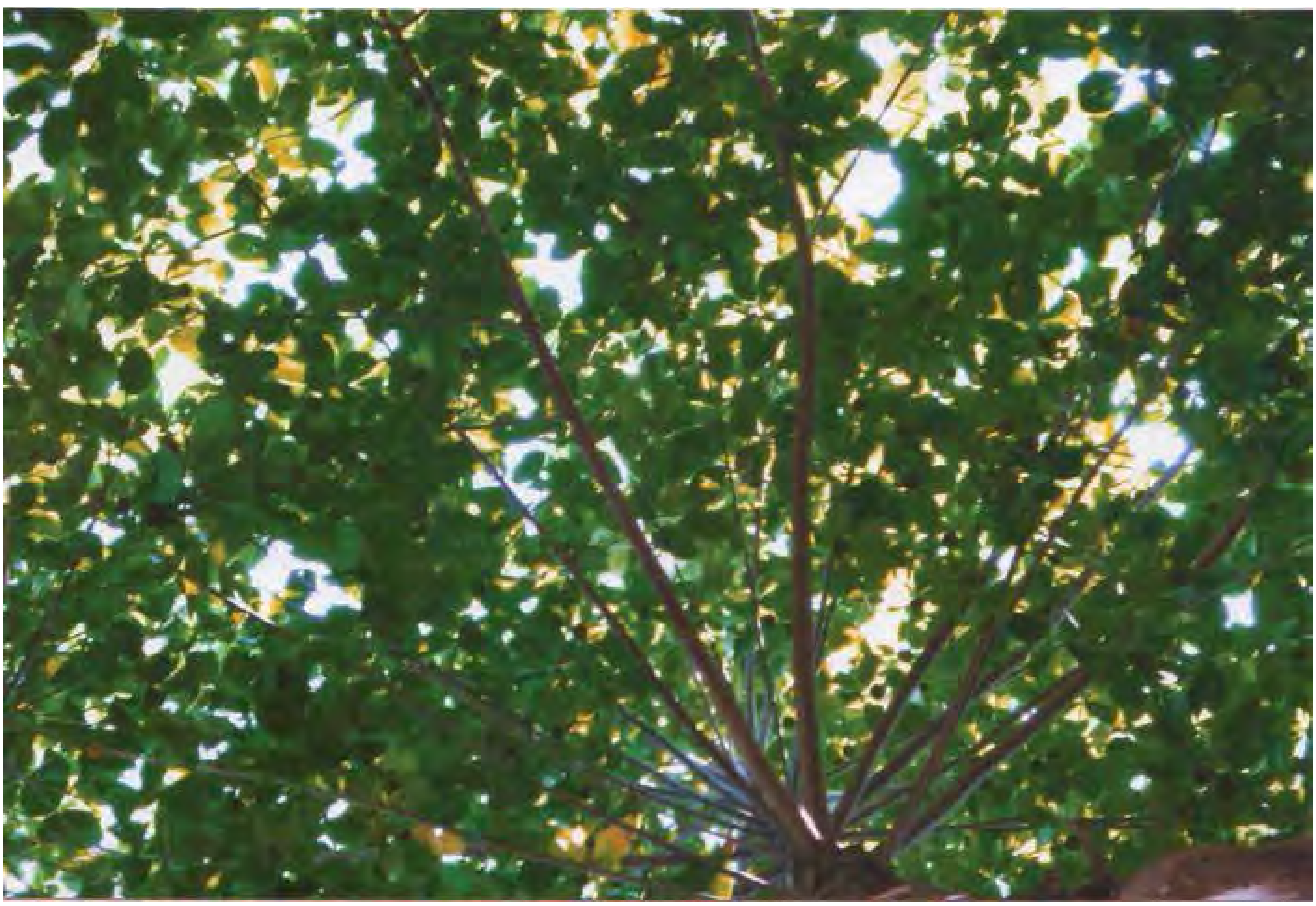

(कृष्णप्रिय कदंब वृक्ष)

(कदंब वृक्ष का आकर्षक फूल)

सुभद्रा कुमारी चौहान की वह बाल कविता भी मैंने पढ़ी, जो 'कदंब' पर लिखी गई थी।

''यह कदंब पेड़ अगर
मां होता यमुना तीरे
मैं भी उस पर बैठ
कन्हैया बनता धीरे-धीरे
ले देती यदि मुझे बांसुरी
तुम दो पैसों वाली
किसी तरह नीची हो जाती
यह कदंब की डाली
तुम्हें नहीं कुछ कहता
पर मैं चुपके चुपके आता
उस नीची डाली से
अम्मा ऊंचे पर चढ़ जाता।।''

भगवान श्रीकृष्ण कुंज-निकुंजों में कदंब वृक्ष के गेंद जैसे गोल, लाल-पीताभ हरीतिमायुक्त चतुर्दिक से घिरे, पुष्पगंध से सुरभित वातावरण में अपनी लीलाएं दिखाते होंगे। कभी कालिंदी के तट पर कदंब की डालियों पर बैठकर मुरली बजाकर गायों और गोपियों को बुलाते होंगे। तो कभी इसी कदंब पर बैठकर गोपिकाओं के कपड़े चुराते होंगे। 'कदंब' भगवान कृष्ण का सबसे प्रिय वृक्ष। इसी कारण समस्त कृष्ण लीलाओं में उद्धव जैसा ही कदंब को स्थान मिला। गोपालजी गुप्त इस संबंध में लिखते हैं, कि ''शृंगार के अवतार श्रीकृष्ण की श्रेयस भाव-भाविता-प्रणय-लीला को जयदेव ने गीत गोविंदम् द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया तो उस प्रतिष्ठा की रक्षार्थ अनेक गीत-काव्य सृजित हुए, जिसमें कृष्ण कथा का अनुकरण किया गया। हिंदी साहित्य में कदंब मात्र कृष्ण से संबद्ध रहा, जबकि संस्कृत साहित्य में कालिदास, बाणभट्ट, माघ, भारवि, वाल्मीकि, भवभूति आदि ने कदंब के विविध रूप प्रदर्शित किए।'' कृष्ण प्रिय और कवि प्रिय वृक्ष 'कदंब' भारतीय उपमहाद्वीप में उगने वाला सबसे सुंदर वृक्ष है। इसका वानस्पतिक नाम 'एंथोसिफेलस कदंबा' या 'एंथोसिफेलस इंडिकस' है। जो रुबियसी परिवार से संबंधित माना जाता है। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, बंगाल, ओड़िशा, असम और महाराष्ट्र में यह वृक्ष बहुतायत में उगता है। मगर मराठवाड़ा की सूखी भूमि से यह खफा है। मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था, कि जिस वृक्ष को देखने की लालसा मैं काफी दिनों से मन में पाल रहा था, वह मेरे द्वार पर ही अंकुरित होगा, पल्लवित और पुष्पित होगा।'' जिसको दर-दर वह दरवाजे पर हाजिर।

जब द्वार पर बिल्डर से तीन छोटे-छोटे वृक्ष सौंदर्यीकरण हेतु लगाए तो उसे भी ज्ञात नहीं था, कि वह कृष्णप्रिय तरू कदंब लगा रहा है। जब हम नए मकान में रहने गए, तो उन पौधों को हर दिन पानी देते रहे। कदंब एक साल में ही इतना बढ़ा कि उसने बिल्डिंग की

(कदंब वृक्ष का उपयोगी फल)

पहली मंजिल पार कर ली। तब मैं जान गया कि यही मेरा कृष्ण सखा 'कदंब' है, जिसे मैं सालों से ढूंढ रहा था। कदंब एक जल वृक्ष है। जहां पानी ज्यादा होता है, वहां यह जल्दी बढ़ता है। संस्कृत साहित्य में वर्षा ऋतु का वर्णन कदंब के बिना पूर्ण नहीं होता। इसी कारण इसे 'मेघान', 'मेघप्रिय' कहा जाता है। ज्योतिषशास्त्रियों ने भी कदंब का संबंध 'शतभिषा' नक्षत्र से जोड़ा है और इसका जलदेवता वरुण से संबंध किया है। जब वर्षा होती है तो बरसने वाला पानी कदंब की डालियों से सीधा तने की ओर आता है ओर तने से सीधा जमीन की ओर जाता है। जल पुनर्भरण की दृष्टि से 'कदंब' निसर्ग ने पृथ्वी को दिया हुआ सबसे बड़ा वरदान है। कदंब बारिश का अधिक से अधिक पानी पृथ्वी के गर्भ में पहुंचाने का काम करता है। वर्षा ऋतु और कदंब पर महाकवि पद्माकर ने अनेकों पदों की रचना की है। कुछ पद दृष्टव्य हैं–

''बरसात मेह नेह सरसत अंग-अंग
झुरसत जैसे जरत जवासौं हैं।
कहैं पद्माकर कालिंदी के कदंब पै
मधुबनि कीन्हौ आई महता निवासी हैं।

अथवा

लालन पै ताल पै तमालन पै आलम पै
लालभाल पै रसाल सरस्यौ करै
कहै कवि पद्माकर कुंद-कुंद बंदन पै
चंदन पै चंद पै मलंद बरस्सौ परै
केकी केलि, केसर, करंज, केतकी पै
कंज, कारकुल, कोकिल, कदंब परस्यौ करै
रंग रंग रागन पै, संग हौ परवन पै
वृंदावन बागन पै बसंत बरस्यौ परै।''

मेघप्रिय होने के कारण ऐसा कहा जाता है, कि कदंब के फूल बादलों की गर्जना के साथ खिल जाते हैं। कवियों का मानना तो यह है कि आकाश में काले मेघ देखकर ही कदंब पुष्प विकसित होते हैं। खैर! इतना तो सही है कि वर्षा ऋतु में ही कदंब खिलता है। इसके फूल लाल, गुलाबी, पीले और नारंगी रंग की विभिन्न छटाओं वाले होते हैं। अन्य फूलों से यह अलग होते हैं। इनका आकार गोल-गोल गेंद की तरह होता है। जिसका व्यास 55 से.मी. होता है। अनेक उभयलिंगी पुंकेसर कोमल शर की भांति बाहर की ओर निकलते हैं। जो गुच्छों में खिलते हैं। मजेदार बात इन फूलों की यह है, कि रात्रि में ही यह एक दो घंटे में खिलते हैं जिस कारण चारों ओर सुगंध बिखर जाती है। पूरा वृक्ष कुछ घंटों में ही खिल जाता है, जिसकी गंध से लाखों की तादाद में पराग प्रिय भौरें और मधुमक्खियां कदंब पर मंडराने लगती हैं। वृक्ष के आस-पास केवल और केवल गुंजार ही गुंजार सुनाई पड़ता है। इसी कारण कदंब का एक नाम 'भ्रमरप्रिय' भी है। कदंब के फूलों को खिला हुआ देखना वास्तव में एक अलौकिक आत्मानुभूति है। रात्रि के अंधकार में कदंब के वृक्षों पर खिले पुष्प देखकर ऐसा लगता है, मानो किसी ने पेड़ पर छोटे-छोटे हजारों रोशनी के पीले लाल

बल्ब लगाए हैं, या हजारों लघु चंद्र ईश्वर ने कदंब पर छिटक दिए हैं। लाखों चंद्रबिंब पत्तों की आड़ में लुकाछिपी कर रहे हैं या लाखों सूर्यबिंब कदंब के पत्तों पर सोए हुए हैं। कदंब के फूलों पर पीले-लाल केशरी पराग होते हैं, जो एक दिन में सूखकर नीचे गिरते हैं। इसे 'हरिद्र' या 'नीप' भी कहा जाता है। कदंब के फूलों का उपयोग प्राचीन काल से एक विशेष प्रकार के इत्र बनाने में किया जाता है, जो बेहद सुंदर और सुगंधित होता है। इसी कारण अंग्रेजी में कदंब को रूबीसियास कहते हैं। गंध, मंदेरा, सुवासमद, सुरभि आदि इसके पर्याय हैं। कदंब का फूल तंत्र साहित्य में महाकाली का अतिप्रिय फूल है। इतना ही नहीं महार्णव तंत्र में काली का एक नाम 'कादंबिनी' भी है। ब्रह्मांड पुराण में ललिता देवी (पार्वती) को 'कांदिवेशी' कहा है। महाकवि कालिदास ने कदंब के फूलों से निर्मित मदिरा को 'कादंबरी' कहा है। कादंबरी मदिरा भगवान कृष्ण के भाई बलराम का प्रिय मद्य भी था। 'कदंब' जिस प्रकार 'हरिप्रिय' है, उसी प्रकार 'हलप्रिय' भी है। कदंब के फूल ईश्वर ने वन देवता को दिया हुआ सबसे अमूल्य उपहार है। इन फूलों की तुलना सृष्टि के किसी भी फूल से नहीं की जा सकती। यह फूल अपने आप में अलौकिक, सुंदर, चित्ताकर्षक, सुरभिमय, कंचन गोल है जिसकी कीमत बताई नहीं जा सकती। शायद इन फूलों को देखकर ही कवि रसखान 'कदंब' के दीवाने हो गए थे। वह कदंब के लिए आठों सिद्धियां तथा नवों निधियों तक को त्यागने के लिए तैयार थे—

''मानुष हौ तो वही रसखान
बसौ ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पशु हौं तो कहा बस मेरो
चरो नित नंद धेनु मंझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि को
जो धरयो कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौ नित
कालिंदी कूल कदंब के डारन।।''

उनकी इच्छा अगले जन्म में पक्षी बन कालिंदी के तट पर कदंब की डाली पर बैठने की थी।

(कदंब वृक्ष के पत्ते)

कालिदास की नायिकाएं कदंब के फूलों का शृंगार प्रसाधन करके अपने प्रेमियों के मन में काम का सद्यः प्रादुर्भाव कर देती थी। आजकल गोवर्धन क्षेत्र में जिन नवीन कदंब वृक्षों का रोपण किया गया है वो ब्रज के कदंब से अलग होता है, जिसके फूल बड़े होते हैं, मगर उसकी सुगंध नहीं आती। जिस तरह फूल गुच्छेदार होते हैं, उसी तरह फल भी गुच्छेदार और छोटे होते हैं। बाद में यह थोड़े बड़े हो जाते हैं। फल में चार संपुट होते हैं, जिनकी खड़ी-आड़ी पंक्तियों में लगभग 8000 बीज होते हैं। पकने पर यह फल फट जाते हैं। इनके बीज हवा या पानी से दूर-दूर तक जाते हैं। आयुर्वेदिक दृष्टि से कदंब के फल बहुत ही उपयोगी होते हैं। बाबा रामदेव के साथ योगी बालकृष्ण जी के मतानुसार ''कदंब के फूल अत्यंत पौष्टिक और धातुवर्धक होते हैं। कच्चे फलों को तोड़कर उसके टुकड़े करके,

सुखाकर उसका चूरा कर, उस का सुबह-शाम दूध के साथ सेवन करने से शारीरिक दुर्बलता, क्षीणता दूर होती है।

कदंब के फूल-फल ही केवल उपयोगी नहीं हैं, इसके पत्ते तक बहुत उपयोगी हैं। पत्ते महुवा से मिलते-जुलते होते हैं और चमकीले घने होते हैं। जिस कारण वृक्ष के नीचे अत्याधिक घनी छांव पड़ती है। ग्रीष्म में कदंब के छायादार पेड़ के नीचे बैठना नैसर्गिक एसी का आनंद देता है। पत्ते भी औषधीय गुणों की खान होते हैं। जो 13 से 23 से.मी. के हो सकते हैं। पत्तियां उभरी मोटी और उभरी नसों वाली होती हैं। हर दिन सुबह 100 मिली पानी में कदंब की पत्तियां उबालकर पीने से 'अस्थमा' जैसी लाईलाज बिमारी तक ठीक होती है। इतना ही नहीं पत्तों को पानी में डालकर उसे उबालकर उस पानी से कुल्ला करने पर सारे मुखरोग दूर होते हैं। यहां तक कि अल्सर और मुंह के छालों पर भी यह रामबाण उपाय है। यह वृक्ष विशालकाय 30-40 फीट का होने के कारण केवल जमीन की धूप ही नहीं रोकता साथ में ढेर सारी पत्तियां भी झाड़ता है, जिस कारण जमीन उपजाऊ बनती है। साथ में इसकी हरी पत्तियां गायों के लिए सबसे पौष्टिक भोजन तक साबित होती है।

कदंब का तना 100 से 160 सेंटीमीटर व्यास तक का हो सकता है। जो चिकना और सफेदी लिए हुए होता है। तना हल्के भूरे रंग का होता है, जो बड़ा होने पर खुरदरा और धारीदार होता है। अधिक बड़ा और पुराना होने पर धारियां नष्ट होकर चकतों जैसी बन जाती हैं। कदंब की लकड़ी सफेद से हल्की पीली होती है। जिसका घनत्व 290 से 580 क्यूबिक प्रति मीटर और नमी लगभग 15 प्रतिशत होती है। लकड़ी के रेशे सीधे होते हैं और वह छूने पर चिकने लगते है। जिसमें नमी होती है मगर गंध नहीं होती, जिस कारण यह जल्दी ही सूखती है। इस लकड़ी का उपयोग उत्कृष्ट जलावन के रूप में तो होता ही है साथ में इसका उपयोग मकान, कागज की लुगदी, बक्से, क्रेट, नाव और सुंदर फर्नीचर बनाने के लिए किया जाता है। इस लकड़ी को राल या रोजिन से मजबूती दी जा सकती है। मैंने यहां तक पढ़ा है कि तने की खाल से शक्तिवर्धक औषधियां तक बनाई जाती हैं। आयुर्वेद में इसकी सूखी लकड़ी से ज्वर दूर करने की दवा बनाने का उल्लेख मिलता है।

भारतीय जंगलों को फिर से हरा-भरा करने, घर की शोभा बढ़ाने (ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार घर की पूर्व दिशा में उगने वाला कदंब शुभ होता है), धरती पर धूप कम करने वाला, उपजाऊ बनाने वाला, धरती की गोद पानी से भरने वाला, धूलि कदंब पृथ्वी का कल्पवृक्ष है। बच्चों का हाजमा ठीक करने में कदंब के फलों का रस बड़ा फायदेमंद होता है। इसके फलों की हरी चटनी बड़ी स्वादिष्ट होती है।

'कदंब' की कई जातियां पाई जाती हैं, जिसमें श्वेत, पीत, लाल और द्रोण जाति के कदंब उल्लेखनीय हैं। भारत में अधिक मात्रा में श्वेत-पीत रंग के फूलदार कदंब ही पाए जाते हैं। श्याम डाक आदि कुछ स्थानों में कुछ कदंब की ऐसी जातियां भी हैं, जिनमें प्राकृतिक रूप से दोनों की तरह मुड़े हुए पत्ते होते हैं। इन्हें 'द्रोण कदंब' कहा जाता है। साथ ही कुमुदबन की कदंबखंडी में लाल रंग के फूल वाले कदंब भी पाए जाते हैं। महाराष्ट्र के कोंकण क्षेत्र में जो कदंब उगता है, उसका फल कांटेदार होता है। महाभारत काल में 'कदंबवन' हुआ करते थे। ब्रजलीला स्थलों पर भी मध्यकाल में अनेक कदंबवन लगाए गए थे। जिन्हें 'कदंबखंडी' कहा जाता था। जहां अनेक ऋषि-मुनियों के आश्रम हुआ करते थे। जहां साधनाएं की जाती थीं।

''जयपुर के सुरेश शर्मा ने कदंब के पेड़ से एक ऐसी दवा विकसित की है, जो टाईप-2 डायबिटीज का उपचार कर सकती है। भारत सरकार के कंट्रोलर जनरल ऑफ पेटेंट्स द्वारा इस दवा का पेटेंट भी किया गया है। डॉ. शर्मा के अनुसार कदंब के पेड़ों में हाइड्रोसिनकोलाइन और कैडेमबाईन नामक दो प्रकार के क्विनोलाइन अलकेलाइट्स होते हैं। इनमें हाइड्रोसिनकोलाइन शरीर में बनने वाली इंसुलिन के उत्पादन को नियंत्रित करती है और कैडेमबाईन इंसुलिन ग्राहियों को फिर से इंसुलिन ग्रहण करने के प्रति संवेदनशील बना देती है। गौर करने की बात यह है कि टाईप-2 डायबिटीज में या तो शरीर पर्याप्त इंसुलिन पैदा नहीं करता है या फिर कोशिकाएं इंसुलिन करने के प्रति संवेदनशीलता खो देती हैं।''

भारत में 'सागौन' की खेती करने की लंबी परंपरा रही है। किसान अगर कदंब की खेती करना शुरू करेगा, तो कृषि क्षेत्र में बहुत बड़ी क्रांति हो सकती है। किसान की गरीबी दूर हो सकती है। इस दिशा में ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है। वरना हमारा यह मेघान, मेघप्रिय, नीप, प्रियंक, हरिप्रिय, हलप्रिय, धूलि कदंब, धारा कदंब, भ्रमरप्रिय, सृष्टि का जलवृक्ष, कल्पवृक्ष 'कदंब' नामशेष हो जाएगा और कदंब का फूल किताबों में ही रह जाएगा।

संदर्भ—

1. मध्ययुगीन काव्य के आधार स्तंभ—तेलपाल चौधरी।
2. कालिदास और शेक्सपीयर के काव्यों में सौंदर्य और प्रेमतत्व—डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. कृष्ण गोपाल मिश्र।
3. जनभाषा संदेश—अंक-28, संपादक डॉ. (श्रीमती) निर्मल सिंहल।
4. प्रवीण सक्सेना का इंटरनेट पर आलेख।
5. स्व. अनुभव और निष्कर्ष।

हिंदी विभाग प्रमुख,
स्वा. सावरकर महाविद्यालय, बीड,
जिला-बीड-431122 (महाराष्ट्र)

जादुई यथार्थवाद के प्रथम लेखक—काफ्का

डॉ. प्रभा दीक्षित

हमीरपुर के स्वामी नागाजी बालिका डिग्री कॉलेज में प्राचार्या डॉ. प्रभा दीक्षित के गजल और कविता संग्रह के अलावा अनेक पत्र-पत्रिकाओं में लेखों का प्रकाशन।

संपूर्ण विश्व के इतिहासकार इस सिद्धांत को मानते हैं कि इतिहास किंचित परिवर्तन के साथ अपने आपको दोहराता है। परिवर्तन मानव संस्कृति का आवश्यक गुण है। यद्यपि वैज्ञानिकों के अनुसार मानव जाति का इतिहास बीस लाख वर्ष से भी अधिक मान लिया जाए तो इस कालावधि के इतिहास को क्रमबद्ध ढंग से जानने का कोई कारगर तरीका नहीं है। हां, सीमित इतिहास की जानकारी उक्त दोहराव का समर्थन करती है तथा संपूर्ण विश्व की मानव संस्कृति अपनी भौगोलिक भिन्नता के बावजूद एकरूपता में रंगी दृष्टिगत होती है, क्योंकि सभी देशों के इनसानों की मूलभूत आवश्यकताएं एक जैसी हैं। चिंतन या साहित्य के क्षेत्र में भी यह अवधारणा लागू होती है। बहरहाल आश्चर्य होता है कि ऐसे मिथकीय प्रतीक भारतीय साहित्य में भरे पड़े हैं किंतु यहां की धर्मभीरु, अशिक्षित जनता ने जहां उन्हें सत्य मान लिया है वहीं शिक्षित वर्ग ने अलौकिक, अवैज्ञानिक समझकर साहित्य के रूप में खारिज कर दिया है।

काफ्का का जन्म सन् 1883 ई. में जर्मनी के एक यहूदी परिवार में हुआ था। सन् 1924 ई. में तपेदिक के मरीज के रूप में मृत्यु को प्राप्त करने वाला यह लेखक एक दुनियादार, सख्त, क्षमतावान पिता का अव्यावहारिक, अति भावुक बेटा था जो पिता की दहशत में जीता हुआ संशय, भय और अवसाद में डूबा निराशा की अतियों को स्पर्श करता रहा। प्राग विश्वविद्यालय से कानून की डिग्री प्राप्त करने के बाद वह बीमा कंपनी में नौकरी करता रहा। आत्म-निर्भरता और दृढ़ता की कमी के कारण वह अपने प्रेम में भी असफल रहा। सन् 1914 ई. में उसकी सगाई हुई जिसे उसने तोड़ दिया। पिता के तनावपूर्ण संबंध और ईमानदारी के प्रति संवेदना के कारण वह मानसिक रूप से अवसादग्रस्त रहने लगा। सन् 1918 ई. के बाद बर्लिन में बेकारी, भुखमरी के कारण वह हीनता बोध का शिकार हो गया। वह शब्दों (भाषा) का पुजारी होने के बाद भी शब्दों से अपना भरोसा खो चुका था। उसने अपने दोस्त मैक्स ब्राड से कहा था, ''क्या लिखे हुए शब्दों से कुछ पाया जा सकता है? जो चुंबन प्रेमिका के पत्र में लिखा जाता है, क्या वह कुछ होता है?'' सारी उमर जीवन की सफलता के लिए प्रयासरत यह लेखक जिम्मेदारियों से भाग कर घर बसाने से भयग्रस्त रहा। वह अपने लेखन में एक सृजन की दुनिया बसाना चाहता था, मगर यहां भी वह भ्रम एवं संशय का शिकार रहा तथा भीषण अवसाद की स्थिति में अपने मित्र से अपना साहित्य जला देने का आग्रह करते हुए एक तपेदिक के रोगी के रूप में मृत्यु को प्राप्त हुआ। अवसाद, कुंठा, निराशा, भय के अतिरिक्त इस महान लेखक के जीवन में कुछ भी उल्लेखनीय नहीं है। मित्र ने साहित्य जलाया नहीं प्रकाशित करवा दिया, मगर जर्मनी के लोगों ने कोई नोटिस नहीं लिया। जीवन के तीन दशक गुमनामी में जीने वाला काफ्का एक महान लेखक के रूप में कैसे चिह्नित हो गया, यह एक सुखद आश्चर्य

का विषय है? कैसे आत्महीनता, कातरता, निर्भरता की कमी महानता में बदल गई।

अवसाद (डिप्रेशन) एक मानसिक रोग है जो भ्रम या चिंतन की अतियों को महसूस करता है। मेरे विचार से कई बार यह रोग साहित्यकार (कलाकार) के लिए वरदान प्रमाणित होता है। भारतीय साहित्य में आत्महंता निराला और मुक्तिबोध को इस रूप में चिह्नित किया जा सकता है। जिस प्रकार मुक्तिबोध के काव्य को अनेक दृष्टियों से देखा गया। काफ्का के साथ भी यही हुआ। बौद्धिकता, कवित्वपूर्ण भाषा, भयावह फंतासी, अद्भुत कल्पनाएं, खंड-खंड असुरक्षित जिंदगी के शब्द चित्रों को द्वितीय विश्वयुद्ध की त्रासदी के बाद यूरोपीय आमजन ने जहां अपने जीवन की अनुभूति के रूप में देखा, वहीं धुरंधर चिंतकों ने काफ्का के साहित्य में अस्तित्ववाद या

जादुई यथार्थवाद के पूर्वाभास का एहसास किया। कहा जा सकता है कि काफ्का को जर्मनी की आगामी स्थिति का पूर्वाभास हो गया था। उसका परिवार भी नाजी अत्याचारों का शिकार हुआ था।

काफ्का के रचना-संसार के मूल्यांकन में हमें द्वितीय विश्वयुद्ध की भयावह स्थिति पर दृष्टि रखनी होगी। यह वह काल था जब जीवन और मृत्यु तीव्रता के साथ अनुभूति में उतर रहे थे। धर्म, दर्शन, नैतिकता के मूल्यों का अवमूल्यन हो चुका था। असहाय लोकजीवन बिखर कर पल-पल जिंदगी और मौत के झूले में झूलता हुआ गहरी दुविधा का शिकार, पाप-पुण्य की मानसिकता से विरत त्राहि-त्राहि कर उठा था। प्यार और नफरत के रूप की पहचान खो चुकी थी। कब क्या होगा? मानव जीवन का त्रासद प्रश्न बन चुका था। भूख, बेकारी, भय, जोखिम का एक खौफनाक वातावरण घोर निराशा में डूबा था। ऐसी स्थिति में लोगों ने एक ऐसे लेखक को खोज लिया जो पहले से ही भयग्रस्त एवं भ्रमपूर्ण था, तो हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए।

यूरोपीय लेखक एवं पत्रकार जिन्हें अनुवाद के रूप में काफ्का का कुछ साहित्य प्राप्त हुआ था, उस पर बौद्धिक विमर्श कर रहे थे और जर्मनी के बुद्धिजीवी (लेखक) आश्चर्यचकित थे कि उनके समाज के घोर उपेक्षित लेखक की ऐसी ख्याति! स्पष्ट है कि काफ्का का संपूर्ण साहित्य खोज-खोज कर प्रकाशित किया गया, जिसके बारे में डब्ल्यू. एच. ऑडेन ने कहा, ''काफ्का का हमारी सदी से वही संबंध है जो दांते, शेक्सपीयर और गेटे का अपने युग से था।''

काफ्का के साहित्य को तद्‍युगीन परिस्थितियों के कारण एक नए अंदाज में देखा गया। यूरोप और अमेरिका के समकालीन बड़े लेखकों ने काफ्का की प्रशंसा की और अपने सपनों को दफन करने वाला यह आत्महंता लेखक अपनी मृत्यु के तीस वर्ष बाद साहित्य जगत में एक महान लेखक के रूप में पुनः जीवित हो उठा। हां, ऐसे लेखक भी थे जो यह कहते हुए काफ्का की आलोचना कर रहे थे कि ''ऐसा भ्रमवादी लेखक जो स्वयं संशयग्रस्त व निराश है, समाज को क्या दे सकता है?''

एडमंड विल्सन ने कहा था, ''काफ्का मानसिक तौर पर अपंग कमजोर इच्छाशक्ति का शख्स था। देश-विहीन हतोत्साहित टूटा हुआ काफ्का चाहे पल दो पल के लिए हमें भयभीत या मनोरंजन दे, किंतु अंततोगत्वा निराश ही करता है। वह अपने देशकाल के प्रति प्रामाणिक जरूर था किंतु वह एक ऐसा देशकाल था जहां हममें से शायद कोई रहना चाहे।''

इसी भांति कुछ दूसरे लेखकों ने भी उसे निराशावादी, नकारात्मक प्रवृत्तियों का लेखक ठहराया है। मगर यह तो सभी ने माना है कि वह एक सिद्धहस्त लेखक था, जो अपनी कल्पना की दुनिया और छवियों के प्रति ईमानदार था। एडमंड विल्सन को जवाब देते हुए रोनाल्ड ग्रे ने कहा, ''कोई कलाकार वही चित्रण या लेखन करता है, जो उसकी भीतरी अनिवार्यता होती है। न कि जो उसे करना चाहिए और यदि उसकी दृष्टि नैराश्यपूर्ण, विखंडित या भयावह है, तो यह उसके समय का अंकन है न कि कोई नैतिक संदेश।'' ध्यातव्य है कि कम आयु में नोबेल पुरस्कार पाने वाले कामू ने भी काफ्का के साहित्य की प्रशंसा की है। काफ्का स्वयं अपने पिता को पत्र में लिखता है–

''आखिरकार यह जरूरी तो नहीं कि कोई सूरज के बीच उड़ान भर सके। यह भी तो कम नहीं कि हम धरती के उस साफ चप्पे पर घड़ी भर रेंग सकें। उसकी गरमाहट महसूस कर सकें, जहां कहीं सूरज की धूप पड़ जाया करती है।''

काफ्का की सर्वश्रेष्ठ कहानियों के रूप में तीन लंबी कहानियों की गणना की जाती है–(1) कायांतर, (2) चीन की दीवार (3) दंडद्वीप।

'कायांतर' एक अजीब-गरीब फंतासी है, जहां एक अच्छा खासा युवक एक बड़े कीड़े में बदल जाता है। इस कहानी में काफ्का शायद यह कहना चाहते हैं, कि एक गैर कमाऊ व्यक्ति परिवार के लिए कीड़े की भांति होता है। 'चीन की दीवार' में मानव श्रम की गरिमा को नकारते हुए चंद लोगों की महत्वाकांक्षा के लिए लोगों को व्यर्थ का काम करते दिखाया गया है तथा 'दंडद्वीप' में एक पिछड़े द्वीप की कहानी है, जहां अपराधी को आरा मशीन में रेतकर धीरे-धीरे मारा जाता है।

काफ्का का साहित्य प्रतीक प्रधान है, जिसके अनेकों अर्थ लगाए जा सकते हैं। कभी काफ्का के उपन्यासों को व्यंग्य माना गया, कभी उनके मित्र मैक्स ब्राड ने इसे आध्यात्मिक दृष्टि से देखा। मार्टिन ब्यूअर ने इसे यहूदी धर्म की संकल्पनाओं से जोड़कर देखा। कुछ ने यौन-प्रतीक मानकर इसकी व्याख्या की। जार्ज लुकाच ने काफ्का साहित्य को समाज का नर्क बताया है। जो भी हो काफ्का एक सामर्थ्यवान भाषा-शैली का लेखक था। हां, उसकी दृष्टि में स्वयं उसके साहित्य का कोई मूल्य नहीं था। भले ही उसने यह तथ्य अत्यंत अवसादग्रस्त मनःस्थिति में स्वीकार किया हो।

गुमनामी में मरने वाले काफ्का के निराशा भरे साहित्य में एक कालखंड के निराश यूरोप ने अपना दर्द देखा और महसूस किया और उसे एक महान लेखक घोषित किया। काफ्का का भाषायी निहितार्थ कुछ भी कहता हो किंतु उसके साहित्य को सामाजिक सरोकारों की प्रतिबद्धता से जुड़ा साहित्य तो नहीं कहा जा सकता। भयावह फंतासी, निराशा की अति एक कवित्वपूर्ण शैली काफ्का को एक सिद्धहस्त लेखक के रूप में स्थापित करती है।

128/222, वाई.एन. ब्लॉक, किदवई नगर, कानपुर-208011 (उत्तर प्रदेश)

ओड़िशा और श्रीलंका का ऐतिहासिक बंधुत्व

समीर कुमार दास

समीर कुमार दास कलिंग-लंका फाउंडेशन के सह-संस्थापक और सचिव हैं। इसके अलावा दिल्ली में जनसंपर्क एवं पर्यटन सलाहकार के रूप में कार्य कर रहे हैं।

हाल ही में नई दिल्ली स्थित श्रीलंका उच्चायुक्त के एक वरिष्ठ राजनयिक ने परिवार सहित ओड़िशा का निजी दौरा पहली बार किया। लौट कर उन्होंने मुझे कहा कि, ''मुझे आश्चर्य है कि भारत में एक ऐसा प्रांत भी है जो हूबहू मुझे अपने मुल्क श्रीलंका की याद दिलाता है। लोगों के रंग-रूप, खान-पान, संस्कृति और जलवायु में बहुत सामंजस्य है।''

दरअसल हजारों वर्षों तक पल्लवित हुई कलिंग (प्राचीन उड़िसा) व लंकाद्वीप के लोगों के बीच सांस्कृतिक, व्यवसायिक तथा वैवाहिक संबंध ही श्रीलंकाई राजनयिक के इस अनोखे अनुभव का कारण है। श्रीलंका के प्राचीन धार्मिक ग्रंथों—महावंश, द्वीपवंश तथा धातुवंश—में काफी विस्तृत भाव से कलिंग और लंकाद्वीप के बीच लोगों का आवागमन और संबंधों का उल्लेख किया गया है।

श्रीलंका के पाली में लिखित धर्मग्रंथ—द्वीपवंश और महावंश के अनुसार कलिंग के राजकुमार विजय ने श्रीलंका में सिंहाला वंश की स्थापना की थी। लगभग 600 बी.सी. के दौरान कलिंग में अपने राज्य से निष्कासित हुए राजकुमार विजय अपने 700 अनुयायियों के साथ लंकाद्वीप जा पहुंचे और वहां ताम्रपर्णी में एक नए साम्राज्य की नींव रखी। कलिंग के सिंहपुर से उनके पिता राजा सिंह बाहू शासन किया करते थे। सो विरासत में पिता से प्राप्त 'सिंहाला' की उपाधि तथा कलिंग के राजवंश से संबंध को जीवित रखते हुए लंकाद्वीप में राजा विजय ने सिंहाला वंश के साम्राज्य स्थापना कर 32 वर्ष तक शासन किया। राजा विजय के ही शासनकाल में लगभग 2500 परिवार कलिंग से पलायन कर लंकाद्वीप में जा बसे। श्रीलंका के धार्मिक व राजनीतिक इतिहास का वृत्तांत (द्वीपवंश तथा महावंश) राजा विजय के समय से ही आरंभ होता है जहां श्रीलंका के कलिंग संबंध का विस्तृत वर्णन है।

ओड़िशा व श्रीलंका के संबंध में एक सुनहरा अध्याय भगवान गौतम बुद्ध के दंतधातु के प्रसंग में है। धातुवंश नामक धार्मिक व ऐतिहासिक ग्रंथ में यह लिखा है कि जब 400 बी.सी. के आरंभ में भगवान बुद्ध के पावन अस्थियों का वितरण हुआ तो कलिंग के भाग में दंतधातु आई जिसको भिक्षुक क्षेमा ने कलिंग के राजा ब्रह्मदत्त को सौंपा। कलिंग की राजधानी दंतपुर में पवित्र दंतधातु को एक चैत्य में रख पूजा की जाने लगी।

मान्यता यह थी कि जिसके पास दंतधातु होगी उसके राज्य में समृद्धि होगी। इसलिए इसे पाने के लिए राजनीतिक शक्तियों में परस्पर संघर्ष भी हुआ करते थे। लगभग 700 वर्ष तक भगवान बुद्ध की दंतधातु कलिंग की राजधानी दंतपुर में सुरक्षित रही। पर जब 300 ए.डी. के आरंभ में, मगध के राजा पांडु ने कलिंग पर आक्रमण कर दंतधातु हथियाने की योजना बनाई, तब दंतधातु की सुरक्षा को संकट में देख कलिंग के राजा गुहाशिव ने उसे श्रीलंका में अपने मित्र राजा महासेना के पास भेजने का निर्णय लिया। राजा गुहाशिव ने अपनी बेटी हेममाला तथा दामाद दंतकुमार को गोपनीय तरीके से दंतधातु को दंतपुर से श्रीलंका ले जाने की जिम्मेदारी सौंपी। राजकुमारी हेममाला अपने केश में दंतधातु को छिपाकर पति दंतकुमार के साथ 310 ए.डी. को श्रीलंका के अनुराधापुर पहुंची और पवित्र दंतधातु को राजा मेघवाहन (राजा महासेना के पुत्र) को भेंट किया। आज वह पवित्र दंतधातु श्रीलंका के कैंडी शहर में स्थित 'श्री दलदा मालीगवा' नामक मंदिर में पूजा पा रही है, जो विश्व भर के श्रद्धालुओं के लिए एक आकर्षण का केंद्र है।

कलिंग वे श्रीलंका के बीच संबंधों को मजबूती व स्थायित्व प्रदान करने के लिए राजनीतिक मैत्री के नाम पर दोनों प्रदेशों के राज परिवारों में वैवाहिक रिश्ते भी कायम किए गए थे।

श्रीलंका के एक महान शासक राजा विजयबाहु-प्रथम (1055-1110 ए.डी.) ने कलिंग की राजकुमारी त्रिलोकसुंदरी से विवाह किया था। यहां तक कि कलिंग के राजकुमारों को श्रीलंका के राजा बनने का सौभाग्य मिला। राजा निशांकमल्ल, जिन्हें कीर्ति निशांक व कलिंग लोकेश्वर भी कहा जाता था, कलिंग के राजा जयगोपाल के पुत्र थे। निशांकमल्ल ने श्रीलंका के राजा पराक्रमबाहु की पुत्री से विवाह किया और लंकाद्वीप में राजा बनकर कलिंग से अपने संपर्क व राजा विजय के वंशज के नाते श्रीलंका के राजसिंहासन पर अपने नैसर्गिक आधिपत्य को सुरक्षित किया। अपने जन्मस्थल की स्मृति में राजा निशांकमल्ल ने श्रीलंका में कलिंग उद्यान व कलिंग वन का

निर्माण किया। दंबुला के शिलालेख में उन्होंने अपने कलिंग व राजा विजय के वंशज होने का उल्लेख किया है। श्रीलंका में राज करने के लिए राजा निशांकमल्ल ने कलिंग वंश का होना तथा बुद्ध धर्म का अनुसरण—यह दो शर्तों को लागू कर अपने शासन को स्थिर और मजबूत बनाया।

आज विडंबना यह है कि इतने घनिष्ठ संबंध होने के बावजूद ओड़िशा व श्रीलंका के लोग इन सबसे अनभिज्ञ हैं। इतिहास के मौजूदा पाठ्यक्रमों में इसका वर्णन नहीं किया जाता इसलिए ओड़िशा के इतिहास के प्रति आज की नौजवान पीढ़ी में एक भ्रांत व नकारात्मक सोच बनी हुई है। प्राचीन ओड़िशा ने अपने गौरवपूर्ण कलिंग विरासत से न सिर्फ श्रीलंका बल्कि दक्षिण-पूर्व एशिया में कई मुल्कों के सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक पृष्ठभूमि को अपने बहुमूल्य अवदान से संवारा है। आज वैश्वीकरण के बदलते समीकरण तथा भारत के राजनीतिक पटल में राष्ट्रवादी शक्तियों के उभरने को दृष्टि में रख, हमारे देश के प्रत्येक ऐतिहासिक पहलू को टटोलने की आवश्यकता आन पड़ी है, जिससे हम विश्व के साथ अपने प्राचीन संबंधों को नए सिरे से पुनः स्थापित कर भारत की 'सांस्कृतिक कूटनीति' को सशक्त कर सकें। कलिंग की ऐतिहासिक विरासत भारत को श्रीलंका तथा दक्षिण पूर्व एशिया के अनेक देशों से अपने संबंध सुदृढ़ करने में अहम भूमिका निभाने की क्षमता रखती है।

इसी संभावना को आगे लेते हुए भारत के पूर्व विदेश सचिव ललित मानसिंह ने श्रीलंका के पूर्व उच्चायुक्त श्रीप्रसाद कार्यवसम तथा ओड़िशा के पर्यटन विकास में कार्यरत तोषाली ग्रुप के संस्थापकों के साथ मिलकर 'कलिंग-लंका फाउंडेशन' नामक संस्थान की स्थापना पिछले वर्ष 29 मई को की है। इस अनुष्ठान का मुख्य उद्देश्य श्रीलंका व ओड़िशा के ऐतिहासिक बंधुत्व को पुनः सजीव करना तथा दोनों ही प्रांतों के बीच बहुआयामी उद्यमों—शिक्षा, पर्यटन, कला-संस्कृति, वाणिज्य—को प्रोत्साहित कर विश्व पटल पर कलिंग की विरासत को लोकप्रिय करना है। ओड़िशा व श्रीलंका में जनसंपर्क बढ़ाने में कलिंग के बौद्ध धर्म की विरासत अहम भूमिका निभाएगी क्योंकि कलिंग युद्ध के नरसंहार के बाद ही चण्डाशोक ने हिंसा का मार्ग त्याग कर, भगवान बुद्ध की शरण में जा धर्माशोक बने थे। उसके बाद बौद्ध धर्म को राजकीय संरक्षण प्रदान कर सम्राट अशोक ने कलिंग के समुद्री व्यापार मार्ग को इस्तेमाल करके अपनी पुत्री संघमित्रा व पुत्र महेंद्र के जरिए श्रीलंका तथा विश्व के अनेक देशों में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। बौद्ध धर्म का दुनिया में प्रसार के अलावा, महायान व वज्रयान जैसे बौद्ध दर्शन का विकास भी ओड़िशा के तटवर्ती इलाकों में हुआ था जहां आज भी रत्नगिरी, उदयगिरि, ललितगिरि हजारों वर्षों पुराने ज्ञान की समृद्ध धरोहर को संजोए विश्व भर के लोगों को अपनी ओर खींच रही हैं।

25/3889, प्रथम मंजिल, रैगरपुरा,
करोल बाग, नई दिल्ली-110005

कहानी

बर्फीली रातों के गुलदस्ते

जयंती रंगनाथन

जयंती रंगनाथन ने अपने करियर की शुरुआत जानी-मानी हिंदी पत्रिका 'धर्मयुग' से की। सोनी एंटरटेनमेंट चैनल में काम किया, तो महिला पत्रिका 'वनिता' की भी संपादक रहीं। तीन उपन्यास प्रकाशित। वर्तमान में दैनिक हिंदुस्तान में वरिष्ठ फीचर संपादक।

शीला शाम को जब लंबी सैर से वापस आई, सामने ही उसे राबर्ट नजर आ गया, अपने कुत्ते जीरो के साथ। राबर्ट उसे देख ठिठक गया। शीला ने उसे अनदेखा करने की कोशिश की, आज जरा भी मन नहीं है उसका राबर्ट के उलटे-सीधे सवालों के जवाब देने का।

शीला बहुत धीरे-धीरे चलने लगी। राबर्ट ने वहीं से चिल्ला कर पूछा, ''मिसिस पाली, मैं डाउन टाउन जा रहा हूं। अपने लिए कुछ दवाइयां लेने। आपको कुछ चाहिए?''

शीला ने नहीं में सिर हिलाया। राबर्ट रुका नहीं, वह दो कदम चल कर उसके करीब आ गया, ''मुझे पता है आप इन दिनों ठीक से खा-पी नहीं रहीं। मैं लौटते समय आपसे मिलने आऊंगा। एक कप कॉफी और सैंडविच तो खिला ही देंगी आप।''

फिर वो हंसते हुए चला गया। शीला भुनभुनाते हुए लौट आई। राबर्ट का आना उसकी बहू इंदिरा को बिल्कुल पसंद नहीं था। इंदिरा का मानना था कि राबर्ट अजीब इंसान है, गले ही पड़ जाता है। वैसे तो यहां के गोरे इतनी जल्दी इंडियंस से दोस्ती नहीं करते। उनके घर आएंगे, खूब खा-पी कर जाएंगे। पर अपने घर कभी नहीं बुलाएंगे। राबर्ट और इंदिरा सालों से एक-दूसरे के पड़ोसी थे, पर कभी हाय हैलो से बात आगे नहीं बढ़ी।

वो तो जब शीला ने कुछ महीने पहले नींद की गोलियों का ओवर डोज ले कर आत्महत्या करने की कोशिश की, इंदिरा को आधी रात राबर्ट के घर जाना पड़ा, और अनुरोध करना पड़ा कि वो उसकी सास को अस्पताल ले जाए।

राबर्ट पता नहीं अकेला रहता था या किसी के साथ। शीला पांच-एक दिन अस्पताल में रही। इस दौरान राबर्ट अक्सर वहां आ जाता। इंदिरा उसे देखते ही त्योरियां चढ़ा लेती, ''इस गोरे से एक दिन मदद क्या मांग ली, यह तो गले ही पड़ गया।''

शीला उसकी कोई भी बात समझ नहीं पाती थी। ऐसा नहीं था कि उसे अंग्रेजी नहीं आती थी। पर कैनेडियन लहजा कितना अलग था। घर आने के बाद शीला ने एक दिन इंदिरा से कहा कि राबर्ट ने उन लोगों की काफी मदद की है, उसे एक दिन खाने पर बुलाना चाहिए। इंदिरा को शायद उसका प्रस्ताव नहीं रुचा। लेकिन शीला के दो-चार बार कहने पर आखिर इंदिरा तैयार हो गई। चिकन करी और जीरा राइस बनाया, साथ में पापड़ भी तल दिए और सेंवई की खीर बना दी।

राबर्ट समय से पहले आ गया रविवार को लंच पर। अपने साथ ठंडी वाइन की बोतल और जीरो को भी लाया था। भूरे रंग का बड़ा सा अल्सेशियन। इंदिरा ने किसी तरह उससे कह कर जीरो को बालकनी में बांध दिया। लेकिन जीरा था कि भौंके जा रहा था। दस मिनट बाद ही राबर्ट ने जीरो के गले की पट्टी खोल दी और धीरे से कहा, ''यह मेरे बेटे जैसा है। इसे बंध कर रहने की आदत नहीं। इंदिरा भन्ना गई और अंदर कमरे में जाकर बड़बड़ाने लगी, यह कोई बात हुई? उसके लिए होगा बेटे जैसा, पर हमारे लिए तो कुत्ता ही ही ना।''

शीला चुप रही। राबर्ट को उसने बुलाया था। इंदिरा फिर अपने कमरे से बाहर निकली ही नहीं। राबर्ट ने बड़े चाव से खाना खाया। शीला ने उससे जानना चाहा कि वह गुजारे के लिए क्या करता है? उसने तो कभी काम पर जाते देखा नहीं?

राबर्ट ने हंसते हुए बताया कि उसे सरकार ने अच्छा-खासा बेरोजगारी भत्ता मिलता है। उसकी जरूरतें भी उतनी नहीं। इसलिए उसका काम मजे में चल जाता है। जब कभी काम करने का मन करता है, वीक एंड हजबेंड बन कर कहीं छह घंटे काम कर लेता है और उसे दो सौ डॉलर मिल जाते हैं।

वीक एंड हजबेंड? शीला चौंकी।

राबर्ट हंस कर बोला, ''हां, हमारे देश में जो आदमी घर के काम के लिए घंटे के हिसाब से बुलाया जाता है, उसे वीक एंड हजबेंड ही कहते हैं। मुझसे चाहे माली का काम लो या घर की पेंटिंग करवा लो। आपके घर की वैक्यूम क्लीनिंग कर दूंगा, कपड़े धो कर प्रेस कर दूंगा। आपका गैराज साफ कर दूंगा चाहो तो वीक एंड पार्टी का पूरा इंतजाम कर दूंगा। मुझे मजा आता है नए लोगों से मिलना।''

शीला दिलचस्पी से उसकी बात सुनने लगी। राबर्ट ने जीरो को अपनी प्लेट से चिकन खिलाते हुए कहा, ''पिछले सप्ताह मैं एक चाइनीज परिवार में काम करने गया। उनका गार्डन साफ करना था। जीसस, मेरे जाते ही पति-पत्नी में जबरदस्त लड़ाई छिड़ गई। मुझे थोड़ी-बहुत मंडारिन बोलनी आती है। पत्नी ऐसी-ऐसी गाली दे रही थी पति को...पर मुझे तो अपने काम के पूरे पैसे दिए। पति बेचारा, मेरे पास आकर दुखड़ा रोने लगा। कहने लगा कि मैं तो इसका परमानेंट हजबैंड होकर पछता रहा हूं, मुझसे अच्छी स्थिति तो तुम्हारी है वीक एंड हजबैंड।''

शीला हंसने लगी। बहुत दिनों बाद इस तरह किसी अजनबी से बात कर हंस रही थी। वरना तो जिंदगी से विश्वास ही उठ चला था। तभी तो अपनी जिंदगी खत्म करने को तत्पर हो उठी थी।

अचानक शीला से राबर्ट ने पूछा, ''आपके पति क्या करते हैं?''

शीला रुक कर बोली, 'वो नहीं रहे।'

राबर्ट ने बिना प्रतिक्रिया दिए कहा, ''ओह, तो आप और आपकी बहू दोनों विधवा हो।''

शीला चिहुंक उठी। राबर्ट ने तुरंत बात संभाली, ''आपको बुरा तो नहीं लगा? मैम, साहिल मेरा अच्छा दोस्त था, वो और मैं अक्सर गोल्फ खेलने साथ जाते थे। मुझे बहुत अफसोस हुआ था उसके जाने का। कम से कम इस तरह से तो नहीं।''

शीला को कुछ बोलते देख राबर्ट खाना छोड़ उसका हाथ पकड़ कर बोला, ''मुझे माफ कर दीजिए। पर मुझे लगता है कि आपको अपने बेटे के बारे में बात करनी चाहिए। शायद यही वजह है कि आपने खुदकुशी करने की कोशिश की। आप बहुत भरी हैं, अपने आपको खाली कीजिए।''

शीला को गुस्सा आ गया। वह कुछ उखड़ी आवाज में बोली, ''मैंने तो सुना था कि आपके देश में लोगों की प्राइवेसी का बहुत ख्याल रखा जाता है। आप मेरे मामले में बोल रहे हैं, जो मुझे पसंद नहीं।''

राबर्ट का चेहरा इतना सा निकल आया। उसने कुछ कहा नहीं, पर शांति से अपना खाना खत्म किया और उठ खड़ा हुआ। जाते-जाते उसने बस शीला से हाथ मिला कर थैंक्यू कहा।

रात जब शीला अकेली रसोई से सटे खुले लकड़ी की छत पर झूले पर बैठ हरी घासों पर ओस की बूंद को कतरा-कतरा बिछते देखने लगी, उसे लगा कि राबर्ट के साथ बेवजह वह इतनी क्रूर हो गई। तो क्या हुआ जो उसने साहिल का जिक्र छेड़ दिया। वो जानता था साहिल को। शायद वह कोई नई बात बता देता उसके बारे में।

पिछले कुछ दिनों से इंदिरा का व्यवहार उसे अजीब लग रहा था। कभी बहुत चिढ़चिढ़ी हो जाती, तो कभी पूरे दिन अपने कमरे से बाहर नहीं निकलती। सुबह-सुबह इंदिरा ने घोषणा कर दी, ''आप चाहें तो आज कहीं घूम आइए, पिक्चर देख आइए, घर में कोई आ रहा है।''

शीला अचकचा गई। अबकि इंदिरा कुछ संयत होकर बोली, ''मम्मी, मैं कल सोशल सर्विस डिपार्टमेंट गई थी। मुझे महीने भर तक साइक्याट्रिक ट्रीटमेंट की जरूरत पड़ेगी। आज पहली बार आ रहे हैं वो इंस्पेक्शन करने। इसलिए...''

शीला की आवाज में हताशा थी, ''इंदू, तुझे क्या हो गया? ट्रीटमेंट?''

इंदिरा मिनट भर बाद बोली, ''मैं थक गई हूं। मुझसे अब सहा नहीं जा रहा। मैं जीना चाहती हूं, खुश रहना चाहती हूं, पर कहीं कोई कोना ऐसा नहीं, जिसमें जीने की इच्छा हो। रह-रह कर दिमाग में यही बात आती है कि साहिल को मरना था तो मर जाता, पर मुझे इतना शॉक तो ना देता। मैं अपने आपको समझना चाहती हूं।''

शीला की आंख भर आई। साहिल उसका बेटा था, इकलौता बेटा। बेटे से भी ज्यादा उसकी लंबी जिंदगी का साथी। वो भी कहां समझ पाई अपने बेटे को।

इंदिरा ने रुक कर कहा, ''मुझे मुफ्त में साइक्याट्री सलाह मिल रही है। हो सकता है, इसके बाद मैं ठीक हो जाऊं।''

शीला ने सिर हिलाया। फिर कुछ सोच कर बोली, ''मैं भी तो हूं तेरा साथ देने के लिए। हम दोनों मिल कर कोई ना कोई राह निकाल लेंगे।''

इंदू ने पता नहीं कैसे कह दिया, ''अब आपके साथ रहने में मेरा मन नहीं लगता। आपका नजरिया अलग है, जीने का।''

शीला सन्न रह गई। इंदू ने यह क्या कह दिया? इंदू चुपचाप वहां से निकल गई। शीला ने अपनी छड़ी उठाई। घर से बाहर कदम रखा तो सर्द हवाओं ने उसे घेर लिया। इस बार लगता है समय से पहले सर्दियां आ जाएंगी। वापस अंदर जाकर उसने जंप सूट पहना, मोजे, जूते पहने, टोपी लगाई और छाता लेकर बाहर निकल आई। आज चाल में सुस्ती थी। मन कर रहा था कि बिस्तर में दुबक कर अदरक वाली चाय सुड़क-सुड़क कर पिए। पर घर लौटने के नाम से ही दहशत सी होने लगी।

कुछ दूर चली, तो ताजी हवा से मन बहलने लगा। सालों तक इस रास्ते पर साहिल के साथ लंबी-लंबी सैर की है उसने। बात करते, गप लड़ाते घंटों चलते रहते थे दोनों। जिन दिनों मुंबई से कनाडा माइग्रेट किया था, साहिल का मन नहीं लगता था। कनाडा में उसे आते ही पसंद की नौकरी नहीं मिली। वह निराश था। शीला उसे समझाया करती कि सब ठीक हो जाएगा। फिर कोई वजह थी तभी तो हम मुंबई छोड़ कर यहां आ बसे हैं।

शीला ने अपनी जिंदगी में अधिकांश निर्णय खुद ही लिए थे। अपनी पसंद के व्यक्ति से शादी का निर्णय, पति की मृत्यु के बाद नौकरी करने का निर्णय और जब ससुराल वालों ने उसे और साहिल को घर से निकाल दिया तो कोर्ट में उनके खिलाफ लड़ने का निर्णय। शीला ने अपनी पूरी शक्ति लगा दी इस केस में। साहिल तो अपने आप ही बड़ा हो गया। जब कोर्ट में शीला केस हार गई, तब उसे लगा कि उसे यह शहर छोड़ कर दूर कहीं चले जाना चाहिए। बुरी तरह टूट गई थी शीला।

साहिल ने तब तक नौकरी करना शुरू कर दिया था। शीला ने ही कहा था उसे कि कनाडा माइग्रेट कर ले। ऐसा देश है कनाडा, जहां कोई उन्हें नहीं जानता। और दस साल पहले दोनों मां और बेटा कनाडा आ गए। कनाडा के दक्षिणी इलाके में एक छोटे से कस्बे बांफ में जाकर बस गए। लेकिन जब वहां मन मुताबिक काम नहीं मिला, तो कैलगिरी आ गए।

कैलगिरी में साल में पांच महीने बर्फ पड़ती थी। जनवरी में तो तापमान घट कर माइनस सैंतीस तक पहुंच जाता। चारों तरफ बर्फ ही बर्फ। धीरे-धीरे इस मौसम की आदत पड़ गई। जब बहार का मौसम आता, तो चारों तरफ इतने रंगबिरंगे फूल खिल जाते कि पूरा शहर फूलों की डलिया लगने लगता। शांतिप्रिय शहर, भारतीयों की संख्या भी ज्यादा नहीं थी। दोनों मां-बेटे की जिंदगी पटरी पर आ गई। हर शनिवार को वे मॉल जाकर सप्ताह भर की सब्जियां, दूध और राशन ले आते। शीला को लोगों से मिलना-मिलाना कम पसंद था। साहिल अपने दोस्तों के साथ कभी मछली पकड़ने निकल जाता, तो कभी गोल्फ खेलने।

साहिल तीस का हो चला था। शीला को डर लगता था उसकी शादी से। अगर बहू के साथ उसकी नहीं निभी तो? और एक दिन साहिल ने उससे कहा कि वह अपने साथ काम करने वाली कनेडियन केरोल के साथ शादी करना चाहता है। साहिल से दो इंच लंबी केरोल तलाकशुदा थी। एक बच्ची भी थी उसकी। केरोल की मां नहीं थी। पिता दूसरी शादी कर अमेरिका में बस गए थे।

शीला का दिल बैठने लगा। जिस बात का उसे डर था, कहीं वही तो नहीं होने जा रहा? केरोल के साथ कैसे निभा पाएगी वह? केरोल को उसके घर छोड़ने के बाद साहिल जब उसके सामने आया, शीला अपने को रोक नहीं पाई, आंख से आंसू बह निकले। साहिल का हाथ पकड़ बहुत देर बाद बोल पाई, ''बेटा, तुमने ऐसा क्यों किया।''

साहिल मां का हाथ पकड़ कर बैठा रहा, फिर धीरे से बोला, ''मां, यह कनाडा है। हमें यही रहना है। किसी दूसरे के लिए नहीं, अपने लिए जीते हैं लोग यहां। केरोल बहुत अच्छी लड़की है मां। तुम्हारे साथ रहेगी, तो हिंदी भी सीख लेगी और अपना रहन-सहन भी अपना लेगी। तुम उसके गोरे रंग और कद को देख कर घबरा गई हो ना? ऐसा मत सोचो, सब ठीक हो जाएगा।''

शीला बुत बनी बैठी रही। हार कर साहिल ने पूछा, ''मां, आप चाहती क्या हैं?''

शीला ने अपने को संभालते हुए कहा, ''तुझे शादी करनी है, तो किसी इंडियन लड़की से कर। हम यहीं रह रही लड़की ढूंढ़गे। वह हमारे कायदे से भी परिचित होगी और इस देश के भी।''

साहिल बिना कुछ बोले वहां से उठ गया। शीला उसका इंतजार करती रही।

अगले दिन नाश्ते की टेबल पर साहिल ने कहा, ''मां, मुझे नहीं लगता कि मैं केरोल के अलावा किसी दूसरी लड़की से शादी कर पाऊंगा। मुझे अपनी तरह से जीने दो। मैंने हमेशा आपकी बात मानी है, इस बार आप मेरी बात मान लें।'' शीला के कुछ कहने से पहले वह उठ कर चला गया।

साहिल ने इससे पहले कभी किसी बात पर जिद नहीं की थी। पहली बार उसने किसी चीज की मांग की थी। शीला जितना सोचती, उतना डर जाती। साहिल की जिंदगी में केरोल आने के बाद उसकी क्या भूमिका रह जाएगी? वैसे भी इस देश में माता-पिता को साथ नहीं रखा जाता। बच्चे अलग रहते हैं। वह कहां रहेगी? ओल्ड एज होम में?

शीला ने तय कर लिया कि वह किसी भी हाल में साहिल की शादी केरोल से नहीं होने देगी। उसने साहिल से बोलना बंद कर दिया, खाना छोड़ दिया। साहिल ने हार कर कह ही दिया, ''मां, आप जैसा चाहती हैं, वैसा ही होगा।''

शीला ने खुशी-खुशी अपना काम शुरू कर दिया। आसपास जो भी भारतीय परिवार था, उन तक बात पहुंचाई।

कैलगिरी के पंजाब स्टोर की मालकिन सतविंदर से उसकी पुरानी जान-पहचान थीं। उसके रिश्तेदार वैनकुवर में पंजाबी स्टोर चलाते थे। उन्होंने ही इंदिरा का बायोडाटा भेजा। इंदिरा का परिवार भी कई साल पहले चंडीगढ़ से कनाडा आ बसा था। इंदिरा के माता-पिता कई साल पहले एक्सीडेंट का शिकार हो गए थे। वैनकुवर में इंदिरा अपने भाई के साथ रहती थी। एक बैंक में काम करती थी।

इंदिरा के भाई को उसकी शादी की चिंता नहीं थी। खुद भाई ने एक चीनी युवती से शादी की थी। इंदिरा दिखने में ठीक थी, सांवला रंग, घुंघराले बाल, सपाट सा चेहरा। शीला साहिल के साथ वैनकुवर गई उससे और उसके परिवार से मिलने। भाई ने तो साफ-साफ कह दिया कि वह बहुत तड़क-भड़क वाली शादी में यकीं नहीं करता। शीला को तो यह भी लगा कि भाई चाहता है कि बस, किसी तरह बहन की शादी हो जाए। शीला ने तुरंत ही सब पक्का कर दिया। वैनकुवर में कोर्ट मैरिज और कैलगिरी मे दोस्तों के लिए पार्टी। साहिल अनमना सा था। वैनकुवर से लौटते समय शीला बहुत खुश थी। शादी की तैयारियों की बात कर रही थी, पर साहिल ने किसी भी चीज में भाग नहीं लिया। शीला ने ही भाग-भाग कर सब इंतजाम किया। कैलगिरी से ही इंदिरा के लिए सोने का सेट लिया। एक इंडियन बुटिक से लहंगा खरीदा।

शीला चाहती थी कि शादी के बाद साहिल और इंदिरा आसपास कहीं घूम आए। इंदिरा अपनी दादा-दादी से मिलने लखनऊ जाना चाहती थी। साहिल को भी लगा कि हनीमून के नाम पर किसी अनजान जगह पर जाने से अच्छा है अपने वतन लौटना।

पंद्रह दिन की छुट्टी लेकर साहिल और इंदिरा चले गए और शीला घर पर अकेली रह गई। कनाडा में ठंड पड़नी शुरू हो चुकी थी। शीला अपने बेटे की शादी को लेकर इतनी उत्साहित थी कि उसने पूरे घर का कायापलट कर दिया। नए फर्नीचर ले आई। कार्पेट, परदे सब बदल डाले। साहिल और इंदिरा के कमरे के लिए नया पलंग ले आई। अपनी साज-सज्जा देख कर वह खुद पर मुग्ध हो गई।

इंदिरा शुरू से उससे कम बोलती थी। उसके जीने का अपना तरीका था। भारत से लौटने के बाद भी उन दोनों के बीच शीला ने किसी किस्म की गर्माहट नहीं देखी। साहिल ने घर की नई साज-सज्जा के बारे में कुछ नहीं कहा। इंदिरा ने जरूर उसके लाए पलंग को लेकर कहा कि उसे बैक पैन की दिक्कत है, इसलिए वह इतने नर्म गद्दे पर नहीं सो पाएगी। पलंग की ऊंचाई को लेकर भी उसे दिक्कत थी। घर के परदों के रंग चटक थे, इंदिरा ने धीरे से उन्हें भी बदल कर हल्का कर लिया।

साहिल जब शाम को दफ्तर से लौटता, इंदिरा घर के बाहर ही उसका इंतजार करती मिलती। वहीं से कभी वह साहिल को क्लब ले जाती, तो कभी लंबे वॉक पर। इंदिरा को आइस स्केटिंग का जबरदस्त शौक था। पूरी सर्दियों में वह लगभग रोज आइस स्केटिंग करने निकल जाती। शनिवार और इतवार का पूरा दिन इंदिरा घर के बाहर बिताना पसंद करती थी। कभी लांग ड्राइव पर तो कभी पोलो खेलने। शीला के लिए वह जरा भी नहीं बदली। शीला अगर कभी कहती भी कि आज घर में मेहमान आ रहे हैं, साड़ी पहन ले, इंदिरा ठंडी आवाज में कहती, ''मम्मी, प्लीज मेरी जिंदगी में आप दखल ना दें। मैं तो कभी आपको किसी बात के लिए नहीं टोकती। लीव एंड लेट लीव, इस देश में सब ऐसा ही ही करते हैं।''

शीला की हिम्मत नहीं होती कि इंदिरा का लेकर कभी साहिल से कुछ कहे।

साहिल खुद भी उससे कटता जा रहा था। जब

वह इंदिरा के साथ नहीं होता, अपने दोस्तों के साथ बाहर निकल जाता। मां के लिए उसके पास वक्त नहीं था। शीला का मन होता, साहिल की पसंद का कुछ बनाने का। इंदिरा तला-भुना और मिर्च वाला खाना कम खाती थी, साहिल को तो जैसे खाने से ही अरुचि हो गई थी।

फिर एक दिन साहिल ने कहा कि एक नया प्रोजेक्ट मिल गया है और उसे तीन महीने के लिए कैलिफोर्निया जाना पड़ेगा। इंदिरा उसके साथ जाने के लिए तैयार थी, पर साहिल ने मना कर दिया। यह कह कर कि प्रोजेक्ट के सिलसिले में उसे दूसरे शहरों में भी जाना पड़ सकता है। फिर तीन महीने की ही तो बात है।

साहिल के जाते ही इंदिरा भी अपने भाई के घर वैनकुवर चली गई। रह गई शीला अकेली। साहिल से बहुत कम बात होती थी। सप्ताह में एकाध बार शीला फोन करती, तो वह जवाब दे देता। तीन महीने बीत गए, वह लौटा नहीं। कहा कि प्रोजेक्ट पूरा करने में कुछ वक्त और लगेगा। शीला के लिए समय काटना मुश्किल हो गया। घर काटने को दौड़ने लगा। किताबें बहुत थी पढ़ने के लिए, पर पढ़ने में मन नहीं लगता। टीवी भी बहुत कम देख पाती। ले दे के उसकी एक ही दोस्त थी इंडियन स्टोर वाली सतिंदर। दो-तीन दिन में वह उससे मिलने चली जाती। उसने गाड़ी चलाना सीखा नहीं था, इसलिए बस और ट्रेन में सफर करना पड़ता। सतिंदर नहीं मिलती, तो वह नदी किनारे सैर पर निकल पड़ती। तीन-चार घंटे चलती रहती। थक कर घर लौटती। कभी सूप पीकर सो जाती, तो कभी एकाध फल खा लेती। अपने अकेलेपन से इतना पक चुकी थी वो कि उसने कैलिफोर्निया के लिए टिकट बुक करवा लिया। शनिवार को साहिल का फोन आया तो शीला ने कुछ उत्साहित होकर कहा कि अगले वीकएंड वह उससे मिलने कैलिफोर्निया आ रही है। साहिल ने तुरंत कहा...मां, तुम अभी मत आओ। मैं कैलिफोर्निया में नहीं हूं। मैं न्यूयॉर्क में हूं।

शीला चुप हो गई, फिर धीरे से बोली, ''बेटा, बहुत अकेलापन महसूस कर रही हूं, लंबा समय हो गया तुझे देखे। ऐसा क्या कर रहा है वहां? मुझे नहीं बुला सकता, तो तू ही आ जा। इंदिरा भी यही कह कर अपने घर गई है कि तेरे लौटने के बाद ही लौटेगी।''

मां की आवाज सुनकर साहिल पिघल गया, ''इंदिरा अभी तक लौटी नहीं? उसने तो मुझे नहीं बताया। अच्छा मां, कोशिश करूंगा कि हफ्ते-दस दिन बाद आ जाऊं। अपना ख्याल रखना मां...''

साहिल की आवाज से लग रहा था पता नहीं किसी गुफा के कोने से आ रही हो। शीला ने सोचा कि शाम को वह इंदिरा से भी बात करेगी और उससे लौटने को कहेगी। उसके रहने से कम से कम घर में थोड़ी रौनक तो रहेगी। काश कि दोनों उसकी बात मान जाते और एक बच्चा गोद ले लेते। इंदिरा से उसने शुरू में इस बारे में बात करने की कोशिश की, पर वह इसे अपना व्यक्तिगत मामला कह कर

चुप लगा जाती। साहिल जरूर कहता था कि जब कभी वे इंडिया वापस जाएंगे, वहां के किसी अनाथालय से बच्चा गोद ले लेंगे।

शीला कितना कम समझ पाई थी अपने बेटे को। आज पीछे मुड़ कर देखती है तो लगता है कि साहिल की वह दोस्त बनना चाहती थी, पर दोस्त बनना तो दूर वह उसकी अच्छी मां भी नहीं बन पाई।

जिस दिन साहिल ने उससे कहा था वह घर लौटेगा, उस रात को उसके पास खास खबर आ गई कि टोरंटो में साहिल का एक्सीडेंट हो गया है और उसकी हालत गंभीर है। टोरंटो में? शीला को गहरा सदमा लगा। टोरंटो तो कनाडा में ही है। पर साहिल ने तो कहा था कि वह अमेरिका में है, न्यूयार्क में। तो वो उससे झूठ बोल रहा था? किसी तरह रात की फ्लाइट ले कर वह टोरंटो पहुंची। साहिल आईसीयू में था। उसे अब तक होश नहीं आया था। शीला को अभी शॉक से उबरने का मौका ही नहीं मिला था कि सिटी हॉस्पिटल की हैड नर्स ने उससे आ कर कहा—आपके बेटे के साथ जो महिला गाड़ी में थीं, वो आपकी बहू है ना?

शीला चौंकी। नर्स केरल से थी। उसने अपनी टूटी-फूटी हिंदी में कहा, ''वह होश में आ गई है। आप चाहें तो उससे बात कर लीजिए।''

शीला लड़खड़ाते कदमों से नर्स के पीछे हो ली। बिस्तर पर केरोल लेटी थी। उसे पैरों में गंभीर चोट आई थी, सिर पर भी पट्टी बंधी थी। शीला को देखते ही उसकी आखें भर आईं। वह रोने लगी, ''मेरा बेटी बहुत छोटी है। अब उसका क्या होगा?''

शीला उसे ढांढस नहीं बंधा पाई। बेटा तो उसका खो रहा था। साहिल को अंततः केरोल के ही पास जा कर शांति मिली थी शायद। आधे घंटे बाद वहां इंदिरा भी पहुंच गई। शीला को देखते ही वह कुछ शुष्क स्वर में बोली, ''आपको तो सब पता था ना मम्मी। फिर आपने साहिल की शादी मुझसे क्यों करवाई? आज सबके सामने मैं तमाशा बन गई हूं। साहिल पिछले चार महीने से कनाडा में ही है, वो भी दूसरी औरत के साथ। आपने बताया क्यों नहीं कि साहिल उससे शादी करना चाहता था और आपने अपने स्वार्थ के लिए हम दोनों की जिंदगी खराब कर दी।''

ये वक्त नहीं था कहने-सुनने का। शीला बस रोती रही। सुबह होने तक साहिल बिना किसी से कुछ कहे-सुने चल बसा। केरोल की हालत गंभीर थी। साहिल का क्रियाकर्म करने के बाद जब शीला घर लौटी, तो पूरी तरह टूट चुकी थी। इंदिरा उससे बहुत कम बोलती थी। वह उसके सामने ही कम पड़ती थी। चौथे दिन दोपहर को शीला के सामने पड़ी, तो धीरे से बोली, ''केरोल आज सुबह चली गई। पता नहीं कौन करेगा उसका दाह संस्कार। फिर उसकी पांच साल की बेटी को चाइल्ड केयर सेंटर भेज रहे हैं।''

शीला का चेहरा पत्थर का हो गया। कुछ देर रुक कर इंदिरा ने लंबी सांस ले कर कहा, ''अगर साहिल ने केरोल से शादी कर ली होती, क्या तब भी आपकी यही प्रतिक्रिया होती?''

शीला की तरफ बिना देखे वह कमरे से निकल गई। शीला बाहर जा कर बेंच पर बैठ गई। साहिल के इस तरह जाने से ज्यादा कचोट रहा था उसे कि उसके बेटे ने उसे अपने दिल की बात नहीं बताई। एक बार बताया था, तो उसने क्या किया? जबरदस्ती कहीं और उसकी शादी कर दी। इसके बाद वह भला कैसे उस पर यकीं करता? कितने दर्द और मानसिक तनाव से गुजरा होगा उसका बेटा? और इंदिरा, वह भी तो बेवजह ठगी गई। जो व्यक्ति उसका कभी था ही नहीं, उसे वह पाती भी तो कैसे?

उस रात वह सो नहीं पाई। कभी मुंबई के दिन आंखों के सामने आ जाते, तो कभी साहिल का मासूम सा चेहरा। जैसे कह रहा हो कि मां तुमने अपनी जिंदगी तो जी ली, पर मुझे जीने नहीं दी। शीला धिक्कार उठी अपने आप पर। ना जाने किस झोंक में उसने दवाई की अलमारी से नींद की गोलियों की पूरी शीशी हलक में उतार ली। बस, यही धुन थी कि जल्द से जल्द अपने बेटे के पास पहुंचना है।

अगले दिन आंख खुली तो अपने आपको सफेद कफ्तान में पाया। एक सेकंड को लगा कि वह मरने के बाद किसी दूसरी दुनिया में आ गई है। पर सामने इंदिरा का चेहरा देखा, तो अहसास हुआ कि वह अस्पताल में है। उसके पीछे राबर्ट खड़ा था, उनका पड़ोसी।

इस बात को लगभग चार महीने बीत गए। शीला धीरे-धीरे अपने आपको संभालने लगी। लेकिन इंदिरा ने जैसे उससे बोलना ही छोड़ दिया था। वह यह घर छोड़ कर नहीं जाना चाहती थी। घर साहिल और उसके नाम पर था। साहिल का इंश्योरेंस भी उससे मिल गया। मनोचिकित्सक से मिलने के बाद इंदिरा में जीने की थोड़ी बहुत ललक जगी। वो एक अनाथ बच्चों के सेंटर में पढ़ाने लगी। कभी-कभी रात को खाने पर शीला को भी उन बच्चों के बारे में बताती।

एक दिन उसने जोश से कहा, ''मम्मी, हमारे पड़ोसी राबर्ट ने भी अब चाइल्ड सेंटर आना शुरू कर दिया है। वह बच्चों को आर्ट और कारपेंटरी सिखाता है। पता है, वो उतना बेवकूफ और झिलाऊ नहीं है, जितना हम समझते थे। बस अलग है सबसे। बच्चों से बहुत हिलमिल जाता है।''

सप्ताह भर बाद शीला ने पाया कि शाम को इंदिरा और राबर्ट नदी किनारे घूमने निकले थे और उनके पीछे राबर्ट का कुत्ता जीरो भी था। कभी वो भागते-भागते उनसे आगे निकल जाता, तो कभी इंदिरा का शॉल पकड़ कर शैतानी करने लगता। इंदिरा भी अब जीरो से डर नहीं रही थी। वहीं एक बैंच पर किताबों के पन्ने उलटते-पलटते शीला ने लंबी सांस ली— चलो, इंदिरा अपने गम से बाहर तो निकल रही है।

इतवार के दिन पहले तो इंदिरा देर से सो

कर उठती थी, जब से बच्चों के सेंटर में जाने लगी, जल्दी उठ जाती थी। इतवार का दिन विशेष होता था। वह बच्चों के साथ सेंटर में नाश्ता बनाती थी और सबके साथ खाती थी। शनिवार की रात को इंदिरा ने उसे खाना देते हुए पूछ लिया, ''मम्मी, मैं जब शादी के बाद यहां आई थी, आपने पाव-भाजी बना कर खिलाई थी। आप मुझे बनाना सिखाएंगी? सोच रही हूं कल बच्चों को नाश्ते में यही बना कर खिला दूं।''

पता नहीं कैसे शीला के मुंह से निकल गया, ''मैं बना दूंगी ना पाव भाजी।''

इंदिरा चहक कर बोली, ''ओह, तो आप भी चलिए ना सेंटर। वहीं बना लेंगे। सब्जी वगैरह तो मैंने खरीद लिया है। सुबह बेकरी से फ्रेश ब्रेड खरीद लेंगे।''

शीला तैयार हो गई। वैसे भी काफी समय हो गया था घर से बाहर निकले। ठंड की परवाह ना करते हुए दोनों सुबह जल्दी उठ गए। सब्जियां लाद कर गाड़ी में बैठे ही थे कि राबर्ट भी जीरों के साथ आ गया।

इंदिरा ने बताया कि सेंटर के बच्चों को जीरो के साथ खेलना बहुत पसंद है। सेंटर पहुंचते ही उनका स्वागत अस्सी उत्साही बच्चों ने किया। चहचहाते, खिलखिलाते फूलों की तरह मुस्कराते बच्चे। हर रंग के, हर देश के। कोई भेदभाव नहीं। कनाडा में शीला को यही बात अच्छी लगती थी कि यहां कालों के साथ कोई भेदभाव नहीं होता था। इंदिरा झटपट ओपन रसोईघर में जा कर सब्जियां उबालने लगी। शीला ने उसकी मदद की। कम मसालों वाली भाजी और ऊपर से ढेर सारा चीज। बच्चों को मोटे-मोटे ब्रेड और बन के साथ खाने को दिया, तो वे शोर मचाते हुए खाने लगे। शीला को भी बस उन्हें खाते देख ही तृप्ति मिल गई।

इस बीच एक छोटी सी बच्ची दौड़ती हुई इंदिरा के पास आई और लिपटती हुई बोली, ''मैडम, आपने लास्ट वीक मुझसे प्रॉमिस किया था कि मुझे अपने घर ले चलेंगी? फिर? आपने अपना इरादा बदल दिया?'' इंदिरा ने उसे गोद में उठा लिया, ''नहीं कैथरीन, मैं तुम्हें जरूर अपने घर ले जाऊंगी। मैंने इंचार्ज से बात कर ली है। क्रिसमस वीकएंड में तुम हमारे साथ होगी।'' बच्ची ने इंदिरा के गालों पर एक प्यार भरा चुंबन जड़ा और थैंक्यू कहती हुई वहां से भाग गई।

कितनी प्यारी बच्ची थी। हल्का गोरा रंग, काले बाल, हरी आंखें। शीला बच्चों को खेलते-कूदते देखती रही। इंदिरा की तरह कई समाजसेवक वहां आए हुए थे अपने बच्चों के साथ। दोपहर को वहां से निकले तो राबर्ट ने सुझाव दिया कि लंच के लिए सब उसके घर चलें। वह पास्ता बना रहा है। शीला का मन नहीं था, पर इंदिरा के इसरार करने पर वह चल पड़ी। राबर्ट के घर आज तक वो नहीं गई थी। उसने बहुत सुंदर बगीचा बनाया था। घर को भी करीने से रखा था। फोटोग्राफी का शौक था इसलिए बरामदे को घेर कर उसने स्टूडियो बनाया था। दीवार पर ना जाने उसके खींचे कितने सारे फोटो लगे थे।

अचानक शीला की नजर एक फोटो पर पड़ी। साहिल हंसते हुए गिटार बजा रहा था। उसे तो पता ही नहीं था कि उसका बेटा हंसता भी था और गिटार भी बजाता था। साहिल की कई तसवीरें थीं। गोल्फ खेलते हुए, गाड़ी चलाते हुए, राफ्टिंग करते हुए। शीला ठिठक गई। राबर्ट ने उसे टोका, ''मिसेज पाली, अगर आपको अच्छा लगे तो मैं आपको इन तसवीरों का प्रिंट निकाल कर दूंगा।''

शीला ने हां में सिर हिलाया। राबर्ट ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, ''आप बहुत इमोशनल हैं। मैं आपको दुखी नहीं करना चाहता। पर साहिल की कुछ चीजें मेरे पास हैं। आप चाहें तो ले सकती हैं। उसका गिटार, उसकी स्वेट शर्ट, माउथ आर्गेन और सच कहूं तो मेरा कुत्ता जीरो भी उसका ही है। उसे किसी ने गिफ्ट किया था पिल्ला। पर साहिल ने कहा कि आप घर में कुत्ता रखना पसंद नहीं करतीं, इसलिए उसने मुझे दे दिया। नाम भी उसने ही रखा था जीरो। शायद बचपन में आप उसे इस नाम से बुलाती थी।''

शीला ने अपनी भर आई आंखों को घुमा लिया। किसी भी व्यक्ति के भीतर कितनी परतें होती हैं, पता ही नहीं चलता। उसके बेटे की कितनी सारी बातें उसे खुद पता नहीं थी। पर कहीं अच्छा लगा, साहिल के करीब होने का सा अहसास।

राबर्ट ने पास्ता ठीकठाक बनाया था। मिर्च-मसाला कम था, पर खूब सारा चिली सॉस मिला कर शीला ने उसकी कमी पूरी कर ली। घर लौटते-लौटते शाम हो गई। रात कुछ खाने का मन नहीं हुआ। इंदिरा सूप बना लाई। पता नहीं क्यों शीला ने उससे पूछा, ''इंदू, कुछ समय पहले तुमने मुझसे कहा था कि मेरे साथ नहीं रहना चाहती। क्या अब भी तुम्हारे मन में वही फीलिंग है?''

इंदिरा चुप रही, पता नहीं कहां देखती रही। फिर धीरे से बोली, ''हम सबमें कमियां होती हैं। मुझे शादी के बाद से लगा था कि मैं आपके साथ एडजस्ट नहीं कर पाऊंगी। आप साहिल को ले कर बहुत पजेसिव थीं और मेरे मन में सास को ले कर एक दोस्त की तरह की कल्पना थी। फिर जो कुछ भी हुआ, लगा कि आपकी वजह से हुआ है। साहिल का जाना, केरोल का जाना। मैं अंदर तक हिल गई थी। मेरी भी दिक्कत आपकी तरह की है कि इस घर को छोड़ कर कहां जाऊं? भाई के पास जाने का सवाल नहीं उठता। फिर लगा कि यह घर बेच कर दो छोटे घर ले लेते हैं। एक आपके लिए, एक मेरे लिए। यह सही भी था। आपको गुजारे के लिए ओल्ड ऐज पेंशन मिल जाती और मैं अपनी जिंदगी अपनी तरह से जीने के लिए आजाद होती। पर...''

शीला का चेहरा पीला पड़ने लगा। इंदिरा यह क्या कह रही है? अलग घर, अलग जिंदगी?... इंदिरा ने शीला का चेहरा भांप लिया, ''मुझे कुछ फैसले लेने हैं मम्मी, पता नहीं आप मेरा साथ देंगी या नहीं। आप की मर्जी है।''

शीला ने धीरे से सिर हिलाया। इंदिरा उनके हाथ पर अपना हाथ रखती हुई बोली, ''सूप पी कर सो जाइए। कल बात करेंगे।''

रात लंबी थी। किस्तों में नींद आई शीला को। जब भी आंख खुली, अपने को पछताते पाया। देश बदला, शहर बदले, लेकिन अपनी सोच भी बदल लेती तो शायद आज बेटा साथ होता। नींद के झोंकों के बीच खयाल आया कि आज हाथ में जो है, जिंदगी में जिसका साथ है, वह उनके साथ भी क्यों नहीं चलना चाहती? हमेशा वो जो चाहती है, वैसा तो नहीं होगा। कनाडा में ऐसे कई बुजुर्ग देखे हैं, जो अकेले रहते हैं। जिद्दी हैं, काम करते हैं, शुक्रवार शाम अपने उम्रदराज दोस्तों के साथ पब जाते हैं। उनके बच्चे थैंक्स गिविंग डे और क्रिसमस में उनसे मिलने आते हैं। उन्हें उपहार दे कर और माथे को चूम कर चले जाते हैं। क्या ऐसी जिंदगी जी पाएगी वो? शायद नहीं। इंदिरा ने अपने गम भुलाने के लिए एक राह चुनी है। और वो खुश है। उसे अपनी तरह से जीने का पूरा हक है। नींद के झोकों के बीच उसने पाया कि वो सफेद चादर में लिपटी हवा में उड़ रही है। जैसे प्राण उसे छोड़ कर जा रहे हों और कहीं से एक कोमल हाथों ने उसे छू कर पूछा है कि मेरे बाद मेरी बेटी का क्या होगा?

शीला चिहुंक कर उठी। ठंड में भी पसीना-पसीना। सुबह होने का इंतजार करना मुश्किल था। छह बजे उठ कर वह किचन पहुंच गई। चाय बना कर कमरे में आई तो इंदिरा जाग चुकी थी। उसने धीरे से दरवाजा खटखटा कर पूछा, 'चाय पियोगी?'

इंदिरा चौंकी, पर हां में सिर हिलाते हुए उठ खड़ी हुई। किचन में वह भी आ खड़ी हुई। शीला अपने को रोक नहीं पाई, रात का ज्वार सिर पर सवार था, ''इंदू, एक बात बता। वो केरोल की बेटी किस चाइल्ड केअर सेंटर में है? कैसी है? क्या मैं उससे मिल सकती हूं?''

इंदिरा के चहेरे पर आश्चर्य के भाव आए, ''आप उससे मिली तो थीं कल! कैथरीन है केरोल की बेटी।''

शीला का मुंह खुला रह गया, ''तुम उसे घर ला रही हो ना इंदिरा?''

इंदिरा ने धीरे से कहा, ''मैंने सोचा है कि उसे गोद ले लूं। आपको बताया नहीं। मैं केरोल से मिली थी उसकी मौत से पहले। उसने कहा था कि वह मेरी कुसूरवार है। पर उसकी क्या गलती थी मम्मी। वह जब अपनी बेटी के बारे में बोल रही थी, मुझे लगा कि कितना अपना मानती है वह हम सबको। मैंने उसी दिन सोच लिया था कि उसकी बेटी को अनाथ नहीं रहने दूंगी।''

शीला की आंखें झरने लगीं। दीवार से टेक लगा कर बोली, ''इंदू, मुझे नानी बनने का मौका दोगी ना? इंदिरा पहले कुछ समझी नहीं, फिर शीला के गले लग गई, ''आप मेरी मां बनेंगी ना? हम दोनों मिल कर कैथी को प्यार से पालेंगे।''

जी-1201, नीलपद्म-1, सेक्टर-5, वैशाली,
गाजियाबाद-201010 (उत्तर प्रदेश)

कविता/गीत/गजल/दोहे/नवगीत

रसखान

बाबूराम शर्मा 'विभाकर'

वरिष्ठ कवि एवं लेखक डॉ. बाबूराम शर्मा 'विभाकर' की कई प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से भी रचनाओं का प्रसारण।

(1)

कविवर श्री रसखान का, सादर है सम्मान
राष्ट्रीयता के अर्थ में, शोभित हैं श्रीमान
शोभित हैं श्रीमान मुखर करते निज मंथन
पुनर्जन्म की बात कहें आध्यात्मिक जीवन
कहे 'विभाकर' कविवर तोड़ दिया आडंबर
इसीलिए रसखान हुए हैं श्रीमन कविवर।

(2)

जाति-पांति को तज दिया, राष्ट्रवाद की लीक
जनता की आवाज में महिमा बनी अलीक
महिमा बनी अलीक कि उर्दू-अरबी त्यागी
हिंदी में ही रचे पद्य हिंदी अनुरागी
कहे 'विभाकर' कविवर वे तो कृष्ण भक्त थे
राष्ट्रीयता के उद्‌बोधन में बहु शक्त थे।

(3)

ब्रज बोली में ही रचे, सभी सवैये छंद
कृष्ण भक्त बन रीझते नहीं रहा कुछ द्वंद्व
नहीं रहा कुछ द्वंद्व द्वंद्वहीना है जीवन
ब्रज-संस्कृति में मग्न हुआ है उनका प्रति छन
कहे 'विभाकर' कविवर रस की खान हुए वे
नाम रखा रसखान सही रसखान हुए वे।

52/2, लाल क्वाटर्स, गाजियाबाद-201001
(उत्तर प्रदेश)

प्यारो न्यारो ये बसंत है!

राजेंद्र स्वर्णकार

कई पुरस्कारों से सम्मानित राजेंद्र स्वर्णकार ने काव्य की विविध विधाओं में लेखन किया है। राजस्थानी, हिंदी और उर्दू में लेखन। मंच, आकाशवाणी और दूरदर्शन से काव्य पाठ। दो पुस्तकें प्रकाशित।

पवन सुहावनी है, रुत मनभावनी है
मेरे घर, मेरे उर में सखी, बसंत है
विमुख वियोग मो से, समुख सुयोग मेरे
पल प्रतिपल पास प्राणप्रिय कंत है!

दांव-दांव जीत मेरी सांस-सांस गीत गावै
मेरे सुख आनंद को आदि है न अंत है
जग में हजार राह, मोहे न किसी की चाह
मोहे प्राण से पियारो प्रणय को पंथ है!

×××

अमुवा पै बौर, गावै पिक, नाचै मोर
मेरे चित चितचोर...मतवारो ये बसंत है
बाग में तड़ाग मांही, आग मांही, राग मांही
भाग में, सुहाग मांही प्यारो ये बसंत है!

सखी! वारि जाऊं, निज भाग्य को सराहूं
झूम-झूम, गीत गाऊं...प्यारो न्यारो
ये बसंत है!
बैर ठौर प्रीत, प्रीत वारों की या रीत
हार में छुपी जीत को इशारो ये बसंत है!

×××

खेत-खेत पीली-पीली सरसों की चादर है
वन-वन खिल्यो लाल केशरी पलाश है
केतकी गुलाब जूही मोगरा चमेली गेंदा
भांत-भांत फूलन की गंध है, सुवास है
भ्रमर करे गुंजार, तितलियां डार-डार
चहुं दिश मदन की मस्ती को आभास है
बिसरी है सबै सुध, भ्रमित भयी है बुध
मंमथ-रति को कण-कण महारास है!

×××

सृष्टि वा की वा है...ऋतुराज के पधारने से
सगरे जगत में नवीन कोई बात है
दिवस नूतन, निशा नवल नवेली
नव पुष्प, नव गंध, नव पात, नव गात है
दृष्टि वारे देखे...नव सृष्टि के निमित
कर वीणा लिये गा य रही शारदा साक्षात है
देव महादेव जब झूमने लगे
बिचारे मनुज राजेंदर की कहो क्या बिसात है?

गिराणी सोनारों का मौहल्ला,
बीकानेर 334001 (राजस्थान)

तुम नदी हो मैं किनारा हूं

प्रा. प्रेमचंद सोनवाने

प्राध्यापक के पद से सेवानिवृत्त प्रेमचंद सोनवाने की अर्थशास्त्र के ऊपर दो पुस्तकें तथा एक उपन्यास प्रकाशित हो चुका है। वर्तमान में स्वतंत्र लेखन।

तुम मेरे समक्ष बहती रही
किसी अनंत यात्रा की पूर्ति के लिए
तीव्र महत्वाकांक्षा मिलन की
अपने अंतर्मन में लिए
मैं किंकर्तव्य सा खड़ा था
अमिट प्यार लिए
मात्र स्पर्श किया/नाराज हो गई
कतई पसंद नहीं आया मेरा व्यवहार
तुमने कहा, ''मुझे गंदी कर दिया''
मैंने कहा, ''तुम तो गंगा हो
गंगा कभी मैली नहीं होती''
ज्ञात है मुझे - तुम पागल सी दौड़ रही हो
अपने प्रिय सागर से मिलने
उसमें समा जाने के लिए
मैं अकिंचन/किनारे पर ही खड़ा
तुम्हारे दर्शन मात्र से/पवित्र हो गया
जीवन की सफलता का
एहसास हो गया
अब मुझे, अपने में समा लो
सतरंगी हो जाएगी जिंदगी
मिटना और अस्तित्व खोना ही
सार्थक लक्ष्य है जन्म लेने का
सृष्टि के रचना काल से
मैं खड़ा हूं तुम्हारे किनारे
किसी सत्य के सहारे
हर युग में हम मिले हैं
तुम नदी हो, मैं किनारा हूं
सागर ही तुम्हारी मंजिल है
किंतु यह भी सत्य है
कि तुम्हारा स्पर्श/मुझे होता रहता है
क्योंकि, तुम नदी हो/और मैं किनारा हूं।

**गुरुनानक वार्ड, गणेशनगर,
गोंदिया-441601 (महाराष्ट्र)**

वृक्ष लगाकर कई हजार

डॉ. मृदुला झा

कविता, कहानी, उपन्यास विधा में लेखन करने वाली डॉ. मृदुला झा की दस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कई देशों की यात्रा सहित अनेक पुरस्कारों से सम्मानित लेखिका बिहार शिक्षा सेवा से प्राचार्या पद से सेवानिवृत्त। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित।

ताल-तलैया, वृक्ष पहाड़
धरती का अनुपम उपहार
रंग-बिरंगे फूल यहां
बनते खुशियों के आधार
हरी-मुलायम दूबों का
कैसा अभिनव यह संसार
आंखें होतीं इनसे तृप्त
हरियाली का यह आगार
आम, नीम, कटहल, अनार
झूम-झूम करते इजहार
कोयल फिर रहती क्यों चुप
छेड़ी पंचम सुर के तार
हम मानव ही चूंके क्यों
मेटें आपस की तकरार
धरती मां का करें शृंगार
वृक्ष लगाकर कई हजार।

आ मिलना

आ मिलना एकांत पलों में
भुला न देना प्यार प्रिये
जीवन के कटु-मधु से हटकर
हो जाऊं बेजार प्रिये
जीवन में नव ऊर्जा बन कर
आ जाना तुम पास प्रिये
फूलों की मादक खुशबू से
महके जब संसार प्रिये
मलयानिल का झोंका बनकर
आ जाना तुम द्वार प्रिये
सूरज की तीखी ऊष्मा से
जब हो जाऊं क्लांत प्रिये
शीतल मंद पवन बनकर तुम
आ जाना फिर पास प्रिये
बादल गरजे बिजली चमके
रिम-झिम पड़ी फुहार प्रिये
तभी घटा बन धीरे-धीरे
पुलकित करना प्राण प्रिये
आ मिलना एकांत पलों में
भुला न देना प्यार प्रिये।

बसंत

हरी-भरी वादी में तितली
नाच लहरिया दिखा रही है
फुदक-फुदक कर सोनचिरईया
चीरे का मन लुभा रही है
गदराये महुए की खुशबू
इत-उत ऐसे बिखर रही है
पंचम सुर में कोयल रानी
राग बसंती सुना रही है
बागों में छुप-छुप कर सजनी
रूठे प्रियतम को मना रही है
सुगनी काकी भी मस्ती में
फगुआ गा कर रिझा रही है
पायल की रुन-झुन से बुधनी
होली का रंग जमा रही है
रंगों की बारिश में कमली
साजन को भी भिगा रही है
देख खुशी के आलम को
बाधाएं आंखें चुरा रही है
पीयूष श्रोत को पा विरहन
स्वप्न सृजन के सजा रही है।

बेलन बाजार, मुंगेर-811201 (बिहार)

इन राहों में

डॉ. जयसिंह अलवरी

देश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं के लिए लेखन तथा कई पुरस्कारों से सम्मानित डॉ. जयसिंह अलवरी का एक गजल संग्रह प्रकाशित हो चुका है। कई पुस्तकों के संपादन के अलावा त्रैमासिक पत्रिका 'साहित्य सरोवर' का संपादन।

इन राहों में फैला अंधकार सारा भगाना होगा।
सोया साहस फिर से हर सीने में जगाना होगा।।

देखे थे जो सपने, वे सब साकार करने होंगे।
बढ़के आगे दर्द हर हृदय के हरने होंगे।।

रो रहे हैं दिन चार, नहीं कहीं जीवन का सार।
पग-पग पनप गया, पाप और व्यभिचार।।

सुबक रहे हैं संस्कार, नहीं वो शिष्टाचार।
बंद हैं नैतिकता के द्वार, बढ़ गया भ्रष्टाचार।।

कहीं लूट-खसोट तो कहीं छल-कपट है भारी।
कहीं हिंसा-आतंक तो कहीं डांट-डपट है भारी।।

सोच नए सिरे से, लौटा वही दौर लाना होगा।
लिए कल्याण के भाव, पास सबके जाना होगा।।

यह भेदभावों की तमाम दीवारें ढानी होगी।
विरां चमन में, रवानी कोई नयी लानी होगी।।

अब मजहब यहां मानवता को बनाना होगा।
टूटे दिलों को जोड़, रूठों को मनाना होगा।।

मुरझाये हर चेहरे पे, मुस्कां को लाना होगा।
कह सबको अपना, सीने से सदा लगाना होगा।।

बदलाव

अचानक
पाकर
अन्याय का
धन
बदला
एकाएक
उनका
तन-मन।

घुटन

दंगे
और
फसादों में
घुटा अमन है
करें किससे, शिकवा
रोता सारा
चमन है।

निर्दयी

छीनकर
निवाला
गरीब का
खाने वाले
लिए रहते हैं
हरदम
हाथों में
भाले।

हिंसक

अफवाह
फैलाने वाले
हिंसक/उपद्रवी
फैलाकर पैर
सोते हैं
ओर
हिंसा के शिकार
बे-गुनाह होते हैं।

घुटा आज

नए-नए
उपद्रवों में
घुटा आज
अमन है
देख उठती
लपटें
उदास सारा
चमन है।

उड़ान

दिल को जो
दौलत में लगाए हैं
मन को वे
उड़ान में बसाए हैं।

दिल्ली स्वीट, सिरुगुप्पा-583121
जिला-बल्लारी (कर्नाटक)

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

लेखकों से निवेदन

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की पत्रिका 'गगनांचल' में सुधी पाठकों और रचनाकारों के मौलिक और अप्रकाशित लेख, कहानी, कविताएं आमंत्रित हैं। पत्रिका के आगामी अंकों में लेख भेजते समय लेखक इस बात का अवश्य ध्यान रखें कि वे अपना संक्षिप्त जीवन परिचय भी लेख के साथ भेजें। आपका जीवन परिचय आपकी रचना के साथ प्रकाशित किया जाएगा। बिना संक्षिप्त जीवन परिचय के हमारे लिए आपका लेख पत्रिका में प्रकाशित करना संभव नहीं होगा।

हमें अपने पाठकों को यह बताते हुए हर्ष हो रहा है कि 'गगनांचल' का जुलाई-अक्तूर (संयुक्तांक) 2015 अंक 'विश्व हिंदी सम्मेलन' पर आधारित होगा। विश्व हिंदी सम्मेलन विज्ञान, प्रौद्योगिकी, आयुर्विज्ञान एवं हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार से जुड़े लेख यथाशीघ्र हमारे पास भेजें। लेख भेजते समय उससे संबंधित चित्र अवश्य भेजें। रचना भेजते समय इस बात का ध्यान रखें कि वह पत्रिका के स्तर और गरिमा के अनुरूप हो। रचना 3000 शब्दों के बीच हो, उससे अधिक नहीं। कृपया अपने लेख 15 जून, 2015 से पहले भेजें।

इसके साथ ही हम 'गगनांचल' पत्रिका के लेखकों और पाठकों को सूचित करना चाहते हैं कि गगनांचल पत्रिका का मई-जून, 2015 अंक 'प्रवासी हिंदी साहित्य' पर आधारित न होकर योग-विशेषांक पर आधारित होगा। पाठकों को 'प्रवासी हिंदी साहित्य' से संबंधित लेख हमारे जुलाई-अक्तूबर, 2015 (संयुक्तांक) 'विश्व हिंदी सम्मेलन' विशेषांक में पढ़ने को मिलेंगे।

कृपया अपने लेख एवं सुझाव निम्नलिखित पते पर भिजवाएं :

संपादक, गगनांचल, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

एवं

कार्यक्रम निदेशक (हिंदी), भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्,
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं.- 011-23379309, 23379310
ई-मेल : **ddgas.iccr@nic.in** तथा **pohindi.iccr@nic.in**

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् का एक महत्वाकांक्षी प्रकाशन कार्यक्रम है। परिषद् पांच भिन्न भाषाओं में, एक द्विमासिक - गगनांचल (हिंदी), दो त्रैमासिक - इंडियन होराइज़न्स (अंग्रेजी), तक़ाफत-उल-हिंद (अरबी) और दो अर्ध-वार्षिक - पेपेलेस डी ला इंडिया (स्पेनी) और रेन्कोत्र एवेक ला ऑद (फ्रांसीसी), पत्रिकाओं का प्रकाशन करती है।

इसके अतिरिक्त परिषद् ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य सहित विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों व दार्शनिकों जैसे महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएं परिषद् के प्रकाशन कार्यक्रम में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन कार्यक्रम विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है जो भारतीय संस्कृति, दर्शन व पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य व नाट्यकला से जुड़े होते हैं। इनमें विदेशी भाषाओं जैसे फ्रांसीसी, स्पेनी, अरबी, रूसी व अंग्रेजी में अनुवाद भी शामिल हैं। परिषद् ने विश्व साहित्य के हिंदी, अंग्रेजी व अन्य भातीय भाषाओं में अनुवाद की भी व्यवस्था की है।

परिषद् ने भारतीय नृत्य व संगीत पर आधारित डीवीडी, वीसीडी एवं सीडी के निर्माण का कार्यक्रम भी आरंभ किया है। अपने इस अभिनव प्रयास में परिषद् ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिल कर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक श्रृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है। भारत के पौराणिक बिंबों पर ऑडियो सीडी भी बनाए गए हैं।

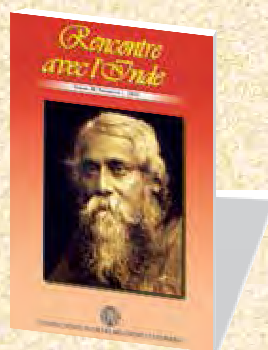

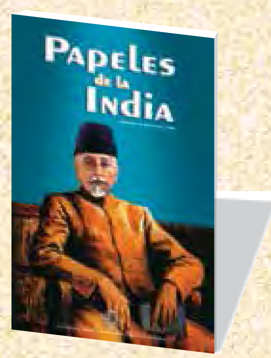

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

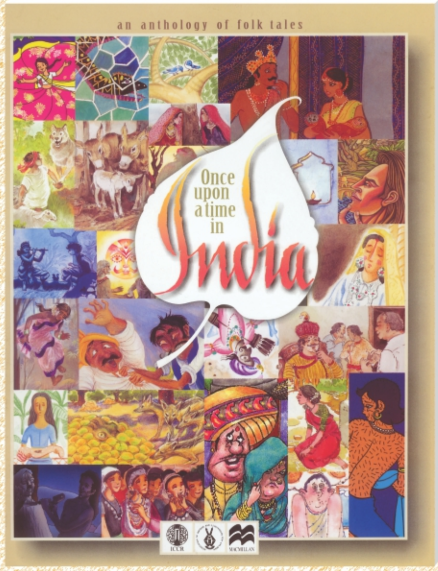

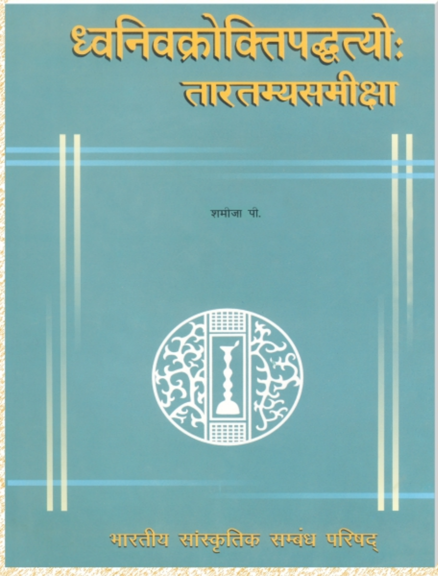

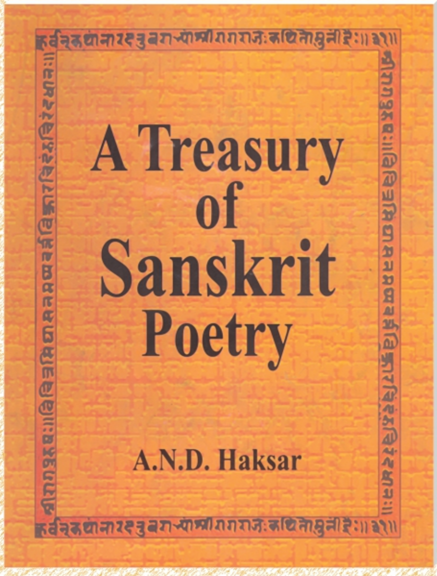

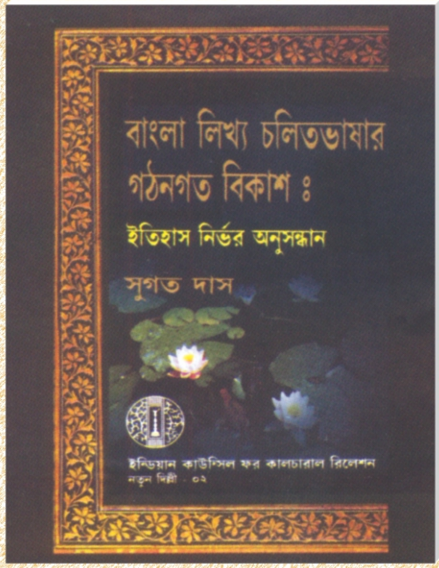

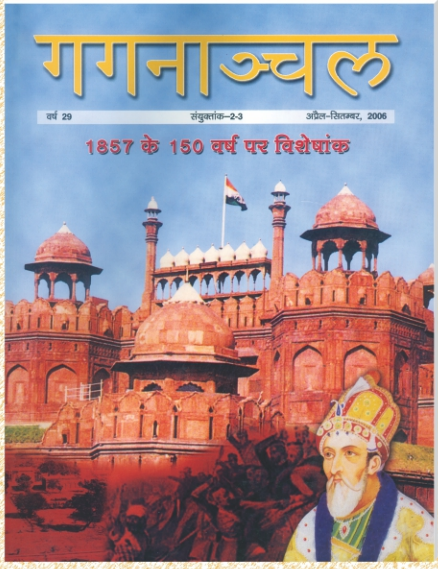

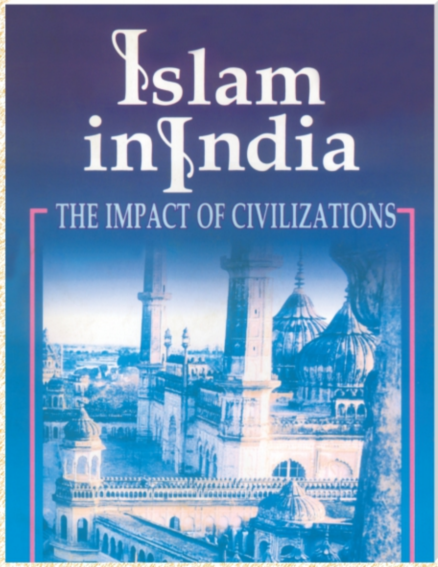

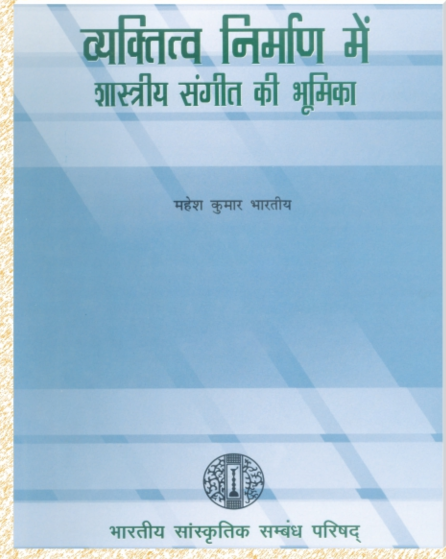

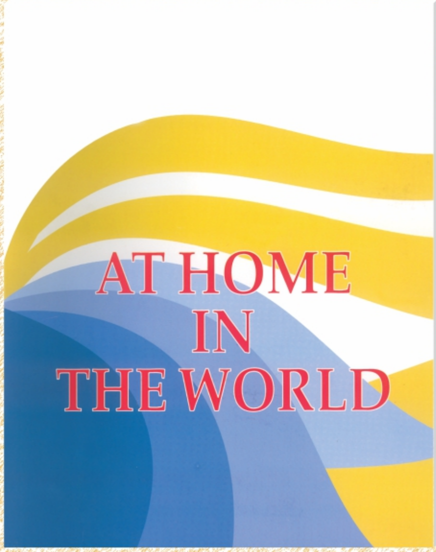

पंजीयन संख्या, आर. एन./32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

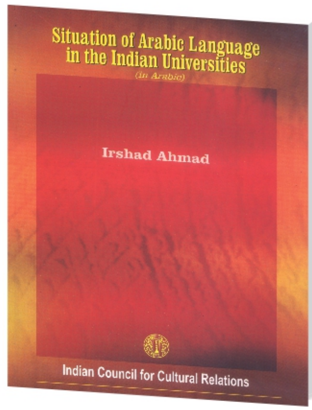

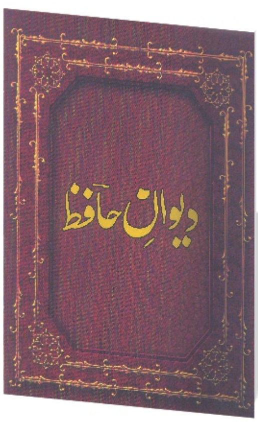

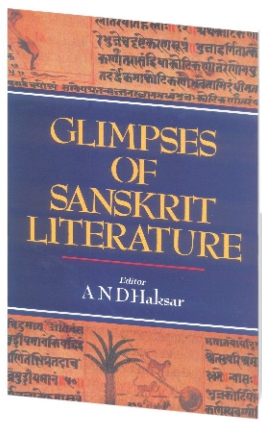

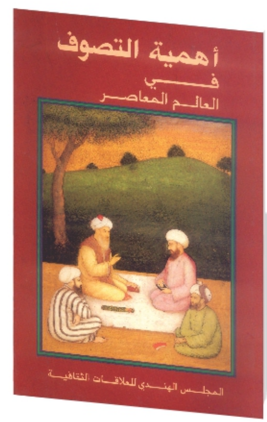

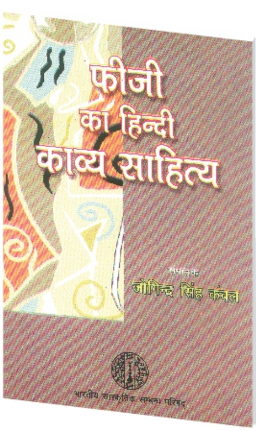

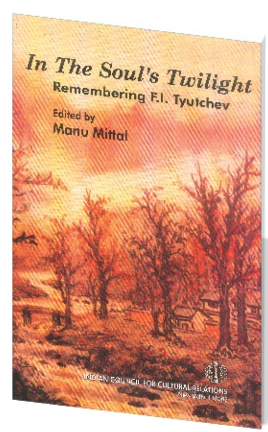

Indian Council for Cultural Relations
भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद्

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
फोन: 91-11-23379309, 23379310, 23379930
फैक्स: 23378639, 23378647, 23370732, 23378783, 23378830
ई-मेल: pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट: www.iccr.gov.in